

शैक्षिक प्रबंधन एवं प्रशासन

Education Management And Administration

MAED-202

इकाई सं०	इकाई का नाम	पृष्ठ सं०
1	शैक्षिक प्रबंध तथा शैक्षिक प्रशासन का विकास	1 -19
2	वैज्ञानिक प्रबंध का सिद्धांत प्रशासनिक विचारधारा एवं , नौकरशाही का सिद्धांत	20 -38
3	प्रशासन का मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत एवं कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति	39 -58
4	शैक्षिक प्रशासन की नूतन प्रवृत्तियाँ	60 -82
5	नेतृत्व का अर्थ एवं प्रकृति और नेतृत्व के सिद्धान्त	83 -103
6	नेतृत्व की शैलियाँ	104 -114
7	नेतृत्व का मापन	115-124
08	शैक्षिक नियोजन	125-141
09	पर्यवेक्षण का अर्थ एवं परिभाषा और प्रकार	142-155
10	शैक्षिक नियोजन, व्यवस्था तथा पर्यवेक्षण कार्यक्रम संरचना	155-177
11	पर्यवेक्षणसेवा :, प्रक्रिया तथा नेतृत्व	178- 205
12	शिक्षा निरीक्षण का अर्थ तथा कार्य	206-227
13	सम्प्रेषण अर्थ:, उद्देश्य एवं प्रकार	228- 258
14	प्रभावशाली प्रबंधन में सम्प्रेषण की भूमिका एवं उसके प्रकार	225-238
15	सम्प्रेषण में आने वाली बाधाएँ तथा शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को कम करने के उपाय	239-271

16	विद्यालय प्रबन्धन	272-289
17	शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयाम	290-306
18	राज्य में शैक्षिक प्रशासन	307-320
19	शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर राज्य सरकार के कार्य	304-334
20	बेसिक शिक्षा परिषद्, माध्यमिक शिक्षा परिषद् एवं विश्वविद्यालय के कार्य संरचना	335-346

इकाई 1: शैक्षिक प्रबंध तथा शैक्षिक प्रशासन का विकास (Educational Management and Development of Educational Administration)

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 शैक्षिक प्रबंध
 - 1.3.1 परिभाषायें एवं विशेषतायें
- 1.4 शैक्षिक प्रशासन के प्रकार
- 1.5 शैक्षिक प्रशासन का विकास
 - 1.5.1 परम्परावादी युग
 - 1.5.2 नव परम्परावादी युग
 - 1.5.3 आधुनिक विचारधारा का युग
- 1.6 सारांश
- 1.7 शब्दावली
- 1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
- 1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

आज हम जिस युग में जी रहे हैं वह संगठनों का युग कहा जाता है। परिवार, अस्पताल, सरकार, स्वयं सेवी संस्थायें, क्लब, बाजार आदि सभी हमारे दैनिक जीवन से जुड़े संगठन हैं। कोई भी संगठन चाहे कितना भी बड़ा या छोटा क्यों नहीं हो, प्रबंध के बिना वह अपने लक्ष्यों / उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता है। प्रबंध के सहारे ही ये संगठन अपनी निरंतरता और गुणवत्ता को बढ़ाये रखते हैं। कोई भी शैक्षणिक संस्था (चाहे वह स्कूल या कॉलेज हो) एक विशिष्ट प्रकार का संगठन है जिसका उद्देश्य विद्यार्थियों में ज्ञान एवं कुशलता का विकास करना है जिससे कि वे समाज को उन्नत बनाने में अपना योगदान दें सकें। शैक्षणिक संस्थाओं को सभी गतिविधियों को सफल बनाने में प्रबंध की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

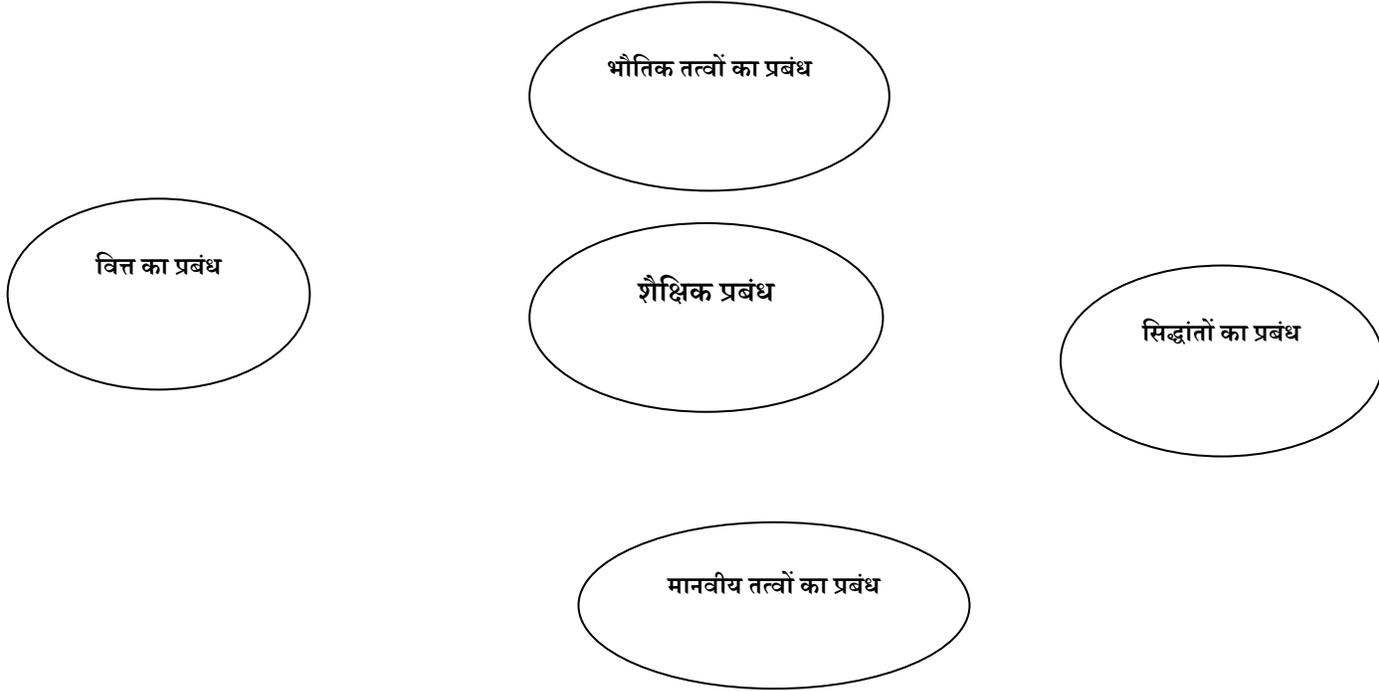
- शैक्षिक प्रबंध की परिभाषाओं एवं अर्थ को बता सकेंगे।
- शैक्षिक प्रबंध की विशेषताओं को बता सकेंगे।
- शैक्षिक प्रशासन के विभिन्न प्रकारों को बता सकेंगे।
- शैक्षिक प्रशासन के विकास की विभिन्न अवस्थाओं को बता सकेंगे।

1.3 शैक्षिक प्रबंध (Educational Management):

यहाँ शैक्षिक प्रबंध की अवधारणा पर प्रकाश डालने से पूर्व प्रबंध शब्द को समझना नितांत आवश्यक है। प्रबंध मनुष्य की सभी क्रियाओं में अंतर्व्याप्त है। यह सभी प्रकार की सामूहिक और संगठित क्रियाओं को एकीकृत करने की शक्ति है। जब दो या दो से अधिक व्यक्ति अपने सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सामूहिक प्रयास करते हैं तब उनकी क्रियाओं व प्रयासों को समन्वित किया जाता है। इसके अतिरिक्त संसाधनों को इस तरह से संगठित और उपयोग करना पड़ता है कि अनुकूलतम परिणामों की प्राप्ति हो सके। पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये मानवीय प्रयासों और संसाधनों को एकीकृत करके उन्हें कार्यात्मक एवं फलदायक बनाने की प्रक्रिया ही प्रबंध कहा जाता है। यह संगठनात्मक जीवन की आधारभूत, समन्वयकारी एवं जीवन उत्प्रेरक प्रक्रिया है। जैसे-जैसे संगठित क्रियाओं के क्षेत्र, आकार और जटिलता में वृद्धि होती है वैसे वैसे प्रबंध कार्य की महत्ता बढ़ती है। प्रत्येक शिक्षण संस्थान एक संगठन के रूप में कार्य करता है जिसका उद्देश्य छात्रों के व्यक्तित्व का चहुँमुखी विकास करना होता है। यह संगठन जिन तत्वों से मिलकर बना होता है, वे चार प्रकार के होते हैं:

- **भौतिक(Physical):** इसके अंतर्गत विद्यालय भवन, फर्नीचर, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, वर्क शॉप, खेल का मैदान, छात्रावास, श्रव्य दृश्य सामग्री आदि सभी आते हैं।
- **मानवीय(Human):** इसके अंतर्गत छात्र, शिक्षक, प्रधानाचार्य/ प्राचार्य, प्रबंध कमिटी के सदस्य, शिक्षा विभाग के अधिकारी, प्रसिद्ध शिक्षाविद् विद्यालय पर्यवेक्षक आदि शामिल हैं।
- **वित्तीय(Financial):** यह किसी शैक्षणिक संस्था के वित्तीय मुद्दों जैसे विद्यालय/कॉलेज की फ़ीस, अनुदान तथा कोष से सम्बंधित होता है।
- **सैद्धांतिक(Theoretical):** शैक्षणिक संस्था को चलने हेतु अन्य तत्व जैसे-समय सारणी, अनुशासन, पाठ्य सहगामी क्रियायें, नियम, सिद्धांत आदि इसके अंतर्गत आते हैं।

शैक्षिक प्रबंध यह शक्ति है जो इन चार प्रकार के तत्वों के बीच तालमेल बैठा कर शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में उस संगठन को अग्रसर करता है। शैक्षिक संगठन को नीचे दिये गये चित्र की सहायता से समझा जा



1.3.1 परिभाषायें एवं विशेषतायें (Definitions & Features):

हैरोल्ड कूटज: औपचारिक रूप से संगठित वर्गों के साथ तथा उनके द्वारा कार्य करवाने की कला का नाम ही प्रबंध है।

जेम्स एल लुंडी: प्रबंध मुख्यतः विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये दूसरों के प्रयत्नों को नियोजित, समन्वित, प्रेरित और नियंत्रित करने का कार्य है।

ग्लुडक: प्रबंध से आशय किसी संस्था के मानवीय और भौतिक संसाधनों के प्रभावपूर्ण प्रयोग से है।

जार्ज टेरी: प्रबंध लोगों से कार्य करने की कला है।

हेनरी फेयोल्: प्रबंध करने से आशय पूर्वानुमान लगाने एवं योजना बनाने, संगठन की व्यवस्था करने, निर्देश देने, समन्वय करने तथा नियंत्रण करने से है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रबंध वह विशिष्ट प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत सामूहिक प्रयासों की सहायता से मानवीय और भौतिक संसाधनों का उपयोग करके संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है। इसका क्षेत्र काफी व्यापक है तथा इसमें नियोजन, निर्देशन, अभिप्रेरण, समन्वय तथा नियंत्रण आदि कार्य शामिल हैं। दूसरी ओर, शैक्षिक प्रबंध एक संकीर्ण अवधारणा है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रबंधक अन्य लोगों के साथ सहयोग और समन्वय का वातावरण बनाते हुये शिक्षण

संस्थान में निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु शैक्षिक एवं सह शैक्षिक क्रियाओं व गतिविधियों संगठन एवं संचालन करता है। इसकी विशेषतायें निम्नलिखित हैं:

1) गत्यात्मक प्रक्रिया (Dynamic Process): शैक्षिक प्रबंध एक गत्यात्मक प्रक्रिया है क्योंकि यह समय, परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार ढलती एवं बदलती रहती है।

2) अनवरत प्रक्रिया (Continuous Process): यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो अनवरत रूप से चलती है। पूर्व निर्धारित शैक्षणिक उद्देश्यों की प्राप्ति के बाद भी यह प्रक्रिया चलती रहती है।

3) संगठित प्रक्रिया Organized Process): यह एक संगठित प्रक्रिया इस लिये है क्योंकि इसमें शैक्षणिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तियों का समूह एक जुट होकर कार्य करता है।

4) उद्देश्यों की विद्यमानता (Existence of Objectives): शैक्षिक प्रबंध शैक्षणिक संगठन के उद्देश्यों से जुड़ी हुई प्रक्रिया है। उद्देश्य उन गन्तव्यों को निर्देशित करते हैं जिन्हें शैक्षणिक संगठन द्वारा प्राप्त किया जाना है।

5) संसाधनों के बीच सम्बन्ध (Relationship among resources): शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये प्रबंधक के सम्मुख सभी संसाधनों को उपलब्ध करवाया जाता है। वह अपने ज्ञान और अनुभव का प्रयोग करते हुये इनके बीच संबंधों की स्थापना करता है और वांछित परिणाम की प्राप्ति करता है।

6) सामाजिक प्रक्रिया (Social Process): शैक्षिक प्रबंध एक सामाजिक प्रक्रिया है क्योंकि इसमें मानवीय संसाधन की विशिष्ट भूमिका होती है। प्रबंधक मानवीय संसाधनों को वांछित परिणामों की प्राप्ति की दिशा में क्रियाशील बनाता है।

7) सार्वभौमिक प्रक्रिया (Universal Process): शैक्षिक प्रबंध की प्रक्रिया के तत्व - नियोजन, संगठन, नियुक्तिकरण, निर्देशन और नियंत्रण - ये सभी किसी भी देश व संस्कृति की शैक्षणिक संस्थाओं में कमोवेश देखे जा सकते हैं।

8) अंतर-विषयक उपागम (Interdisciplinary Approach): यद्यपि शैक्षिक प्रबंध ज्ञान की नवीन शाखा के रूप अपना अस्तित्व बनाने हेतु प्रयासरत है परन्तु इसके सिद्धांत और अवधारणायें व्यवसायिक प्रबंध और मनोविज्ञान से ग्रहण किये गये हैं।

9) अधिकार सत्ता (Authority): प्रबंध एक अधिकार सत्ता की प्रणाली है। प्रबंधक ही किसी शैक्षणिक संस्था में कार्य निष्पादन हेतु आदेश - निर्देश देते हैं, नियम - विनियम बनाते हैं तथा कार्य प्रगति का मूल्यांकन करते हैं।

10) अदृश्य कौशल (Intangible skill): कुछ विद्वानों ने इसके स्वरूप को अमूर्त और अस्पृश्य बताया है। उनका मत है कि किसी संगठन में प्रबंध कि जानकारी उसके द्वारा प्राप्त किये गये परिणामों से होती है।

11) संयोगिक प्रकृति (Contingent Nature): शैक्षणिक वातावरण सदैव ही बाह्य वातावरण से प्रभावित होता है। यही कारण है कि शैक्षिक प्रबंध की विधियाँ, तकनीक और सिद्धांत- ये तीनों ही परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. शैक्षिक प्रबंध के बीच एकीकरण करके शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु वातावरण का निर्माण करता है।
2. शैक्षिक प्रबंध के कार्य नियोजन, निर्देशन, अभिप्रेरण, तथाहोते हैं।
3. शैक्षिक प्रबंध मुख्यतः भौतिक, वित्तीय एवं तत्वों के बीच तालमेल करता है।

1.4 शैक्षिक प्रशासन के विभिन्न प्रकार(Different Types of Educational Administration):

शैक्षिक प्रशासन का शाब्दिक अर्थ शिक्षा के वातावरण में प्रशासन के नियमों एवं सिद्धान्तों के उपयोग से है। वास्तव में प्रशासन शब्द लैटिन भाषा के मूल शब्द "minister" से लिया गया है जिसका मतलब होता है – सेवा (service) या वो कार्य जो दूसरों के कल्याण के लिये किया जाये। सरलतम शब्दों में, प्रशासन एक चेतना पूर्ण ध्येय की प्राप्ति के लिये किया जाना वाला नियोजित कार्य है। लुथर के शब्दों में "प्रशासन का सम्बन्ध कार्यों को करवाने से, निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति से है।" प्रत्येक संगठन के अंतर्गत कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एकत्रित किये गये व्यक्तियों का समूह होता है। प्रशासन वह शक्ति है जो किसी पूर्व निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति हेतु किसी संगठन का नेतृत्व, पथ प्रदर्शन एवं निर्देशन करता है। यह एक उच्च स्तरीय प्रकार्य है जो किसी संगठन के उद्देश्य या नीतियों से संबंध रखता है। प्रशासन का प्रमुख विषय सत्ता या अधिकार माना जाता है। सत्ता या अधिकार किस बिन्दु पर आधारित है और उनका प्रयोग किस प्रकार किया जा रहा है इस आधार पर प्रशासन के दो प्रकार बताये गये हैं। इन दोनों का उल्लेख निम्नांकित है –

केन्द्रीकरण (Centralization): यह वह व्यवस्था है जिसमें निर्णयन अधिकारों एवं दायित्वों को उच्च प्रशासक आपने पास सुरक्षित रख लेते हैं तथा निम्न स्तरों पर उनका प्रत्यायोजन नहीं करते हैं। उदाहरण के लिये, यदि किसी विश्वविद्यालय में फ्रीस बढ़ोतरी से संबंधित निर्णय सिर्फ उसके सीनेट के सदस्यों ही द्वारा लिया जाता है तब उसे केन्द्रीकरण कहा जायेगा। इसके लक्षण निम्नांकित हैं :

- निर्णय-सत्ता उच्च स्तर पर केन्द्रीय बिन्दु पर पर संकेंद्रित होते हैं।
- संस्था के सभी निर्णय उच्चाधिकारियों द्वारा लिये जाते हैं।
- अधीनस्थ केवल आदेशानुसार कार्य करते हैं, निर्णय नहीं लेते हैं।
- अधिकारों का प्रत्यायोजन बहुत कम किया जाता है।
- सारे अधिकार उच्च प्रशासकों के पास सुरक्षित होते हैं।

विकेंद्रीकरण (Decentralization): यह वह व्यवस्था है जिसमें संगठन की छोटी से छोटी इकाई तक, जहाँ तक कि व्यवहारिक हो निर्णयन अधिकारों एवं दायित्व का वितरण किया जाता है। उदाहरण के लिये, यदि किसी विश्वविद्यालय में परीक्षा प्रणाली में सुधार से संबंधित निर्णय में उसके शिक्षकों के अतिरिक्त

अभिभावकों, समाज के बुद्धिजीवी लोगों, नीति निर्माताओं, विभिन्न संकायों के छात्र प्रतिनिधियों आदि का सुझाव लिया जाता है तब ऐसी व्यवस्था को विकेंद्रीकरण प्रशासन कहते हैं। इसके लक्षण निम्नांकित हैं :

- यह संगठन में प्रत्येक स्तर सत्ता के व्यापक वितरण का परिणाम है।
- इसमें अधीनस्थों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।
- यह प्रत्यायोजन का विकसित रूप है।
- इसमें संगठन के निचले पदों तक अधिकाधिक मात्रा में निर्णय लिये जाते हैं जो अत्यंत महत्व के होते हैं।
- उच्च प्रशासक आपने अधीनस्थों के निर्णयों का प्रतिदिन मूल्यांकन नहीं करते हैं वरन् यह मानते हैं कि निर्णय ठीक ही लिये गये होंगे।

परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रत्येक संगठन में प्रशासन का स्वरूप केन्द्रीकृत और विकेन्द्रीकृत – दोनों ही होता है। पूर्ण विकेन्द्रीकरण किसी भी संगठन में संभव नहीं है क्योंकि इसका अर्थ संगठन पर कोई नियंत्रण नहीं वाली स्थिति होगी जो कि वास्तव में संभव नहीं है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. केन्द्रीकरण के अंतर्गत सिर्फ निर्णयों का पालन करते हैं।
2. विकेन्द्रीकरण के अंतर्गत एवं का निचले स्तर पर वितरण किया जाता है।

1.5 शैक्षिक प्रशासन का विकास (Development of Educational Administration)

अब तक हम यह जान चुके हैं कि शैक्षिक प्रशासन का उद्गम स्थल सामान्य प्रशासन रहा है। जैसे जैसे ज्ञान के भंडार में अभिवृद्धि होती गई है तथा सामाजिक परिवर्तनों को महसूस किया गया है वैसे वैसे सामान्य प्रशासन में नये नये आयाम एवं विचारधारयें जुड़ती गयीं हैं। इस नवीनीकरण का सीधा असर शैक्षिक प्रशासन के स्वरूप पर पड़ा है। इसमें नये नये संप्रत्यय एवं अवधारणयें जुड़ने से इसका दायरा विस्तृत हो गया है। शैक्षिक प्रशासन के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने के लिये सामान्य प्रशासन के विकास के विभिन्न अवस्थाओं को जानना आवश्यक है। सामान्य प्रशासन की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन तीन युगों में बांटकर किया जा सकता है।

1.5.1 परंपरावादी युग 1900 – 1935(Classical Era):

इस युग को प्रशासन के व्यवस्थित अध्ययन की शुरुआत का युग माना जाता है। इस युग के प्रवर्तकों के अनुसार प्रशासन किसी संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन मात्र है। विचारधारा के विकास के आधार पर इस युग के तीन निम्नलिखित भाग हैं:

- **वैज्ञानिक प्रबंध का युग (Scientific Management Era):** इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप वृहद् एवं यंत्रीकृत उत्पादन प्रत्येक उद्योग का लक्ष्य बन गया। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के दिशा में वैज्ञानिक प्रबंध की शुरुआत की गई। यह कार्य को संगठित एवं ज्ञान के आधार करने की पद्धति है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जो रुढ़िवादी, परंपरागत एवं अनुमानित धारणाओं के स्थान पर तर्कों, तथ्यों, प्रयोग एवं विश्लेषण पर आधारित सिद्धांतों को स्वीकार करती है। इस विचारधारा के विकास में अनेक विद्वानों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसमें चार्ल्स बैबेज, टेलर, हेनरी गैट, फ्रेंक गिलब्रेथ, लिलियन गिलब्रेथ, कुक आदि हैं। परन्तु इस विचारधारा में सबसे अधिक महत्वपूर्ण एफ० डब्लू० टेलर का है। इसलिये टेलर को "वैज्ञानिक प्रबंध का जन्म दाता" माना जाता है तथा उनकी विचारधारा को टेलरवाद भी कहा जाता है।

- **प्रशासनिक विचारधारा का युग (Administrative Theory Era):** यह विचारधारा प्रशासन के उच्च स्तर पर सामान्य पहलुओं से संबंधित रही है। इसके प्रवर्तकों में हेनरी फेयोल का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने प्रशासन को सार्वभौमिक कौशल बताते हुये उससे संबंधित 14 मार्गदर्शक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जो इस प्रकार हैं:

1) **कार्य विभाजन (Division of Labour):** फेयोल के मतानुसार प्रत्येक कार्य को सुविधाजनक कार्यांशों में विभाजित करके अलग-अलग कार्यांश को उसके लिये उसके लिये योग्य व प्रशिक्षित व्यक्ति से सम्पन्न कराया जाना चाहिये।

2) **अधिकार एवं दायित्व (Authority and responsibility):** उनके अनुसार किसी संगठन में अधिकार और दायित्व साथ-साथ चलते हैं। दायित्वों के बिना अधिकार नहीं चलने चाहिये।

3) **अनुशासन (Discipline):** अनुशासन से आशय अपने से उच्च अधिकारी की आज्ञा का पालन करने नियमों के प्रति आस्था तथा संबंधित अधिकारियों के प्रति आदर भाव रखने से है। किसी संगठन में अच्छा अनुशासन उच्च कोटि के सुयोग्य प्रशासकों, स्पष्ट एवं निष्पक्ष नियमों तथा समझौतों, विवेकपूर्ण दंड विधान एवं न्यायोचित व्यवहार से ही स्थापित किया जा सकता है।

4) **आदेश की एकता (Unity of Command):** इसका आशय यह है कि एक कर्मचारी को समस्त आदेश एक ही अधिकारी से मिलने चाहिये। आदेश की एकता के अभाव में अनुशासन भंग होने की आशंका बनी रहती है तथा संगठन में सर्वत्र भ्रान्ति का वातावरण छाया रहता है।

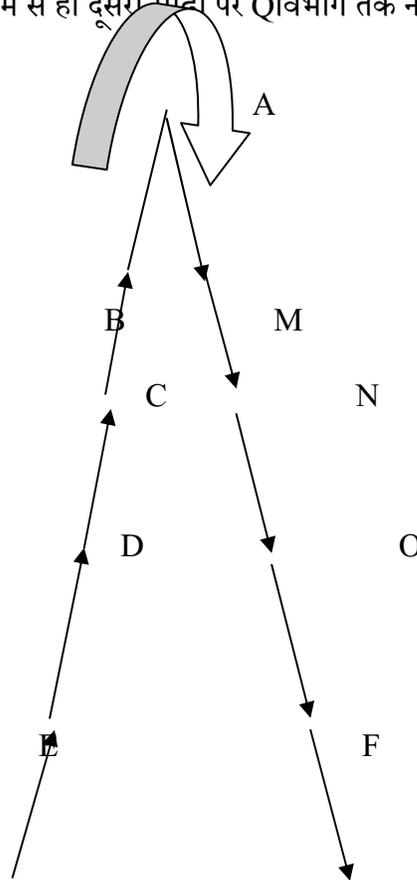
5) **निर्देश की एकता (Unity of Direction):** इस सिद्धांत का आशय यह है कि अमुक उद्देश्य से संबंधित क्रियाएँ अमुक वर्ग या समूह द्वारा ही सम्पन्न की जानी चाहिये तथा प्रत्येक समूह का एक ही अधिकारी होना चाहिये।

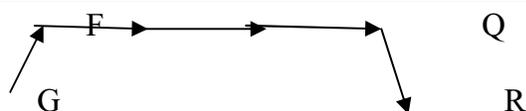
6) **व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा सामान्य हितों को प्राथमिकता (Subordination of individual interests to the common good):** फेयोल के अनुसार एक कुशल प्रशासक को चाहिये कि वह संस्था के हितों एवं व्यक्तिगत स्वार्थ के बीच समन्वय एवं सामंजस्य बनाये रखे। यदि कभी इन दोनों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाये तो व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा सामान्य हितों को प्राथमिकता चाहिये।

7) पारिश्रमिक (Remuneration): फेयोल के अनुसार कर्मचारियों के पारिश्रमिक की दर अथवा भुगतान की पद्धति उचित व संतोषप्रद होनी चाहिये। यदि भुगतान की पद्धति उचित होगी तो कर्मचारी सदैव संतुष्ट रहेंगे तथा संबंधों में कभी तनाव नहीं होगा। उन्होंने कर्मचारियों को प्रोत्साहन देने के लिये गैर वित्तीय प्रेरणायें अपनाने पर भी बल दिया।

8) केन्द्रीकरण (Centralization): किसी संगठन में केन्द्रीकरण की नीति अपनायी जाये या विकेंद्रीकरण की, इसका निर्णय संगठन के व्यापक हितों, वहाँ काम करने वाले लोगों की मनोभावनाओं तथा कार्य की प्रकृति आदि सभी तथ्यों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के बाद ही करना चाहिये। प्रत्येक ऐसी बात जो अधीनस्थों के महत्व में वृद्धि करती है, विकेंद्रीकरण कही जाती है तथा जो अधीनस्थों के महत्व को कम करती है केन्द्रीकरण की सूचक होती है।

9) सोपान श्रृंखला (Scalar Chain): सोपान श्रृंखला से तात्पर्य सर्वोच्च पदाधिकारी से लेकर निम्नतम पदाधिकारी के बीच संपर्क की व्यवस्था के क्रम से है। फेयोल के मतानुसार संस्था के पदाधिकारी उपर से नीचे की ओर एक सीधी रेखा के रूप में संगठित होने चाहिये तथा किसी भी अधिकारी को अपनी सत्ता श्रेणी का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। इस व्यवस्था को नीचे दिए गये चित्र से स्पष्ट किया गया है। यहाँ दोहरी सीढ़ी GAR के माध्यम से श्रेणी श्रृंखला को व्यक्त किया गया है। सिद्धांत के अनुसार, यदि विभाग F विभाग Q से सम्पर्क स्थापित करना चाहता है तो प्रथम सीढ़ी पर पहले F विभाग से प्रत्येक विभागीय स्तर के द्वारा होते हुये A विभाग तक जाना होगा और तत्पश्चात इसी क्रम से ही दूसरी सीढ़ी पर Q विभाग तक नीचे उतरना होगा।





10) व्यवस्था (Order): व्यवस्था से आशय सामग्री तथा कर्मचारियों – दोनों की व्यवस्था से है। इस संबंध में फेयोल ने दो उपसिद्धांत बताये हैं:

- प्रत्येक वस्तु के लिये निश्चित स्थान व प्रत्येक वस्तु नियत स्थान पर होनी चाहिये।
- प्रत्येक व्यक्ति के लिये एक नियत स्थान एवं प्रत्येक व्यक्ति अपने नियत स्थान पर होना चाहिये।

11) समता (Equity): इसका आशय यह है कि अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ न्याय व उदारता का व्यवहार होना चाहिये जिससे कि उनकी सदभावना व सहयोग बना रहे।

12) कार्यकाल की स्थायित्वता (Stability of tenure of persons): किसी नये कर्मचारी द्वारा किसी नवीन काम को सीखने तथा कुशलतापूर्वक उसके निष्पादन में समय लगना स्वाभाविक है। अतः यदि उस अवधि के पूर्व ही उसे निकल दिया जाये अथवा काम सीखने पर समुचित समय न दिया जाये तो यह न्यायसंगत नहीं होगा। फेयोल ने इस बात पर बल दिया कि जहाँ तक हो सके कर्मचारियों के कार्यकाल में स्वामित्व होना चाहिये जिससे कि वे निश्चित होकर तत्परतापूर्वक कार्य कर सकें।

13) पहलपन (Initiative): इसका आशय यह है सभी लोगों को स्वतंत्रता पूर्वक सोचने तथा योजना क्रियान्वित करने के का अधिकार होना चाहिये। प्रत्येक प्रबंधक को अपने अधीन काम करने वाले व्यक्तियों में पहल की भावना को प्रेरित करना चाहिये।

14) समूह भावना का सिद्धांत (Esprit de Corps): फेयोल ने सहयोग एवं सहकारिता के साथ काम करने की भावना पर बल दिया है। इस भावना को विकसित करने के लिये उन्होंने दो सुझाव भी दिए हैं :

- आदेश की एकता के सिद्धांत का पालन कठोरता से होना चाहिये।
- सन्देशवाहन की प्रणाली अत्यंत प्रभावशाली होनी चाहिये

इस सन्दर्भ में दूसरा नाम लूथर गुलिक का आता है। उन्होंने प्रशासन के कार्यों का सूत्र "POSDCORB (पोस्टकोर्ब)" बनाया। इसमें P-Planning (नियोजन), O-Organizing (संगठन), S-Staffing (नियुक्ति), D-Directing (निर्देशन), C-Coordinating (समन्वय), R-Recording (रिकार्ड करना), B-Budgeting (बजट बनाना) से संबंधित है।

- नौकरशाही प्रबंध का युग (Bureaucratic Management Era): नौकरशाही प्रबंध एक प्रतिष्ठित एवं परंपरागत विचारधारा रही है जिसका अस्तित्व आज भी अनेक प्रशासनिक व्यवस्थाओं

में देखने को मिलता है। इस विचारधारा के सबसे अधिक व्यवस्थित अध्ययन का श्रेय जर्मनी के एक समाजशास्त्री मेक्स वेबर को जाता है। वेबर के अनुसार नौकरशाही का अर्थ होता है: नियुक्त किये गये अधिकारियों की एक प्रशासनिक संस्था। इस व्यवस्था में सत्ता और शक्ति पद में निहित होते हैं, किसी व्यक्ति में नहीं। नौकरशाही व्यवस्था अपनी विशेषताओं जैसे- पद सोपान, श्रम विभाजन, अवैयक्तिक सम्बन्ध, लिखित नियम, निश्चित कार्य विधि, कानूनी सत्ता एवं शक्ति आदि के कारण तकनीकी दृष्टि से उच्च मात्रा की विवेकशीलता तथा प्रभावशीलता प्राप्त करने की योग्यता रखती है।

1.5.2 नव परम्परावादी युग, 1935-1950 (Neo-Classical Era):

इस युग को संक्रमण का युग भी माना जाता है। व्यवहारवादी विज्ञान में हुये नये अनुसन्धानों एवं प्रयोगों ने परम्परावादी विचारधारा को त्रुटिपूर्ण साबित किया जिसके फलस्वरूप प्रशासन की नई विचारधारा का सूत्रपात हुआ। इसमें औपचारिक संगठन के स्थान पर मानवीय पहलुओं पर बल दिया जाने लगा। इस युग के प्रवर्तकों का योगदान निम्नांकित हैं:

- **जार्ज एल्टन मेयो:** उन्होंने अपने साथियों – प्रो एफ०जे०रोथलिसबर्जर तथा विलियम०जे०डिक्सन के साथ मिलकर वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी के शिकागो स्थित हव्थोर्न संयंत्र में श्रमिकों पर 1924-1933 ई० के बीच कई प्रयोग किये। उन प्रयोगों के निष्कर्षों के आधार पर उन्होंने यह कहा कि किसी संगठन को एक सामाजिक प्रणाली के रूप में तथा इसके सदस्यों को चेतनायुक्त प्राणी के रूप में देखा जाना चाहिये। उन्होंने जिस विचारधारा को जन्म दिया उसे "मानवीय संबंध विचारधारा" के नाम से जाना जाता है जो आगे चलकर प्रशासन के विचारधारा के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुआ।
- **मेरी पार्कर फोलेट:** फोलेट ने संबंधों के मनोविज्ञान पर महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने प्रबंध के कई महत्वपूर्ण विषयों जैसे नेतृत्व, रचनात्मक संघर्ष, आदेशों का मनोविज्ञान, सत्ता, नियंत्रण, समायोजन, सहभागिता, सहमति समझौता आदि पर अपने मूल्यवान विचार प्रकट किये। उन्होंने प्रबंध में "मेलजोल", "समूह चिंतन" तथा "नवीन प्रजातांत्रिक मूल्यों" को अपनाने पर जोर दिया था।
- **ओलिवर शेल्डन:** शेल्डन ने भी उपक्रम को मनुष्यों तथा मानवीयता का एक जटिल आकार माना था। उनका आदर्श था कि "व्यक्ति पहले है।"
- **चेस्टर बर्नार्ड:** बर्नार्ड ने प्रबंधकीय प्रक्रिया का मानवीय एवं सामाजिक विश्लेषण किया था। उन्हें सामाजिक प्रणाली विचारधारा का जन्मदाता माना जाता है।
1940 के बाद मानवीय सम्बन्ध की विचारधारा में एक नया मोड़ आ गया। कई विद्वान यह मानने लगे कि मनुष्य केवल सामाजिक संबंधों से प्रेरित होकर ही कार्य नहीं करता है वरन् वह अपनी मानसिक, भावात्मक तथा आत्मविकास की भावनाओं से प्रेरित होकर कार्य करता है। इस तरह प्रशासन का विकास व्यवहारवादी विज्ञान के रूप में होने लगा जिसमें विभिन्न पहलुओं जैसे-

सामाजिक अंतर्व्यवहार, अभिप्रेरणा, सत्ता के प्रारूप, संप्रेषण, नेतृत्व, कार्य रचना, वैयक्तिक आवश्यकताओं आदि पर बल दिया गया। इस दृष्टिकोण को समृद्ध बनाने में जिन विचारकों का योगदान है उनका उल्लेख निम्नांकित है:

- **कर्ट लेविन:** उन्होंने व्यक्तित्व तथा व्यवहार की अवधारणा के सम्बन्ध में अपने विचार दिये। उनका परिवर्तन मॉडल, शक्ति क्षेत्र के विश्लेषण तथा अभिलाषा का स्तर विशेष रूप से उल्लेखनीय है।
- **रेंसिस लिंकर्ट:** लिंकर्ट के अनुसन्धान का केंद्र मानव रहा है। उन्होंने यह निष्कर्ष निकला कि कार्य-केन्द्रित पर्यवेक्षण के स्थान पर कर्मचारी-केन्द्रित-पर्यवेक्षण अधिक महत्वपूर्ण है।
- **अब्राहम मास्लो:** मास्लो ने मानव अभिप्रेरणा की विचारधारा को स्पष्ट करते हुये मानवीय आवश्यकताओं को पांच श्रेणियों – शारीरिक, सुरक्षात्मक, सामाजिक, स्वाभिमान तथा आत्म विकास में विभक्त किया है। उसका यह मत है कि व्यक्ति एक निश्चित क्रम में ही अपनी आवश्यकताओं कि पूर्ति के लिये प्रयासरत रहता है।
- **हर्ज़बर्ग:** हर्ज़बर्ग ने अभिप्रेरणा की द्वि-घटक आरोग्य विचारधारा का प्रतिपादन किया। उनका कहना है की मनुष्य की आवश्यकताओं के दो समूह हैं- (1) स्वास्थ्य तत्त्व: ये तत्त्व कार्य के वातावरण का निर्माण करते हैं। ये अभिप्रेरणा के लिये आवश्यक होते हैं किन्तु वे स्वयं अभिप्रेरणा नहीं होते हैं। अभिप्रेरक तत्त्व: इसके अंतर्गत वे तत्त्व आते हैं जो संगठन के सदस्यों के अभिप्रेरणा स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक होते हैं।

1.5.3 आधुनिक विचारधारा का युग-1950 से अब तक (Modern Thought Era-Since 1950 to till now):

1950 के बाद प्रशासन के क्षेत्र में विभिन्न विचारधाराओं के एकीकरण एवं संयोजन का दौर प्रारंभ हुआ तथा कई नवीन प्रवृत्तियों का भी विकास हुआ। इन प्रवृत्तियों की चर्चा निम्नलिखित है:

- **प्रणाली विचारधारा (System Theory):** यह विचारधारा संगठन को पृथक-पृथक विभागों, कार्यों एवं साधनों के संकलन के रूप में नहीं वरन् एकीकृत सम्पूर्णता, संगठित इकाई या समन्वित पद्धति के रूप में मानती है।
- **संभाव्यता विचारधारा (Contingency Theory):** यह विचारधारा यह मत है कि प्रशासन की कोई एक श्रेष्ठ विधि नहीं होती है, वरन् सब कुछ परिस्थिति पर निर्भर करता है। अतः किसी प्रशासक को वही मार्ग अपनाना होता है जो समय की मांग होती है।
- **गणितीय विचारधारा (Mathematical Theory):** यह विचारधारा संपूर्ण प्रशासन को एक गणितीय मॉडल मानती है। इसकी यह मान्यता है की संपूर्ण प्रशासन एक तार्किक प्रक्रिया है जिसे गणितीय संकेतों, सूत्रों, चिन्हों, समीकरणों अथवा काल्पनिक मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

- **7-एस मैककिन्सी मॉडल (The McKinsey 7-S Framework):** इस मॉडल को थोमस पीटर्स, रोबर्ट वाटरमैन तथा रिचर्ड पास्कल आदि के साथ मिलकर मैककिन्सी ने यह मॉडल तैयार किया है। उनके अनुसार संगठनात्मक प्रशासन सात घटकों – व्यूहरचना, संरचना, प्रणालियाँ, स्टाफ, शैली, कौशल तथा अधिलक्ष्यों का जोड़ है। इसमें अन्तःनिर्भरता का संबंध होता है। अतः किसी एक घटक में परिवर्तन होने पर सभी में संयोजन आवश्यक हो जाता है।
- **प्रबंध सूचना पद्धति (Management Information System):** कंप्यूटर टेक्नोलॉजी के विकास के साथ ही प्रबंध में सूचना प्रणाली का महत्व बढ़ गया है। सूचना प्रबंध एक महत्वपूर्ण संसाधन बन गया है। यह एक ऐसी पद्धति है जिसमें समकों का एकीकरण, संग्रहण एवं प्रविधियन किया जाता है तथा सूचना के रूप में नियोजन, नियंत्रण एवं निर्णयन के लिये प्रशासकों को उपलब्ध करवाया जाता है। दूसरे शब्दों में प्रबंध सूचना पद्धति मानवीय एवं कम्प्यूटर आधारित पूंजी-संसाधनों का सम्मिश्रण है।
- **ज़ेड विचारधारा (Z Theory):** यह विचारधारा जापानी प्रबंधदर्शन एवं जापान में प्रयुक्त तकनीकों का दूसरा नाम है। 1981 में विलियम आवूची ने अमेरिकी संगठनों में जापानी दर्शन अपनाये जाने का सुझाव दिया था। यह विचारधारा मानवीय सम्बन्ध के सिद्धांतों एवं वैज्ञानिक पबंध के सिद्धांतों का योग है।

उपर्युक्त विवेचनों से यह स्पष्ट है कि आज भी प्रशासन के क्षेत्र में विचारधाराओं द्रुत गति से परिवर्तन हो रहे हैं। इसी वजह से प्रशासन के सम्बन्ध में कोई एकीकृत विचारधारा बन नहीं पायी है। वस्तुतः शैक्षिक प्रशासन ज्ञान की विविधता, विचारकों के विभिन्न परिवेश तथा उसकी विकासोन्मुख प्रकृति के कारण ही ऐसा हुआ है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. एफ०डब्लू०टेलर ने को का जन्मदाता माना जाता है।
2. हेनरी फेयोल ने प्रशासन सम्बन्धीसूत्रों का प्रतिपादन किया है।
3. प्रशासन के नौकरशाही सिद्धांत के प्रवर्तक..... हैं।
4. हव्थोर्न संयंत्र के प्रयोगों ने विचारधारा को जन्म दिया है।
5. अब्राहम मास्लो मानव अभिप्रेरणा को भागों में विभक्त किया है।
6. प्रशासन की..... विचारधारा के अनुसार सब कुछ परिस्थिति पर निर्भर करता है।
7. विचारधारा जापानी प्रबंधदर्शन एवं जापान में प्रयुक्त तकनीकों से सम्बंधित है।
8. संगठन की विचारधारा उसे एक पूर्ण इकाई के स्थापित करता है।
9. लूथर गुलिक ने प्रशासन के सूत्र का प्रतिपादन किया।
- 10.....विचारधारा किसी प्रशासनिक संगठन को एक तर्क पूर्ण प्रक्रिया मानती है।

11. प्रबंध सूचना पद्धति में को सूचनाओं के रूप में उपलब्ध करवाया जाता है।
12. 7-एस मैककिन्सी मॉडल के अनुसार संगठन घटकों का जोड़ होता है।

1.6 सारांश(Summary)

प्रबंध संगठनात्मक जीवन का अभिन्न अंग है। इसके बिना एक सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में सामूहिक प्रयासों को यथोचित नियोजित, निर्देशित, समन्वित एवं नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। किसी शैक्षणिक संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये उसके विभिन्न तत्वों के बीच समन्वय आवश्यक है। शैक्षिक प्रबंध वह प्रक्रिया है जो शैक्षणिक वातावरण में सामूहिक प्रयासों के कुशलतम उपयोग के लिये भौतिक, मानव, वित्तीय एवं सैद्धांतिक – इन चारों तत्वों का प्रयोग करता है। दूसरी ओर, शैक्षिक प्रशासन शिक्षा के क्षेत्र में सामान्य प्रशासन के नियमों, सिद्धांतों, विधियों, प्रवृत्तियों आदि के प्रयोग से संबंधित है। इसका उद्देश्य शैक्षिक वातावरण में सुधार लाना है ताकि छात्र, शिक्षक, अभिभावक तथा अन्य कार्यकर्ता लाभान्वित हो सकें। शैक्षिक प्रशासन के विकास को सामान्य प्रशासन के विकास से जोड़ा गया है। सामान्य प्रशासन के विकास को तीन युगों में विभक्त किया गया है: परम्परावादी युग, नव परम्परावादी युग और आधुनिक विचारधारा का युग। परम्परावादी युग के तीन महत्वपूर्ण भाग हैं: वैज्ञानिक प्रबंध युग, प्रशासनिक विचारधारा का युग एवं नौकरशाही व्यवस्था का युग। नव परम्परावादी युग में मानव सम्बन्ध सिद्धांत एवं व्यवहारवादी सिद्धांत: इन दोनों ने जड़ें जमा लीं। 1950 से अब तक का समय आधुनिक विचारधारा का युग कहा जाता है। समय के साथ साथ शैक्षिक प्रशासन में अनेक नई विचारधाराओं को जोड़ने की आवश्यकता है जिससे कि यह एक स्वतंत्र विषय का रूप ले सके।

1.7 शब्दावली

1. विकेंद्रीकरण: अधीनस्थ कर्मचारियों को अधिकार सत्ता का व्यवस्थित हस्तांतरण।
2. वैज्ञानिक प्रबंध: टेलर महोदय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत।
3. सोपान श्रृंखला: सर्वोच्च पदाधिकारी से लेकर निम्नतम पदाधिकारी के बीच संपर्क की व्यवस्था के क्रम।
4. नौकरशाही: वह व्यवस्था जो जिसमें वैधानिक सत्ता पद से जुड़ी होती है, किसी व्यक्ति से नहीं।
5. POSDCORB: लूथर गुलिक द्वारा प्रतिपादित प्रशासनिक कार्यों का सूत्र।
6. प्रबंध सूचना पद्धति: समंकों का एकत्रीकरण संग्रहण प्रविधियन तथा सूचनाओं के रूप में उनकी उपलब्धता।

1.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. संसाधनों 2. नियंत्रण 3. मानवीय, सैद्धांतिक

1. अधीनस्थ 2. अधिकार एवं दायित्व

1. वैज्ञानिक प्रबंध 2. चौदह 3. मेक्स वेबर 4. मानव सम्बन्ध 5. पांच 6. संभाव्यता 7. जेड 8. प्रणाली
9. POSDCORB 10. गणितीय 11. समंकों 12. सात।

1.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Agarwal, N.P. & R. Tailor. *Principles & Practice of Management*. RBSA Publishers. Jaipur, 2008.
2. Jain, N.C & Saakshi. *Management Theory & Practice*. AITBS Publishers, New Delhi, 2008.
3. Kompal & Shivani. *Educational Administration: Motivating Academics*. Y.K Publishers, Agra.
4. Parthsarthy, P. *Principles of Management*. Vrinda Publications (P) Limited, New Delhi, 2005.
5. Shah, P.K & B.D Tated. *Prabandh ke Siddhant evam Vyvhar*. National Publishing House, Jaipur, 2010.
6. Sivalingm, T. *Fundamentals of Management*. Vrinda Publications (P) Limited, New Delhi, 2005.
7. Sudha, G.S. *Principles & Practice of Management*. Malik & Company, Jaipur, 2011.

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. शैक्षिक प्रशासन से आप क्या समझते हैं ? इसकी विशेषताओं को स्पष्ट करें।
2. केंद्रीकरण एवं विकेंद्रीकरण में अंतर बतायें।
3. प्रशासन के विकास के परम्परावादी युग से आप क्या समझते हैं ? इसके मुख्य विचारधाराओं पर प्रकाश डालें।
5. प्रशासनिक विचारधारा के युग में हेनरी फेयोल के योगदानों की चर्चा करें।
6. प्रशासन के विकास के नव परम्परावादी युग के मुख्य बातों को लिखें।
7. प्रशासन के आधुनिक विचारधारा के युग का वर्णन करें।

इकाई 2: वैज्ञानिक प्रबंध का सिद्धांत, प्रशासनिक विचारधारा एवं नौकरशाही का सिद्धांत Scientific Management Theory, Administrative Theory & Theory of Bureaucracy)

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 वैज्ञानिक प्रबंध
 - 2.3.1 वैज्ञानिक प्रबंध की परिभाषायें
 - 2.3.2 वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धांत
 - 2.3.3 वैज्ञानिक प्रबंध की तकनीकें
 - 2.3.4 वैज्ञानिक प्रबंध की आलोचनायें
- 2.4 प्रशासनिक विचारधारा
 - 2.4.1 हेनरी फेयोल का योगदान
 - 2.4.2 लूथर गुलिक का योगदान
 - 2.4.3 प्रशासनिक विचारधारा की आलोचनायें
- 2.5 नौकरशाही
 - 2.5.1 नौकरशाही की परिभाषायें
 - 2.5.2 नौकरशाही की विशेषतायें
 - 2.5.3 नौकरशाही की आलोचनायें
- 2.6 सारांश
- 2.7 शब्दावली
- 2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.9 सन्दर्भ सूची
- 2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

बीसवीं सदी से लेकर आज तक के अवधि को "आधुनिक प्रशासन युग" के नाम से जाना जाता है। पिछले एक सदी में अनेक विचारकों ने प्रशासन के अध्ययन को समुन्नत बनाने का प्रयास किया। परम्परागत विचारकों में एफ डब्लू टेलर, हेनरी फेयोल तथा मेक्स वेबर के नाम अग्रगण्य हैं।

प्रस्तुत इकाई में आप इन्हीं तीनों विचारकों के सिद्धान्तों को विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- वैज्ञानिक प्रबंध को परिभाषित कर सकेंगे।
- टेलर का वैज्ञानिक प्रबंध के तकनीकों को बता सकेंगे।
- टेलर का वैज्ञानिक प्रबंध की आलोचनात्मक समीक्षा कर सकेंगे।
- प्रशासनिक विचारधारा में फेयोल एवं लूथर गुलिक के योगदानों का वर्णन कर सकेंगे।
- प्रशासनिक विचारधारा की आलोचनाओं को बता सकेंगे।
- नौकरशाही को परिभाषित कर सकेंगे।
- नौकरशाही की विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- नौकरशाही व्यवस्था की आलोचनाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।

2.3 वैज्ञानिक प्रबंध (Scientific Management):

20 वीं सदी के आरम्भ में प्रशासन ने एक नया रूप ग्रहण जिया जिसे वैज्ञानिक प्रबंध कहा जाता है। इसके जन्म के पीछे औद्योगिक क्रांति की तत्कालीन परिस्थितियां उत्तरदायी थीं। 19 सदी के अंतिम दशक में कम लागत पर क्षेप किस्म का माल बनाने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी थी। फलतः उद्योग में प्रत्येक कार्य के लिये विज्ञान का विकास किये जाने लगा। वैज्ञानिक प्रबंध की आधारभूत मान्यता यह है कि "प्रत्येक कार्य का एक विज्ञान है (There is a science of every work)". वैज्ञानिक प्रबंध की अवधारणा को सार्वभौमिक मान्यता दिलाने में फ्रेडरिक टेलर (1856-1915) का नाम अग्रगण्य है। टेलर का जन्म संयुक्त राज्य अमेरिका के एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। टेलर ने अपना व्यवसायिक जीवन में अमेरिकन मिडवेल स्टील कंपनी में श्रमिक के रूप में शुरू किया परन्तु आपनी मेहनत और लगन के कारण अल्पावधि में ही उसी कम्पनी के मुख्य अभियंता बन गये। इसी दौरान संध्यकालीन स्कूल में अध्ययन करते हुये उन्होंने मास्टर ऑफ इंजीनियरिंग की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् उन्होंने यूरोप के अनेक देशों का भ्रमण किया तथा अनेक पदों पर कार्य करते हुये श्रमिकों की प्रवृत्तियों व समस्याओं को जानने का अवसर प्राप्त किया। प्रबंध के सम्बन्ध में उनके विचार सबसे पहले "Piece rate system" शीर्षक लेख के रूप में 1895 में प्रकाशित हुये। 1911-1912 में उन्होंने "Principles of scientific management" शीर्षक निबंध प्रकाशित किया जिसमें वैज्ञानिक प्रबंध शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किया गया। टेलर ने अपने अध्ययनों एवं परीक्षणों के आधार पर यह बताया कि श्रमिक अपने कार्य में रूचि नहीं लेते है तथा जी चुराते हैं। उनमें यह धारणा बन गयी थी

कि आधिक उत्पादन करने पर कार्य में कमी हो जायेगी और उन्हें कार्य से हटाया जा सकता है। अतः अरुचिपूर्वक एवं धीरे धीरे कार्य करने का ढंग बन गया था (Soldiering was a system)। उन्होंने यह भी पता लगाया कि नियोक्ताओं एवं श्रमिकों की अज्ञानता के कारण ही उत्पादकता में वृद्धि नहीं हो पा रही है। उन्होंने यह सुझाव दिया कि वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग करके बिना अतिरिक्त मानवीय उर्जा एवं प्रयासों के उत्पादकता बढ़ायी जा सकती है ताकि श्रमिकों को उच्च वेतन एवं नियोक्ताओं को उच्च लाभ मिल सके।

2.3.1 वैज्ञानिक प्रबंध की परिभाषायें

पीटर ड्रुकर: वैज्ञानिक प्रबंध का सारभूत तत्व कार्य के व्यवस्थित अध्ययन, कार्य का इसके तत्वों में विश्लेषण तथा श्रमिक के कार्य के प्रत्येक तत्व के निष्पादन में व्यवस्थित सुधार करने में निहित है।

टेलर: वैज्ञानिक प्रबंध सही रूप से यह जानने की कला है कि आप लोगों से क्या करवाना चाहते हैं तथा यह देखना कि वे उसे सर्वोत्तम ढंग तथा अधिकतम मितव्ययिता पूर्वक करते हैं।

जी एस सुधा: वैज्ञानिक प्रबंध एक ऐसी प्रबंधकीय विचार धारा है जो रुढ़िवादी, परंपरागत एवं अनुमानित धारणाओं के स्थान पर तथ्यों, तर्कों, प्रयोगों एवं विश्लेषण पर आधारित सिद्धांतों को स्वीकार करती है। यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित सुव्यवस्थित प्रबंध है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से वैज्ञानिक प्रबंध के सम्बन्ध में निम्नलिखित विशेषताओं का पता चलता है :

- यह एक विचारधारा होने के साथ साथ तकनीकों एवं सिद्धांतों का समूह है।
- यह विज्ञान, तर्क एवं विश्लेषण पर आधारित है।
- यह किसी संगठन में उत्पादकता बढ़ाने पर बल देता है।
- यह मितव्ययिता एवं सर्वोत्तम तरीके की वकालत करता है।
- यह श्रमिक को एक आर्थिक शक्ति के रूप में देखता है तथा वैज्ञानिक तरीके से उसकी कार्य क्षमता में सुधार लाने के पक्ष में है।

2.3.2 वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धांत (Principles of Scientific Management):

I) विज्ञान न की अनुभव या अनुमान (Science not rule of thumb): टेलर का यह मत है कि प्रत्येक कार्य के लिये वैज्ञानिक विधि का विकास किया जाना चाहिए। कार्य निष्पादन की परंपरागत विधियों –"अंगूठे के नियम", अनुमान, परीक्षण एवं भूल विधि, अटकलबाजी का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। अंगूठे के नियम पर आधारित ज्ञान का अर्थ बताते हुये टेलर लिखते हैं कि "यह श्रमिकों के मस्तिष्क, हाथों व शारीर तथा उनके कार्य कौशल, दक्षता व चतुराई पर आधारित होता है तथा जो अभिलिखित नहीं होता है।" विज्ञान के विकास

के लिये सम्बन्धित सूचनायें एकत्रित की जाती हैं, उनका वर्गीकरण और सारणीयन किया जाता है तथा उसका विश्लेषण करके सामान्य नियमों व सिद्धांतों का निर्माण किया जाता है।

II) संघर्ष के स्थान पर मैत्री (Harmony not Discord): टेलर का यह मत है कि किसी भी संगठन में नियोक्ता और श्रमिक दोनों ही महत्वपूर्ण होते हैं। दोनों के समन्वित प्रयासों से ही संगठन का संचालन हो सकता है। अतः उन दोनों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध एवं हित सामंजस्य होना चाहिए। संघर्ष और असंगति से संगठन को क्षति पहुँचती है।

III) सहकारिता न कि व्यक्तिवाद (Cooperation not individualism): टेलर का यह मत है कि किसी भी संगठन में नियोक्ता एवं उसके श्रमिक/सदस्य परस्पर सहयोगी होते हैं। अतः उन्हें एक दूसरे के हितों, लक्ष्यों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर कार्य करना चाहिये। उनके प्रयास पृथक व एकाकी न होकर सहकारिता पर आधारित होने चाहिये। उन्हें एक दूसरे को अपना पूरक मानना चाहिये।

IV) सीमित के स्थान अधिकतम उत्पादन (Maximum output in place of restricted output): वैज्ञानिक प्रबंध किसी संगठन के प्रबंधक एवं उसके सदस्यों की आर्थिक समृद्धि पर जोर देता है। अतः टेलर ने साधनों की पूर्ण क्षमता का उपयोग करते हुये तथा सदस्यों की कार्यक्षमता में वृद्धि करके उत्पादकता बढ़ने पर बढ़ने पर जोर दिया था। उन्होंने स्पष्ट किया कि उत्पादकता बढ़ा कर एक ओर जहाँ संसाधनों का उपयोग, लागतों में कमी एवं लाभों में वृद्धि की जा सकती है वहीं दूसरी ओर सदस्यों को ऊँचा वेतन देना संभव हो पाता है।

V) प्रत्येक व्यक्ति का चरम सीमा तक विकास (Development of each man to the fullest extent): टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबंध में प्रत्येक व्यक्ति को उसकी चरम सीमा तक विकसित होने का अवसर प्रदान किया जाता है। व्यक्ति को अपने विकास के लिये उचित प्रशिक्षण दिया जाता है तथा रूचि के अनुसार कार्य सौंपा जाता है। उनके लिये प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति लागू की जाती है तथा पदोन्नति का अवसर भी प्रदान किया जाता है।

VI) कार्य एवं दायित्वों का विभाजन (Division of work and responsibility): टेलर ने कार्य के नियोजन एवं क्रियान्वयन पहलू को पृथक-पृथक करने पर जोर दिया था। उनके अनुसार किसी संगठन में नियोजन का दायित्व उसके प्रबंधकों पर होना चाहिये जबकि क्रियान्वयन का कार्य उसके सदस्यों द्वारा किया जाना चाहिये। इस प्रकार दोनों वर्गों की क्षमता का सही सही उपयोग हो सकता है।

VII) मानसिक क्रांति (Mental revolution): मानसिक क्रांति वैज्ञानिक प्रबंध का मूल दर्शन है। इसका तात्पर्य यह है कि संगठन के प्रबंधकों एवं उसके सदस्यों के परस्पर विरोधी दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जाना चाहिये। वास्तव में ये दोनों ही संगठन के महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ होते हैं। उन्हें नवीन ढंग से सोच कर एक दूसरे के प्रति निश्चल एवं निष्कपट बनना चाहिये।

2.3.3 वैज्ञानिक प्रबंध की तकनीकें (Techniques of Scientific Management):

टेलर तथा उसके अनुयायियों ने वैज्ञानिक प्रबंध की कई नई तकनीकों का विकास किया था। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

I) क्रियात्मक फोरमैनशिप (Functional foremanship): टेलर ने क्रियात्मक संगठन को वैज्ञानिक प्रबंध का आधार माना है। उन्होंने इस प्रारूप को क्रियात्मक फोरमैनशिप का नाम दिया है। यह प्रारूप विशिष्टीकरण एवं श्रम विभाजन के सिद्धांत पर आधारित है। इसमें किसी संगठन में कार्यात्मक विशेषज्ञों का सदस्यों से प्रत्यक्ष संपर्क होता है तथा प्रत्येक सदस्य को कई विशेषज्ञों से आदेश एवं निर्देश प्राप्त करने होते हैं। इस प्रारूप में प्रत्येक कार्य को छोटे-छोटे भागों में बांटकर प्रत्येक कार्य के लिये एक विशिष्ट फोरमैन नियुक्त किया जाता है जो कि उस क्रिया में विशेषज्ञ होता है।

II) प्रमापीकरण (Standardisation): टेलर ने प्रबंधकों को यह सुझाव दिया कि यंत्रों, उपकरणों, सामग्री, कार्यविधियों, कार्यदशाओं, संसाधनों आदि सभी के प्रमाप निर्धारित कर दिए जाने चाहिये। ये प्रमाप वैज्ञानिक अनुसंधानों, प्रयोगों व अवलोकनों के आधार पर निश्चित किये जाने चाहिये। प्रमापीकरण के द्वारा अनावश्यक अपव्यय को रोका जा सकता है तथा उत्पादन के लागत में कमी और उत्पाद की किस्म में सुधार किया जा सकता है।

III) प्रेरणात्मक मजदूरी प्रणाली (Incentive wage system): टेलर ने यह सुझाव दिया कि श्रमिकों को उनकी क्षमता एवं प्रयासों के आधार पर पारिश्रमिक दिया जाना चाहिये। उन्होंने श्रमिकों को अधिक कार्य करने की प्रेरणा देने के लिये विभेदात्मक मजदूरी प्रणाली का प्रतिपादन किया। इस पद्धति के अनुसार के निर्धारित समय में प्रमापित कार्य पूरा करने वाले सदस्यों को प्रति इकाई ऊँची दर से मजदूरी दी जाती है तथा जो सदस्य निर्धारित समय में प्रमापित कार्य को पूरा नहीं कर पाते नहीं कर हैं, उन्हें प्रति इकाई नीची दर से मजदूरी दी जाती है। यह प्रणाली योग्य सदस्यों को अधिक मजदूरी प्रदान करती है तथा अकुशल सदस्यों को कुशल बनने की प्रेरणा देती है।

IV) श्रमिकों का वैज्ञानिक चुनाव एवं प्रशिक्षण (Scientific selection and training of workers): टेलर का यह मत है कि कार्य के अनुसार ही सदस्यों का चयन किया जाना चाहिये ताकि सही कार्य पर सही व्यक्ति की नियुक्ति की जा सके। सदस्यों के वैज्ञानिक चयन के लिये मनोवैज्ञानिक एवं व्यावसायिक परीक्षण रखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त कार्य के प्रति उनकी रुचि, योग्यता, प्रवृत्ति, व्यक्तित्व आदि की भी जाँच की जा सकती है। वैज्ञानिक विधि से चयनित सदस्यों की कार्यक्षमता अधिक होने के साथ साथ उसके कार्य का पर्यवेक्षण करने की आवश्यकता भी नहीं होगी। इतना ही नहीं अच्छे परिणामों की प्राप्ति के लिये सदस्यों को कार्य पर नियुक्त करने से पहले आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये।

V) कार्य का वैज्ञानिक वितरण (Scientific allocation of work): टेलर का यह मत था कि जब तक कार्य का उचित वितरण नहीं किया जायेगा तब तक उस संगठन की क्षमता में वृद्धि नहीं की जा सकती है।

उन्होंने सदस्यों की रूचि और योग्यता को ध्यान में रख कर सही व्यक्ति को सही कार्य देने की वकालत किया। कार्य का वैज्ञानिक वितरण नहीं होने से एक ओर जहाँ लक्ष्य प्राप्ति में बाधा पहुँचती है वहीं दूसरी ओर सदस्यों में कार्य के प्रति उदासीनता, अरुचि, अनुपस्थिति व अन्य समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त सदस्यों की कार्य कुशलता पर प्रभाव पड़ने से उसके पारिश्रमिक में कटौती हो जाती है। अतः टेलर ने कार्यों के वैज्ञानिक वितरण पर बल दिया।

VI) यन्त्र व सामग्री का वैज्ञानिक चयन (Scientific allocation tools and materials): टेलर का यह मत था की जब तक उपयुक्त किस्म के यंत्र या सामग्री उपलब्ध न हो सकें तब तक कोई भी सदस्य दक्षता पूर्वक कार्य नहीं कर सकता है। अतः प्रबंधकों को चाहिये कि वे प्रयोग में लायी जाने वाली सामग्री के पहले से ही प्रमाप निर्धारित कर लें तथा उसी के अनुसार सामग्री का क्रय करें।

VII) नियंत्रण की सामूहिक विचारधारा (Collective concept of control): टेलर ने प्रबंधकों नियंत्रण की सामूहिक विचारधारा प्रदान की। इसके अंतर्गत किसी संगत में यांत्रिक नियंत्रण पर जोर ना देकर संवेदनशील एवं बौद्धिक नियंत्रण पर जोर दिया जाता है। इस पद्धति में सदस्यों एवं प्रबंधकों दोनों आवश्यकताओं की पर ध्यान दिया जाता है।

VIII) कुशल लागत लेखा प्रणाली (Efficient costing system): कुशल लागत लेखा प्रणाली वैज्ञानिक प्रबंध का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके द्वारा किसी कार्य को करने में जो लागत आता है उससे सम्बन्धित लागतों का अनुमान लगाया जाना चाहिये। ऐसा करने से सामग्री, समय, मशीन आदि के अपव्ययों को रोका जा सकता है।

2.3.4 वैज्ञानिक प्रबंध की आलोचनाएँ (Criticisms of Scientific Management):

टेलर के वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धांतों ने प्रशासन के क्षेत्र में एक क्रांति ला दी तथा औद्योगिक समस्याओं के निराकरण में अमूल्य योगदान दिया है। फिर भी टेलर के सिद्धांत आलोचनाओं से अछूते नहीं रहे। वैज्ञानिक प्रबंध की निम्नलिखित बिंदुओं पर आलोचना की गयीं हैं –

I) यह सिर्फ कारखाना स्तर पर उत्पादन पर बल देता है तथा किसी संगठन के प्रशासकीय

ढांचा के सम्बन्ध में कोई मंतव्य नहीं देता है।

II) यह मानवीय पक्ष की अवहेलना करता है इसके अनुसार श्रमिक/सदस्य सिर्फ एक मशीन है जिनका उद्देश्य उत्पादन करना है।

III) इसमें मानवीय अभिप्रेरणाओं की व्याख्या सिर्फ आर्थिक लाभ के सन्दर्भ में की गयी है। यह सिद्धांत श्रमिकों/सदस्यों के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं की अवहेलना करता है।

IV) यह प्रशासनिक तानाशाही को जन्म देता है क्योंकि समस्त नियोजन का कार्य प्रशासकों/ प्रबंधकों द्वारा ही किया जायेगा तथा श्रमिक/कर्मचारी सिर्फ उनके आदेशों के अनुसार कार्य करेंगे।

V) कार्य विधियों, कार्य माप तथा मजदूरी दर का वैज्ञानिक ढंग से सही- सही मापन नहीं किया जा सकता है।

VI) टेलर की मानसिक क्रांति के सिद्धांत के अनुसार सभी औद्योगिक समस्याओं का निपटारा नियोक्ता तथा श्रमिकों के बीच आपस में विचार विमर्श द्वारा होगा। ऐसे में श्रम संगठनों की शक्ति कम होती जायेगी।

VII) इस सिद्धांत की आलोचना प्रबंधकों द्वारा भी की गयी क्योंकि इसे लागू किये जाने से उनका दायित्व और काम – ये दोनों ही बढ़ गये। साथ ही वैज्ञानिक प्रणाली अपनाने से उनकी निर्णय प्रक्रिया पर अंकुश लग गया।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. वैज्ञानिक प्रबंध शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1919 में किया गया।
2. वैज्ञानिक प्रबंध का सार तत्त्व विज्ञान एवं तर्क है।
3. टेलर के अनुसार किसी संगठन के सदस्यों को प्रशिक्षित करना अनिवार्य नहीं है।
4. टेलर ने किसी संगठन के सदस्यों के लिये प्रेरणात्मक मजदूरी की वकालत की।
5. क्रियात्मक फोरमैनशिप विशिष्टीकरण एवं श्रम विभाजन के सिद्धांत पर आधारित है।
6. टेलर वाद कार्य निष्पादन में अंगूठे के नियम को अपनाने पर जोर देता है।

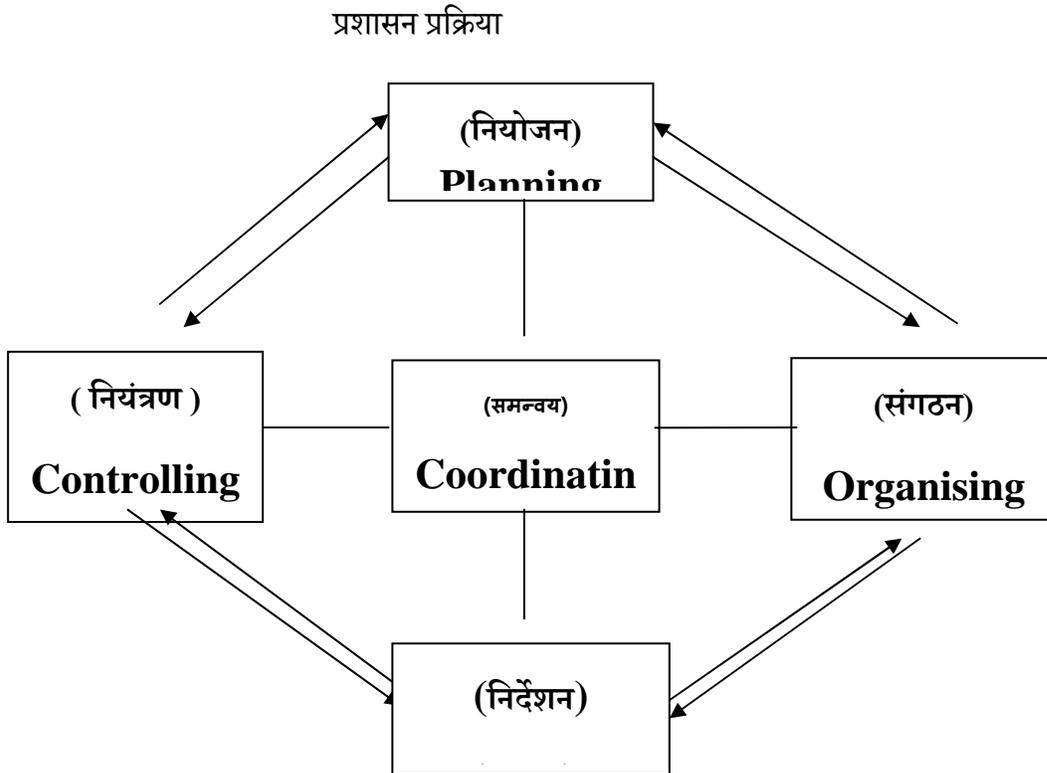
2.4 प्रशासनिक विचारधारा (Administrative theory)

वैज्ञानिक प्रबंध की विचारधारा का प्रारंभ अमेरिका से हुआ था। किन्तु ठीक उसी समय यूरोप में भी एक पूरक सम्पूर्ण विचारधारा प्रचलित हो रही थी जिसे प्रशासकीय विचारधारा के नाम से जाना जाता है। यह विचारधारा अनेक विद्वानों के विचारों का परिणाम रही है। इसमें हेनरी फेयोल, लूथर गुलिक तथा ऑलिवर शैल्डन आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

2.4.1 हेनरी फेयोल का योगदान (Contributions of Henry Fayol)

हेनरी फेयोल एक फ्रांसिसी (1841-1925) अभियंता थे जिन्हें "आधुनिक प्रबंध का जन्मदाता" माना जाता है। उन्होंने प्रशासन से सम्बंधित विचार आपनी लोकप्रिय पुस्तक "General and Industrial management" में 1916 प्रकाशित किया। उनके प्रशासन से सम्बंधित सिद्धांत को व्यापक स्वीकृति मिली और विश्व के सभी राष्ट्रों के प्रशासकों एवं संगठन के मालिकों ने अपनाया। इकाई 1 में आपने पढ़ा कि हेनरी फेयोल ने प्रशासन के 14 सिद्धांतों का प्रतिपादन करके प्रशासकों की कार्यक्षमता बढ़ाने में सक्रिय योगदान दिया। उनका यह मत था कि प्रशासन कुछ निश्चित कार्यों के द्वारा संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने से सम्बंधित

है। यह एक प्रक्रिया है जो कि पृथक पृथक क्रियाओं से मिलकर नहीं बनती है जबकि यह अंतर्संबंधित कार्यों का एक समूह है जिसे एक विशिष्ट क्रम में निष्पादित किया जा सकता है। प्रशासन प्रक्रिया को नीचे दिये गये चित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।



हेनरी फेयोल ने प्रशासन प्रक्रिया के पांच महत्वपूर्ण क्रियायें बताये हैं जिनकी चर्चा निम्नांकित है :

I) नियोजन (Planning): नियोजन के अंतर्गत यह निर्धारित किया जाता है की क्या किया जाना है, कैसे जब और कहाँ करना है, कौन करेगा तथा परिणामों का मूल्यांकन कैसे किया जायेगा। नियोजन के के लिये निम्न कदम उठाये जाते हैं:

- लक्ष्य /उद्देश्य निर्धारित करना
- नियोजन की आधारभूत मान्यताओं को निर्धारित करना

- वैकल्पिक उपायों की खोज तथा परीक्षण करना
- किसी क्षेत्र विकल्प का चयन करना
- आवश्यक सहायक योजनाओं का निर्माण करना
- योजना का क्रियान्वयन एवं अनुवर्तन करना

II) संगठन (Organizing): नियोजन जिन उद्देश्यों व कार्यक्रमों को निर्धारित करता है, उनके क्रियान्वयन के लिये संगठन एक साधन या उपकरण है। इसके अंतर्गत प्रशासक विभिन्न साधनों को एकत्रित करता है तथा उनमें कार्यकारी संबंध स्थापित करने का कार्य करता है। संगठन विभिन्न कार्यों का समूहीकरण करने, कार्यों का वितरण करने तथा संबंधित व्यक्तियों को अधिकार एवं दायित्व सौंपने की प्रक्रिया है। किसी संस्था के संगठन के लिये प्रशासक को निम्न कार्यों को करता है: क्रियाओं का निर्धारण करना

- क्रियाओं का समूहीकरण करना
- क्रिया – समूहों को विभागों को सौंपना
- क्रियाओं के लिये अधिकारों व दायित्वों का निर्धारण करना
- आपसी कार्य-संबंधों का निर्धारण करना

III) निर्देशन (Directing): निर्देशन वह कार्य है जिसके अंतर्गत संस्था के सदस्यों का पर्यवेक्षण, मार्गदर्शन एवं अभिप्रेरण किया जाता है ताकि संस्था के उद्देश्यों को अधिकतम कुशलता के साथ प्राप्त किया जा सके। टेरी के अनुसार, निर्देशन में, "किसी कार्य को गति देना व्यवहार में परिणित करना तथा गति समूह को प्रेरणात्मक शक्ति प्रदान करना शामिल है।" वास्तव में, निर्देशन का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है निम्न कार्य शामिल होते हैं:

- **पर्यवेक्षण (Supervision):** यह कार्य प्रशासक द्वारा आपने अधीनस्थों के कार्यों का निरीक्षण करने से संबंधित है। इसमें वह आपने अधीनस्थों को कार्य करने के ढंग, प्रक्रिया और नियमों की जानकारी देते हैं।
- **सम्प्रेषण (Communicating):** इसके अंतर्गत प्रशासक आपने अधीनस्थों को कार्य के सम्बन्ध में आदेश- निर्देश प्रदान करते हैं, विभिन्न प्रकार की सूचनायें प्रेषित करते हैं तथा उनकी शिकायतों व सुझावों को सुनते हैं।
- **अभिप्रेरण (Motivating):** इसके अंतर्गत प्रशासक अपनी संस्था के सदस्यों में कार्य भावना तथा संस्था के प्रति अपनत्व की भावना का करते हैं।
- **नेतृत्व (Leading):** यह प्रशासक के व्यवहार का वह गुण है जिसके द्वारा वह संस्था के सदस्यों को एक सूत्र में बंधे रखता है और उन्हें पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की ओर प्रेरित करता है।

IV) समन्वय (Coordinating): किसी संस्था के कार्यों में सुविधा उत्पन्न करने एवं सफलता प्राप्त करने के लिये सभी क्रियाओं में सामंजस्य उत्पन्न करना ही समन्वय है। इसके अभाव में लोग अलग अलग दिशाओं में काम करते हैं और उत्पादकता कुप्रभावित होती है और लागत व्यय बढ़ता है। अतः बर्नार्ड ने लिखा है "समन्वय किसी संगठन को जीवित रहने का महत्वपूर्ण तथ्य है।" समन्वय के अंतर्गत निम्न तत्व शामिल होते हैं:

- संतुलन
- समय निर्धारण
- विलयन

V) नियंत्रण (Controlling): नियंत्रण से आशय निर्धारित लक्ष्यों कि प्राप्ति हेतु किये जा रहे प्रयासों की जाँच करना तथा उनमें यदि कोई त्रुटि है तो उसे दूर करना है। नियंत्रण प्रक्रिया के निम्न चार तत्व हैं:

- लक्ष्यों तथा प्रमाणों का निर्धारण करना
- कार्यों का मूल्यांकन करना
- वास्तविक प्रगति को निर्धारित प्रमाणों से तुलना करना
- विचलन हेतु सुधारात्मक कार्यवाही करना

2.4.2 लूथर गुलिक का योगदान (Contribution of Luther-Gullick):

लूथर गुलिक ने 1937 में "Papers on the Science of Administration" नामक पुस्तक का संपादन किया जो प्रशासन के नियमों पर सर्वाधिक प्रभावशाली कृति है। उन्होंने प्रशासन के सात कार्य बताये। इन कार्यों के लिये "POSDCORB (पोसड कोर्ब)" शब्द का प्रयोग किया। इस चिन्ह का प्रत्येक शब्द प्रशासन के कार्यों का संबोधन करता है। ये कार्य निम्नलिखित हैं :

P- Planning (नियोजन): यह किसी संग का एक प्रमुख एवं सर्वोपरि कार्य है। नियोजन का अर्थ होता है निर्धारित लक्ष्यों कि प्राप्ति हेतु उपलब्ध वैकल्पिक नीतियों, विधियों एवं कार्यक्रमों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन करना है।

O-Organizing (संगठन): इसके अंतर्गत नियोजन को कार्य रूप में परिणित करने के लिये क्रियाओं का निर्धारण करना, उन्हें विभिन्न भागों में विभक्त करना, विशिष्ट व्यक्ति समूह को सौपना तथा उनके मध्य पारस्परिक संबंधों को परिभाषित करना आदि सभी शामिल हैं।

S-Staffing (नियुक्तियाँ): स्टाफिंग से तात्पर्य प्रशासन द्वारा निर्धारित नीतियों के क्रियान्वयन हेतु योग्य एवं कर्मठ व्यक्तियों की नियुक्ति से हैं। इसके अंतर्गत पदाधिकारियों/कर्मचारियों का चयन, उनकी भर्ती, मूल्यांकन

एवं प्रशिक्षण शामिल हैं जिससे कि कार्य शक्ति संस्था/संगत के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग दे सके तथा कार्य निष्पादन के दौरान अधिकतम संतोष प्राप्त हो सके।

D-Directing (निर्देशन): निर्देशन से आशय नियत सिद्धांत एवं नीतियों के अनुसार किसी कार्य के क्रियान्वयन की समुचित देखभाल करना ही निर्देशन कहा जाता है। इसके अंतर्गत आदेश देना, निरीक्षण करना, मार्गदर्शन, अभिप्रेरित करना आदि शामिल है।

C- Coordinating (समन्वय): यह प्रशासन का वह कार्य है जो किसी संगठन के विभिन्न विभागों, सदस्यों तथा उनके समूहों में इस प्रकार एकीकरण स्थापित करता है की न्यूनतम लागत पर वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके।

R- Reporting (रिपोर्ट तैयार करना): इसके अंतर्गत प्रशासक अपने संगठन में हुये कार्यों या उसकी उपलब्धियों का विवरण तैयार करता है तथा अपने उच्चाधिकार्यों को इसकी जानकारी समय समय पर देता रहता है।

B-Budgeting (बजट बनाना): इसके अंतर्गत एक निश्चित समय सीमा के अंतर्गत राजस्व तथा खर्चों का लेखा जोखा तैयार किया जाता है।

2.4.3 प्रशासनिक विचारधारा की आलोचनायें(Criticisms of Administrative Theory):

प्रशासनिक विचारधारा के अनुयायियों ने ही सर्वप्रथम प्रशासन को एक प्रक्रिया के रूप में बताया। इस विचारधारा ने सभी संगठनों पर लागू होने वाले सामान्य नियमों का प्रतिपादन किया। ये नियम आज भी सार्थक हैं। परन्तु इसकी आलोचना निम्नलिखित बिन्दुओं पर हुई है:

- I) यह विचारधारा प्रशासन के सिर्फ उच्च स्तरों पर ही ध्यान देती है।
- II) यह सिर्फ संगठन के औपचारिक स्वरूप की व्याख्या करती है।
- III) व्यवहारवादियों ने इसे यांत्रिक बताते हुये यह कहते हैं इसमें मानवीय पहलुओं को नकार दिया गया है। यह विचारधारा मानव रहित संगठन की कल्पना करता है।
- IV) यह किसी संगठनात्मक व्यवहार की गत्यात्मकता की व्याख्या नहीं करता है।
- V) यह पर्याप्त सत्यापन के बिना ही सर्वव्यापी नियमों पर बल देता है।
- VI) यह किसी संगठन को बंद व्यवस्था के समान समझता है।

VII) प्रशासकों का मार्गदर्शन करने के लिये को प्रशासन प्रक्रिया से संबंधित जो निश्चित कार्य बताये गये हैं वे अपर्याप्त हैं। यह सोचना भ्रम है कि बहु विविध उद्देश्यों वाले तथा जटिल संगठनों पर लागू करके एक अच्छा डिजाईन तैयार किया जा सकता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

I	II
A. नियंत्रण	F. विविध संसाधनों का वितरण एवं उनके बीच कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित करना
B. संगठन	G. कार्यों के बीच सामंजस्य स्थापित करना
C. निर्देशन	H. निर्णय लेना
D. समन्वय	I. पर्यवेक्षण मार्गदर्शन एवं अभिप्रेरणा
E. नियोजन	J. कार्यों का मूल्यांकन

2.5 नौकरशाही (Bureaucracy)

18 वी सदी के अंतिम दशक से ही प्रशासन के नौकरशाही रूप (Bureaucracy) की नींव पड़ चुकी थी। मोर्सटीन मार्क्स के अनुसार अंग्रेजी शब्द "ब्यूरोक्रेसी (Bureaucracy)" फ्रांसिसी शब्द "ब्यूरोक्रेटी (Bureaucratie)" से आया है। इस फ्रांसिसी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांस के वाणिज्य मंत्री द्वारा 18 शताब्दी में उस समय की सरकार के लिये किया गया। 19 शताब्दी में इस शब्द का नया रूप *Burokratie* जर्मनी में अपनाया गया और वहीं से यह शब्द अंग्रेजी भाषा में आया। आज संगठन का प्रभुत्वशाली रूप नौकरशाही है। इस शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। इसका प्रयोग कई बार एक प्रशासकीय वर्ग की पहचान के लिये किया जाता है तो कभी एक कार्य पद्धति, एक सिद्धांत या सामाजिक श्रेणी के रूप में किया जाता है।

2.5.1 नौकरशाही की परिभाषायें (Definitions of Bureaucracy):

मैक्स वेबर: नौकरशाही प्रबंध कार्य निष्पादन के लिये संबंधों, सत्ता, उद्देश्यों, भूमिकाओं, क्रियाओं, सम्प्रेषण आदि घटकों की संरचना है।

आर्थर डेविस: नौकरशाही व्यवस्थित नियमों द्वारा परिभाषित विशिष्ट पदों की एक एकीकृत श्रृंखला है यह एक अवैयक्तिक नित्यक्रमिक संरचना है जिसमें वैधानिक सत्ता पद से जुड़ी होती है किसी व्यक्ति से नहीं।

हिक्स एवं गुलिट: नौकरशाही विशिष्ट पदों का एकीकृत सोपान होता है जिनको व्यवस्थित नियमों के द्वारा परिभाषित किया गया होता है - यह एक अवैयक्तिक नित्यचर्या पर चलने वाली संरचना है जिसमें सत्ता पद से जुड़ी होती है, न कि उस व्यक्ति के साथ जो उस पद ओर काम करता है।

2.5.2 नौकरशाही की विशेषतायें (Features of Bureaucracy):

नौकरशाही को अपने अध्ययन का विषय वस्तु बनाने वाले विचारकों में कार्ल मार्क्स, रोबर्टो मिकल्स आदि प्रमुख हैं। परन्तु नौकरशाही का सबसे व्यवस्थित अध्ययन जर्मनी के समाजशास्त्री मैक्स वेबर (1864-1920) ने किया है। यह प्रशासन का एक प्रतिष्ठित एवं परम्परागत रूप है। इसकी मुख्य विशेषताएं निम्नांकित हैं :

I) विशिष्टीकरण एवं कार्य विभाजन (Specialization & Division of labour): वेबर के अनुसार नौकरशाही योग्यता का एक विशिष्ट क्षेत्र है। इसमें कार्यों का विभाजन करके पदधारक को उन कार्यों के सम्बन्ध में आवश्यक दायित्व एवं अधिकार सौंप दिए जाते हैं।

II) पदानुक्रम (Hierarchy): नौकरशाही के समस्त पद, स्तर, श्रेणियाँ एवं स्थितियाँ श्रृंखलाबद्ध होती हैं। प्रत्येक निम्न पद एक उच्च पद के नियंत्रण एवं मार्गदर्शन में होता है। इस प्रकार प्रत्येक कर्मचारी किसी न किसी के नियंत्रण में होता है।

III) निरपेक्ष नियमों की प्रणाली (A System of abstracts rules): नौकरशाही प्रशासन में निरपेक्ष नियमों, विनियमों तथा कार्यविधियों की स्थिर व्यवस्था के आधार पर निर्णय लिए जाते हैं। संस्था के सदस्यों का व्यवहार अनुशासित एवं नियंत्रण के अधीन होता है।

IV) अवैयक्तिक संबंध (Impersonal relationship): नौकरशाही प्रशासन में कर्तव्यों का पालन अवैयक्तिक भावना के आधार पर किया जाता है। इसमें भावनात्मक संबंधों का कोई स्थान नहीं होता है। यह आदर्श बुद्धिवाद पर टिका रहता है यथार्थता पर नहीं।

V) योग्यता पर आधारित (Based on competency): इस प्रकार के प्रशासन में सदस्यों का चयन निष्पक्ष योग्यताओं के आधार पर किया जाता है। इन योग्यताओं की प्राप्ति प्रशिक्षण, परीक्षाओं के पास करने, डिप्लोमा अथवा इन सभी के माध्यम से होती है।

VI) कानूनी सत्ता एवं शक्ति (legal authority and power): नौकरशाही में सत्ता या शक्ति संस्था या पद में निहित होते हैं। एक व्यक्ति एक समय में एक पद पर कार्य करता है। जिस शक्ति का वह प्रयोग करता है उसकी वैधता उसे पद से प्राप्त होती है।

VII) जीवनकालिक उन्नति दृष्टिकोण (Career aspects): रोजमर्रा ही साधारणतया आधिकारियों का एक मात्र पेशा होती है। यह कार्य जीवन कालिक उन्नति का होता है जिसमें कार्य काल की स्थिरता और पेंशन के अधिकार प्राप्त होते हैं। पदोन्नति वरिष्ठता तथा अथवा उपलब्धि पर आधारित होती है जिसका निर्णय उच्चाधिकारी करते हैं। किसी निपेक्ष या विशिष्ट कारण से ही किसी को नौकरी से हटाया जा सकता है।

VIII) लिखित अभिलेख (Written documents): नौकरशाही व्यवस्था के अंतर्गत सभी प्रशासनिक नियमों, निर्णयों, तथा कार्यवाहियों का लिखित अभिलेख रखा जाता है। ऐसा करने से दो लाभ होते हैं – 1) ये अभिलेख ही प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाते हैं। 2) भविष्य के निर्णयों में इन अभिलेखों का इस्तेमाल सन्दर्भ के रूप में होता है।

2.5.3 नौकरशाही की आलोचनायें (Criticisms of Bureaucracy):

I) नौकरशाही सिद्धांत को मशीन सिद्धांत भी कहा जाता है क्योंकि यह संगठन एवं वातावरण के बीच अन्तःक्रिया की व्याख्या नहीं करता है।

II) यह बंद प्रणाली का एक मॉडल प्रस्तुत करता है जिसमें परिवर्तन के साथ समायोजन की क्षमता नहीं होती है।

III) नौकरशाही के संरचनात्मक घटक उन कार्यों के लिये असरदार नहीं होते हैं जिनमें नवीनता एवं सृजनात्मकता होती है। ये केवल रूटीन कार्यों के लिये लाभकारी होते हैं।

IV) इससे संगठन में जड़ता, लोचनीयता, संकीर्णता तथा नियमों के बुद्धिहीन अनुगमन पर जोर देता है।

V) इससे अधीनस्थों के व्यक्तित्व के विकास में बाधा पहुँचती है क्योंकि वे सिर्फ अपने अधिकारियों के हाथों की काठपुतली मात्र होते हैं।

VI) इस व्यवस्था में प्रशासकों का अधिकांश समय कागजी कार्यवाही में व्यतीत होता है। प्रशासकों को "Glorified Clerk" की संज्ञा दी गयी है।

VII) लाल फीताशाही एक ऐसी समस्या है जिसका उद्गम स्थल नौकरशाही ही रही है।

VIII) यह व्यवस्था इस मान्यता पर आधारित है कि पद पर आसीन व्यक्ति तकनीकी रूप से योग्य ही होता है। परन्तु ऐसा कोई जरूरी नहीं है उसके आदेश हमेशा सही हों। ऐसे में अधीनस्थों के समक्ष विरोधाभास उत्पन्न हो जाता है कि वो किसकी आज्ञा का पालन करें – सही आदेश निर्गत करने वाला व्यक्ति या अत्यधिक योग्यता वाला व्यक्ति (the person with the right command or the man with the great expertise)

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- 1 नौकरशाही सिद्धांतों की विस्तृत विवेचना मेक्स वेबर ने किया।
- 2 ब्यूरोक्रेसी फ्रांसिसी शब्द 'ब्यूरोक्रेटी(Bureaucratie)" से लिया गया है।
- 3 नौकरशाही व्यवस्था में सभी निर्णय शाब्दिक रूप में सुरक्षित रखे जाते हैं।
- 4 नौकरशाही व्यवस्था में सभी सदस्यों के बीच भावनात्मक सम्बन्ध होते हैं।
- 5 सत्ता और शक्ति – इन दोनों से ही नौकरशाही व्यवस्था में पद की पहचान होती है।

2.6 सारांश (Summary):

इस इकाई में हमने यह पढ़ा कि प्रशासन के परम्परागत युग में तीन प्रमुख विचारधाराएँ प्रचलित हुई थीं। प्रथम, वैज्ञानिक प्रबंध – इसके जन्म दाता टेलर महोदय थे। यह कार्य को करने में वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग पर बल देती है। उन्होंने वैज्ञानिक प्रबंध की महत्वपूर्ण तकनीकें - क्रियात्मक फोरमैनिशिप, प्रेरणात्मक मजदूरी प्रणाली, प्रमापीकरण, श्रमिकों का वैज्ञानिक चुनाव एवं प्रशिक्षण, कार्य का वैज्ञानिक वितरण, यन्त्र व सामग्री का वैज्ञानिक चयन, नियंत्रण की सामूहिक विचारधारा, कुशल लागत प्रणाली आदि को अपनाए पर बल दिया। द्वितीय, प्रशासकीय विचारधारा – इसके प्रवर्तकों में हेनरी फेयोल एवं लुटेर गुलिक का नाम अग्र गण्य है। इन सबों ने प्रशासन को प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करने के लिये प्रशासकीय कार्यों को आधार माना। हेनरी फेयोल ने प्रशासन के पांच कार्य बताये: नियोजन, संगठन, निर्देशन, समन्वय एवं नियंत्रण। जबकि लूथर गुलिक ने POSDCORD सूत्र के रूप में प्रशासन के कार्यों को स्पष्ट किया। तृतीय, नौकरशाही – इसका व्यवस्थित अध्ययन पहली बार मेक्स वेबर ने किया। उनके अनुसार नौकरशाही एक ऐसी व्यवस्था है जिसका अस्तित्व आज भी अनेक देशों में देखा जा सकता है। इसकी विशेषताएँ- विशिष्टीकरण और कार्यविभाजन, पदानुक्रम, निरपेक्ष नियमों की प्रणाली, योग्यता पर आधारित, अवैयक्तिक संबंध, कानूनी सत्ता एवं शक्ति, जीवनकालिक उन्नति दृष्टिकोण, लिखित अभिलेख आदि हैं।

2.7 शब्दवाली (Glossary)

मानसिक क्रांति: श्रमिक एवं नियोक्ताओं की अभिवृत्तियों और दृष्टिकोणों में परिवर्तन।

क्रियात्मक फॉर्मैनिशिप: वह प्रारूप जिसमें कार्यात्मक विशेषज्ञों का श्रमिकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है तथा प्रत्येक श्रमिक को कई विशेषज्ञों से आदेश प्राप्त करने होते हैं।

प्रेरणात्मक मजदूरी प्रणाली: कुशल मजदूरों को मजदूरी ऊँची दर दिये जाने की पद्धति।

विशिष्टीकरण: विशेष योग्यता के आधार पर कार्य का वितरण

पदानुक्रम: सत्ता और उत्तरदायित्व के आधार पर पदों का श्रृंखला बद्ध होना।

2.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. गलत 2. सही 3. गलत 4. सही 5. सही 6. गलत

अभ्यास प्रश्न 2

A- J, B- F, C- I, D- G, E- H

अभ्यास प्रश्न 3

1. सही 2. सही 3. गलत 4. गलत 5. सही

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ (Bibliography)

Kimball and Kimball. *Principles of Industrial Organisation*, 1967.

Knootz & Donell. *Principles of Management: An Analysis of Managerial Functions*. McGraw-Hill, New Delhi, 1972.

Terry, George.R. *Principles of Management*. All India Traveller Book Seller, New Delhi, 1981.

McFarland. *Management: Principles and Practice*. Macmillian, New York, 1976.

Oliver H. Sheldon. *The Philosophy of Management*. Pitman Publishing Corporation, New York, 1965.

T, Ordway. *The Art of Administration*, McGraw-Hill, New Delhi, 1951.

2.10 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. वैज्ञानिक प्रबंध से क्या तात्पर्य है ? टेलर द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को स्पष्ट करें।
2. प्रशासन के क्षेत्र में हेनरी फोयोल के कार्य की समीक्षा कीजिये।
3. प्रशासन के क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धांतों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
4. नौकरशाही को परिभाषित कीजिये। इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
5. नौकरशाही व्यवस्था की कौन कौन सी कमियाँ होती हैं ?

इकाई 3: प्रशासन का मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत एवं कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति

Human Relation Approach to Administration and Meeting the Psychological Needs of Employees

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत

3.3.1 परिभाषायें

3.3.2 मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत और जार्ज एल्टन मेयो

3.3.3 मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत के प्रमुख तत्व

3.3.4 मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत में अन्य विचारकों का योगदान

3.3.5 आलोचनायें

3.4 कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकतायें

3.4.1 सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सुझाव

3.5 सारांश

3.6 शब्दावली

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रबंध जगत में 1920 तक टेलरवाद प्रचलित रहा। कार्यकुशलता तथा उत्पादकता बढ़ाने के लिये अब तक भौतिक एवं यांत्रिक घटकों पर ही ध्यान दिया जाता था। टेलरवाद के परिणामों – श्रमिक वर्ग की अमानुषिकरण की स्थिति तथा श्रमिक संगठन के आंदोलनों के कारण पश्चिमी देशों, विशेषतया संयुक्त राज्य अमेरिका में पूंजीवाद उद्योग में प्रबंध एवं संगठन की नई समस्या खड़ी हो गयी। इन्हीं औद्योगिक अशांति की समस्याओं के निदान हेतु तथा उत्पादकता एवं कार्यकुशलता बढ़ाने हेतु उद्ध्योग मालिकों ने समाजशास्त्रियों से सुझाव मांगे। इन समाजशास्त्रियों ने परम्परावादी विचारधारा के सिद्धांतों की कमियों को उजागर किया। अपने प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकला कि सारी समस्या मानवीय संबंधों की है। उन्होंने एक नई विचार धारा को जन्म दिया जिसे मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत भी कहा जाता है।

3.2 उद्देश्य (Objectives):

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत के अर्थ एवं परिभाषा को बता सकेंगे।
- मानवीय सम्बन्ध विचारधारा में एल्टन मयो के प्रयोगों के बारे में जानकारी दे सकेंगे।
- मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत के प्रमुख तत्वों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- मानवीय सम्बन्ध विचारधारा में बर्नार्ड एवं फोलेट के योगदान की समीक्षा कर सकेंगे।
- मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत के आलोचनाओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- संगठन के सदस्यों की मनोवैज्ञानिक-सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सुझाव दे सकेंगे।

3.3 मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत: (Human Relations Theory)

मानवीय सम्बन्ध से आशय किसी संगठन में कार्यरत कर्मचारियों के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने तथा उनके हितों को सामान्य हितों के साथ एकीकृत करने से है। यह विचारधारा मानव को सिर्फ उत्पादन का साधन न मानकर उनके साथ मानवीय आधार पर व्यवहार करने पर बल देती है। प्रशासन सम्बन्धी विश्लेषण का यह दृष्टिकोण इस तथ्य पर आधारित है कि किसी प्रशासक का प्रमुख कार्य लोगों के साथ तथा उनके द्वारा काम करना है। अतः किसी संगठन में परस्पर वैयक्तिक संबंधों का केन्द्रीय स्थान होना चाहिए।

3.3.1 परिभाषायें (Definitions):

मेयर: मानवीय संबंध व्यक्तियों के साथ व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से व्यवहार करना है।

जोसेफ एल मेसी: मानवीय संबंध अभिप्रेरण की प्रक्रिया है जो उद्देश्यों में संतुलन स्थापित करती है तथा जिसका लक्ष्य अधिकतम मानवीय संतुष्टि प्राप्त करना तथा संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति में सहयोग करना होता है ।

रोबर्ट साल्टन स्टाल: कार्यरत व्यक्तियों का अध्ययन ही मानवीय संबंध है ।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि मानवीय संबंध किसी संगठन में कार्य करने वाले व्यक्तियों का अध्ययन करता है । इसका उद्देश्य व्यक्तियों के व्यवहार को समझना, मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति द्वारा संतुष्टि प्रदान करना है ताकि वे संगठन को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में सहयोग दें सकें ।

3.3.2 मानवीय संबंध सिद्धांत और जार्ज इल्टन मेयो (Human Relation Theory and George Elton Mayo)

इस विचारधारा के जन्मदाता जार्ज एल्टन मेयो रहे हैं । उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर मानवीय संबंधों की दिशा में अनेक प्रयोग किये हैं । ये प्रयोग वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कंपनी के शिकागो स्थित हव्थोर्न संयंत्र में श्रमिकों पर 1924-1933 तक किये गये । अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से ये प्रयोग चार भागों में विभक्त किये जा सकते हैं:

- **प्रकाश प्रयोग(Illumination Experiment):** ये परीक्षण महिला कर्मचारियों पर किये गये तथा इनका मूल उद्देश्य यह पता लगाना था कि प्रकाश का श्रमिकों की कार्यक्षमता एवं उत्पादकता पर क्या प्रभाव पड़ता है । परीक्षण के अंतर्गत श्रमिकों को दो समूहों में विभक्त दिया गया, एक समूह के श्रमिकों को ऐसे स्थान पर रखा गया जहाँ प्रकाश की अच्छी व्यवस्था थी तथा दूसरे समूह के कार्यस्थल में प्रकाश की मात्रा में समय-समय पर परिवर्तन किया जाता रहा । इस प्रयोग में यह पाया गया कि दोनों समूहों की उत्पादकता बढ़ी है । इस प्रयोग से यह स्पष्ट हो गया कि श्रमिकों की कार्य क्षमता और उत्पादकता – दोनों पर ही प्रकाश का प्रभाव नगण्य है । इसलिये शोधकर्ताओं ने यह निष्कर्ष निकला कि प्रकाश के अतिरिक्त भी कोई तत्व है जो उत्पादन को प्रभावित करता है और वह घटक है " मानवीय संबंध "।
- **प्रसारण संयोजन जाँच-कक्ष प्रयोग (Relay Assembly Test Room Experiments):** यह प्रयोग पूर्व की विसंगतियों को दूर करने के लिये किया गया था । इसका उद्देश्य उत्पादन पर थकान के प्रभाव का माप करना था । इन परीक्षणों के लिये 6-6 लड़कियों के दो-दो समूह बनाये गये तथा उन्हें पृथक कक्षों में टेलीफोन उपकरण जोड़ने का काम सौंपा गया । ये लड़कियाँ कार्य कुशलता एवं अनुभव में औसत श्रेणी की थीं । उनके कार्य की देख भाल के लिये एक सुपरवाइजर भी नियुक्त किया गया जो काम के निरीक्षण के साथ साथ कार्य वातावरण को

सौहार्दपूर्ण भी बनाता था। चार से बारह सप्ताह की प्रयोग अवधि में विभिन्न परिवर्तन करते हुये प्रयोग प्रारंभ किये गये। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकला गया कि कार्य के भौतिक वातावरण का उत्पादन पर किसी तरह का प्रभाव पड़ना अनिश्चित है। दूसरे शब्दों में, फिर भी उत्पादन कम या आधिक हो सकता है। उत्पादकता एवं कार्य दशाओं में किसी प्रकार का कोई सह-सम्बन्ध नहीं किया जा सकता है। उत्पादन वृद्धि का प्रमुख कारण प्रबंधकों का सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार एवं कार्य के दौरान कर्मचारियों को दी गयी स्वायत्तता तथा उच्च कर्मचारी मनोबल है।

- **बैंक कर्मचारी अवलोकन कक्ष प्रयोग (Bank Wiring Observation Room Experiment):** इस परीक्षण का उद्देश्य अनौपचारिक कार्यसमूहों का अवलोकनात्मक विश्लेषण करना था। इस प्रयोग के लिये 14 कर्मचारियों का एक समूह बनाकर उन्हें एक पृथक कक्ष में काम करने को कहा गया। कार्य दशाओं को अपरिवर्तित रखा गया तथा कार्य की देखभाल के लिये पर्यवेक्षक रखे गये थे। इस प्रयोग का यह निष्कर्ष निकला कि अनौपचारिक समूह का मुख्य कार्य अपने सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित एवं नियमित करना होता है। इस प्रयोग ने यह भी स्पष्ट किया कि वित्तीय अभिप्रेरणा तथा कार्य सुरक्षा के स्थान पर कर्मचारियों के साथ अनौपचारिक सामाजिक संबंध करने से अच्छे मानवीय संबंध की स्थापना होती है।
- **साक्षात्कार कार्यक्रम (Interviewing Programme):** इस कार्यक्रम के अंतर्गत 1600 कर्मचारियों के 20,000 साक्षात्कार लिये गये थे जिनका उद्देश्य कंपनी की नीतियों, कार्य दशाओं, कार्य पद्धतियों, पर्यवेक्षण कार्य, वातावरण आदि के संबंध में कर्मचारी की रुचियों को जानना था। इस अध्ययन के ये निष्कर्ष निकले कि कर्मचारियों कि आजादी से अपने विचार प्रकट करने का अवसर देने से उनके मनोबल में वृद्धि होती है। कर्मचारी की मांगों पर संस्था के भीतर और बाहर दोनों प्रकार की पर्यावरणीय अनुभव का प्रभाव पड़ता है।

3.3.3 मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत के मुख्य तत्व (Main Elements of Human Relation Theory):

हथोर्न प्रयोगों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर मेयो ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया वे मानवीय संबंधों के मुख्य तत्वों के रूप में विकसित हुये। ये तत्व निम्नांकित हैं।

I) मानवीय तत्व पर बल (Emphasis on Human Element): किसी भी उपक्रम के सदस्य केवल आर्थिक शक्ति नहीं है जिसका उद्देश्य मौद्रिक लाभ या प्रतिफल के लिये कार्य करना है। जबकि वे इच्छाओं, भावनाओं, आवश्यकताओं आदि से परिपूर्ण एक चेतनायुक्त प्राणी होते हैं।

II) अनौपचारिक समूहों का महत्व (Importance of Informal Groups): कार्य स्थल पर एक साथ कार्य करते-करते आपसी अंतःक्रियाओं एवं मेलजोल के कारण सदस्यों के बीच छोटे छोटे अनौपचारिक समूह बन जाते हैं जो कि उनकी क्रियाओं, दृष्टिकोणों एवं व्यवहारों पर सामाजिक नियंत्रण रखते हैं। इन अनौपचारिक समूहों के स्वयं के कार्य मानदंड, कार्य प्रारूप, नियम, सिद्धांत व मान्यतायें बन जाती हैं जो समस्त कार्य वातावरण को प्रभावित करती हैं।

III) कार्यक्षमता पर मानवीय एवं सामाजिक तत्वों का प्रभाव (Effect of Human and Social Elements on Working Capacity): किसी उपक्रम के सदस्यों की कार्यक्षमतापर न केवल भौतिक वातावरण सम्बन्धी घटकों का प्रभाव परता है बल्कि मानवीय व्यवहार सम्बन्धी तत्व जैसे- मनोबल, अभिवृत्ति, आपसी संबंध, सामाजिक संतुष्टि आदि का भी प्रभाव पड़ता है।

IV) सामाजिक व्यक्ति की अवधारणा (Concept of Social man): इस विचारधारा के अनुसार सामाजिक व्यक्ति की मान्यतायें निम्नांकित हैं:

- व्यक्ति मूल रूप से अपनी सामाजिक आवश्यकताओं से प्रेरित होता है तथा समूह संबंधों के द्वारा अपने व्यक्तित्व एवं पहचान के बीच बोध को विकसित करता है।
- वह कार्य में सामाजिक संबंधों पर बल देता है।
- वह अपने समकक्ष समूह की सामाजिक शक्तियों के प्रति अधिक अनुक्रियाशील होता है।

V) मान्यता, आत्मविकास व मनोबल पर बल (Emphasis on Recognition, Self-Actualization and Morale): मान्यता, आत्मविकास व मनोबल - ये तीनों ही किसी उपक्रम के सदस्यों की उच्च मनोवैज्ञानिक आवश्यकतायें होती हैं जिनकी संतुष्टि उचित अवसरों को प्रदान करके की जानी चाहिये।

VI) मानव सहयोग (Human Collaboration): किसी उपक्रम में श्रेष्ठ कार्य संस्कृति बनाने हेतु तकनीकी कौशल के स्थान पर मानव सहयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिये।

VII) शिकायतें संकेत मात्र हैं (Complaints are only symptoms): किसी उपक्रम के सदस्यों की शिकायतें केवल तथ्यों का विवरण ही नहीं होती, वरन् वे उनके अंदर छुपे हुये दुखों एवं असंतोष का द्योतक होती हैं।

VIII) उदार पर्यवेक्षण प्रणाली (Liberal Supervisory Style): स्वतंत्र, उदार और सहानुभूति पूर्ण पर्यवेक्षण प्रणाली सदस्यों को आर्थिक कार्य करने के लिये प्रेरित करती है। जब सदस्यों को स्वतन्त्रतापूर्वक विचार विमर्श करने, कार्य की विधि एवं आवश्यक पहलुओं का निर्धारण करने तथा कार्य एवं वातावरण पर नियंत्रण रखने की स्वतंत्रता होती है तो वे अधिक लगन तथा उत्साह से कार्य करते हैं।

IX) कार्य एक सामूहिक क्रिया है (Work is a group activity): किसी संगठन में कार्य वैयक्तिक क्रिया नहीं है वरन यह एक सामूहिक क्रिया है। सामूहिक रूप से कार्य करते हुये सदस्य न केवल संगठनात्मक बल्कि वैयक्तिक लक्ष्यों को भी सरलता से प्राप्त कर सकते हैं।

X) भाग लेने योग्य प्रबंध व्यवस्था (Participative Management): कोई भी संगठन सामाजिक संबंधों से निर्मित एक सामाजिक इकाई होती है। अतः किसी भी संगठन में निर्णयन प्रक्रिया में केवल प्रशासक ही नहीं वरन उसमें काम करने वाले कर्मचारीगण भी होते हैं।

3.3.4 मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत में अन्य विचारकों का योगदान (Contribution of Other in Human Relation Theory)

मेयो के विचारों को आगे बढ़ाने में निम्नलिखित दो विचारकों के भी योगदान अद्वितीय हैं

चेस्टर०आई०बर्नार्ड (Chester I Banard): मानवीय सम्बन्ध आन्दोलन के प्रतिभाशाली सिद्धांतवादियों में चेस्टर०आई०बर्नार्डका नाम आता है। वे मेयो के समकालीन थे। 1938 में प्रकाशित पुस्तक "The functions of the Executive" में उनके विचार प्रकाशित हुये जिसने प्रशासकीय विचारधारा के विकास को नयी दिशा दी। उनके प्रमुख विचार निम्नांकित हैं :

I) संगठन एक सहकारी प्रणाली (Organization As A Cooperative System): उनके अनुसार संगठन एक ऐसी प्रणाली है जो मानवीय क्रियाओं से मिलकर बनती है तथा सदस्यों के प्रयास जो कि समन्वित होते हैं, इन क्रियाओं को एक प्रणाली में बदल देते हैं। कोई भी संगठन योगदानों एवं संतुष्टि के संतुलन सिद्धांत पर काम करता है। सदस्यों के प्रयास को योगदान कहते हैं जबकि संतुष्टि संगठन द्वारा प्रदान किये जाते हैं।

II) प्रेरणाओं की अर्थव्यवस्था (The Economy of Incentives): उसके अनुसार व्यक्तियों के प्रयास ही संगठन की उर्जा बन जाते हैं। किन्तु ये प्रयास उन्हें प्रदान की गयी प्रेरणाओं पर निर्भर करते हैं। उसने प्रेरणाओं को दो भागों में विभक्त किया है:

(क) विशिष्ट प्रेरणायें: ये निम्नलिखित चार प्रकार के हैं -

- भौतिक प्रलोभन जैसे - मुद्रा, वस्तुयें या भौतिक दशायें;
- व्यक्तिगत अभौतिक प्रेरणायें जैसे – विशिष्ट पद, प्रतिष्ठा, मान्यता के अवसर, निजी अधिकार;

- कार्य की उपयुक्त भौतिक दशाएं;
- आदर्श उपकार जैसे शिल्प का गौरव, परमार्थवादी भावना, राष्ट्र भक्ति, पूर्णता का अहसास, संगठन निष्ठा, धार्मिक एवं सौन्दर्य बोध आदि;

(ख) सामान्य प्रेरणायें: ये निम्नलिखित चार प्रकार के हैं –

- संस्थात्मक आकर्षण जिसे बर्नार्ड ने सामाजिक संगतता कहा है। उन्होंने बताया कि जातीय मतभेद, वर्ग संघर्ष, राष्ट्रीय शत्रुतायें, रीति-रिवाज, सामाजिक स्तर, शिक्षा, आकांक्षा, धर्म व नैतिकता संगठन में सहयोग को समाप्त कर देते हैं। अतः मानव प्रेम, एकता व मैत्री पूर्ण संबंधों के आधार पर प्रेरणा प्रदान की जानी चाहिये।
- परम्परागत कार्य की दशायें व अभ्यास जनित व्यवहारों व प्रवृत्तियों की अनुपालना
- विस्तृत भागीदारी के अवसर एवं
- बंधुत्व ओर भाईचारे की स्थिति

बर्नार्ड ने यह सुझाव दिया कि इन प्रेरणाओं का दिया जाना परिस्थिति, समय और व्यक्ति पर निर्भर करता है।

III) औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन(Formal and Informal Organization): बर्नार्ड का विचार है कि औपचारिक संगठन बनावटी व्यवस्थायें होती हैं तथा अनौपचारिक संगठनों जो कि प्राकृतिक व्यवस्थायें हैं, में से विकसित हुये हैं। उसके अनुसार औपचारिक संगठन के तीन आवश्यक तत्त्व होते हैं जो कि सभी प्रकार के संगठनों में पाए जाते हैं :I) सदस्यों के बीच सम्प्रेषण II) सदस्यों द्वारा सहयोग या योगदान की इच्छा III) सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति। दूसरी ओर, अनौपचारिक संगठनों का निर्माण व्यक्तिगत संपर्कों तथा अन्तःक्रियाओं के कारण होता है। ये संगठन औपचारिक संगठन के लिये ऐसी कार्य दशाओं का निर्माण करते हैं जिसमें वे कुशलता पूर्वक कार्य कर सकें।

IV) सत्ता का सिद्धांत (Theory of Authority): बर्नार्ड का यह मत है कि स्वीकृति ही सत्ता का आधार होती है। एक अधिकारी की सत्ता सदैव उसके अधीनस्थों द्वारा सत्ता के प्रति दी गयी स्वीकृति/अनुमति पर निर्भर करती है। प्रशासकीय सत्ता का वास्तविक श्रोत उच्च पद या स्थिति न होकर अधीनस्थों की स्वीकृति होती है। वे आगे कहते हैं कि व्यक्ति निम्नांकित चार दशाओं में आदेश को स्वीकार करता है:

- जब वह आदेशों को पूर्ण रूप से समझ पता है।
- जब आदेश संगठन के उद्देश्य के प्रतिकूल नहीं हो।
- जब आदेश उसके निजी हितों के अनुकूल हों तथा उसके लिये किसी प्रकार से अहितकर नहीं हों।

- जब वह शारीरिक ओर मानसिक रूप से आदेशों का पालन करने में समर्थ होता है।

V) उदासीनता का क्षेत्र (Zone of Indifference): उन्होंने आदेशों की स्वीकृति के सम्बन्ध में उदासीनता का क्षेत्र के विचार का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार स्वीकृति योग्यता की दृष्टि से समस्त आदेशों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। कुछ आदेश ऐसे हम्ने हैं जो स्वीकृति योग्य नहीं होते हैं। दूसरे शब्दों में अधीनस्थों द्वारा उनका पालन नहीं किया जाता है। कुछ आदेश तटस्थता की पंक्ति में होते हैं अर्थात् उन्हें मुश्किल से स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है। तीसरी श्रेणी में वे आदेश आते हैं जो अधीनस्थों द्वारा निर्विवाद रूप से स्वीकार किये जाते हैं। बर्नार्ड के अनुसार तीसरी श्रेणी के आदेश ही उदासीनता के क्षेत्र में आते हैं। व्यक्ति कुछ आदेशों के प्रति सत्ता की दृष्टि से उदासीन होते हैं। वे यह जानने कि कोशिश नहीं करते कि आदेश क्या हैं क्योंकि सामान्य रूप से उनके परिणामों व प्रभावों का संगठन में आने के समय ही पूर्वानुमान कर लेते हैं। उदाहरण के लिये, जिन व्यक्तियों की न्युक्ति राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा डिग्री कॉलेजों में प्रवक्ता के पद पर होती है, उन्हें यह पहले से पता रहता है कि स्थानान्तरण होना एक सामान्य बात है। ऐसे में स्थानान्तरण के आदेश के प्रति ज्यादा चिंतित नहीं रहते हैं। ये लोग उदासीन ही रहते हैं चाहे उनका स्थानान्तरण कहीं भी कर दिया जाये। दूसरे शब्दों में, जिन आदेशों के प्रभाव से व्यक्ति परिचित होता है, उसके प्रति प्रायः उदासीन हो जाता है। ऐसे आदेश उसके उदासीनता क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का उदासीनता क्षेत्र पृथक- पृथक होता है।

मेरी पार्कर फोलेट(Mary Parker Follet): मानव सम्बन्ध विचारधारा के इतिहास में मेरी पार्कर फोलेट की एक पृथक पहचान है। उन्होंने व्यवसायिक संगठनों में संबंधों के मनोविज्ञान पर महत्वपूर्ण कार्य किये। उनके योगदानों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है :

I) रचनात्मक संघर्ष (Constructive Conflict): सामान्यतया संघर्ष या मतभेद को किसी उपक्रम/संगठन में बुरा माना जाता है। फोलेट ने पहली बार इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया कि संघर्ष न अच्छा होता है न बुरा, बल्कि यह अच्छे या बुरे परिणामों के लिये प्रशासकों को अवसर प्रदान करता है। संघर्ष किसी भी संगठन में रचनात्मक भूमिका निभा सकता है। यह इनके उपयोग पर निर्भर करता है। यह कोई युद्ध नहीं है, वरन यह विचारों अथवा हितों की भिन्नता का आभास है। उनके अनुसार संघर्ष के समाधान की तीन विधियाँ होती हैं:

- **प्रभुत्व (Domination):** इसका आशय एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार पर विजय प्राप्त करना है। इसमें दबाव, बल प्रयोग एवं दूसरे के हितों पर चोट करने जैसी घटनाएँ शामिल होती हैं। इसी वजह से पार्कर ने इस विधि को अनुचित बताया है।
- **समझौता(Compromise):** इस विधि में दोनों पक्ष अपनी मांगों के कुछ अंश परित्याग करके किसी मध्य बिन्दू पर अनिच्छापूर्वक सहमत हो जाते हैं। यह विधि प्रभुत्व से अच्छी होती है।

- **एकीकरण (Integration):** एकीकरण संघर्ष समाधान की सर्वोत्तम विधि होती है। एकीकरण से आशय किसी ऐसे नए समाधान या विकल्प की खोज करना है जिसमें दोनों पक्षों की वास्तविक मांगें पूरी हो सकें। यह नये व्यवहार द्वारा दोनों पक्षों को संतुष्टि प्रदान करता है।

II) आदेशों का मनोविज्ञान एवं स्थिति का नियम (The Psychology of Order Giving and The law of situation): फोलेट ने 1925 अपने पेपर "The Giving of Orders" में प्रशासकों द्वारा किये जाने वाले आदेशों के मनोवैज्ञानिक पहलुओं का विश्लेषण किया था। ये विश्लेषण निम्नलिखित बिन्दुओं के रूप में स्पष्ट किये गये हैं:

- आदेश देने मात्र से ही संतोषपूर्ण परिणाम प्राप्त हो जायेंगे, यह आवश्यक नहीं है।
- किसी आदेश के प्रति बौद्धिक सहमति प्रकट करना भी स्वयं में अच्छे निष्पादन की गारंटी नहीं है।
- कोई कार्यवाही आदेश की अपेक्षा व्यक्ति के पूर्व अनुभवों के आधार पर निर्मित उसके स्वभाव प्रारूपों (Habit Pattern) पर अधिक निर्भर करती है।
- प्रशासकों को अपने सदस्यों में आदत प्रारूपों एवं मानसिक अभिवृत्तियों का निर्माण करना चाहिये।
- ये प्रारूप एवं अभिवृत्तियाँ प्रशिक्षण द्वारा विकसित की जा सकती हैं।
- प्रशासकों को अपने कार्यों की सम्भावित प्रक्रियाओं का पूर्वानुमान करते हुये उनके किये पूर्व तैयारी कर लेनी चाहिये।
- व्यक्ति आपने भीतर संघर्ष का अनुभव कर सकते हैं।
- आदेशों के फलस्वरूप संघर्षों की उत्पत्ति नहीं, बल्कि उनका समाधान होना चाहिये।

फोलेट ने ही सर्वप्रथम स्थिति के तत्त्व का संगठन के सन्दर्भ में विश्लेषण किया। उन्होंने स्थिति के नियम का प्रयोग आदेश देने के सम्बन्ध में किया था। उनका सुझाव था कि "आदेशों के निर्व्यक्तिकरण (Depersonalization of Orders)" का प्रयोग होना चाहिये। प्रशासकों एवं सदस्यों को संयुक्त रूप से स्थिति का अध्ययन करना चाहिये। एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति पर आदेश जारी नहीं करने चाहिये, बल्कि उन्हें स्थिति से ही आदेश प्राप्त करने चाहिये। दूसरे शब्दों में, यहाँ स्थिति क्रिया-विकल्प उपलब्ध कराती है जिसे दोनों पक्षों द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। आदेश स्थिति से प्राप्त करने पर सदस्यों को यह महसूस नहीं होगा कि वे किसी व्यक्ति के अधिकार और नियन्त्रण में कार्य कर रहे हैं। फलस्वरूप उनके पारस्परिक संबंधों में मधुरता बनी रहेगी।

III) समन्वय सिद्धांत (Principle of coordination): मेरी फोलेट ने समन्वय को प्रशासन का केन्द्रीय सार भाग बताया है। उनके अनुसार प्रभावशाली समन्वय के निम्नलिखित चार सिद्धांत होते हैं:

- **प्रत्यक्ष संपर्क का सिद्धांत (The Principle of Direct Control):** इसके अंतर्गत अन्तर्वैक्तिक समतल संबंधों व व्यक्तिगत सम्प्रेषण की व्यवस्था के द्वारा समन्वय करने का सुझाव दिया।
- **प्रारंभिक अवस्था में समन्वय का सिद्धांत (The Principle of Coordination in Early Stages):** समन्वय की प्रक्रिया योजना बनाने और नीति निर्धारण करते समय ही आरम्भ हो जानी चाहिये। योजनाओं और नीतियों के निर्माण के पूर्व ही विभिन्न विभागों के अध्यक्षों से तथा कर्मचारियों से परामर्श कर लिया जाना चाहिये।
- **पारस्परिक सम्बन्ध का सिद्धांत (The Principle of Reciprocal Relationships):** समन्वय के इस सिद्धांत के अनुसार किसी स्थिति विशेष में सभी घटक पारस्परिक रूप से संबंधित होते हैं। अर्थात् किसी संगठन के सभी सदस्य अपने पारस्परिक संबंधों एवं अन्तःक्रियाशीलता के कारण एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा स्वयं भी एक दूसरे से प्रभावित होते हैं।
- **सतत प्रक्रिया का सिद्धांत (The Principle of Continuous Process):** समन्वय एक सतत प्रक्रिया है अर्थात् समन्वय का कार्य संगठन में सदैव ही चलता रहना चाहिये और इसे अवसरों पर नहीं छोड़ा जाना चाहिये।

IV) सहमति एवं सहभागिता का मनोविज्ञान (The Psychology of Consent and Participation): फोलेट ने यह कहा है कि संगठन/उपक्रम एक क्रियाशील इकाई है जो सभी के विचारों एवं ज्ञान से संचालित होता है। अतः विभिन्न कार्यों एवं निर्णयों में सदस्यों की सहमति प्राप्त करने के साथ उनकी सहभागिता भी आवश्यक है। सहमति एवं सहभागिता प्राप्त करने के लिए उन्होंने तीन उपाये बताये हैं जो कि निम्नलिखित हैं:

- संगठन की संरचना में द्वि-मार्गीय सम्प्रेषण एवं परामर्श की व्यवस्था होनी चाहिये।
- दैनिक प्रबंध व्यवहार में सहभागिता के सिद्धांत को मान्यता दी जानी चाहिये तथा सदस्यों के विचारों का निरंतर उपयोग किया जाना चाहिये।
- संघर्षों के समाधान तथा विभिन्न प्रवृत्तियों, प्रकृति एवं ज्ञान वाले व्यक्तियों के विविध विचारों में सामंजस्य एवं उपयोग की उपयुक्त विधि का विकास किया जाना चाहिये।

V) अधिकार एवं उत्तरदायित्व की अवधारणा (The Concept of Authority and responsibility): फोलेट का यह मत था कि किसी संगठन के सम्पूर्ण अधिकार व शक्ति उच्चतम अधिकारी को सौंप देना उचित नहीं है। प्रशासन में अंतिम सत्ता (Ultimate Authority) व सर्वोच्च नियंत्रण

(Supreme Control) जैसे शब्दों का प्रयोग भ्रामक है। समस्त शक्तियों का संगठन के शीर्ष पर केन्द्रीकरण कर देना अत्यंत अव्यवहारिक एवं निराधार धारणा है।

उनका यह मत था कि किसी व्यक्ति को अधीनस्थ मान कर उस पर अधिकार रखना व्यक्तित्व की भावनाओं के प्रति अपमान और अपराध है। यह स्थिति कभी भी सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था की नींव नहीं बन सकती है। उन्होंने यह सुझाव दिया कि प्रत्येक व्यक्ति को कार्य सत्ता (Authority of Function) दी जानी चाहिये। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति जिसे जो कार्य सौंपा जाये वह उस कार्य के लिए अंतिम रूप से उत्तरदायी होना चाहिये। उसे अपने कार्य क्षेत्र के बारे में अधिकार मिलना चाहिये। उन्होंने लिखा है "अधिकार कार्य के साथ संबंधित है और कार्य के साथ ही रहता है (Authority belongs to the job and stays with the job)".

उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में उनका विचार था कि वैयक्तिक स्तर पर व्यक्ति को कार्य के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये किसी व्यक्ति के प्रति नहीं (A person must be responsible for work not to someone)। विभागीय स्तर पर कार्य के प्रति वे सभी उत्तरदायी होंगे जिन्होंने अपना योगदान दिया है। प्रशासक को विभिन्न वैयक्तिक एवं सामूहिक उत्तरदायित्वों में केवल समन्वय स्थापित करने वाला होना चाहिये।

3.3.5 आलोचनायें (Criticisms):

I) इस सिद्धांत में अनौपचारिक समूहों पर बल दिये जाने के कारण संगठन के औपचारिक स्वरूप, सत्ता एवं सिद्धांतों की उपेक्षा की जाने लगी है।

II) इस सिद्धांत के विचारकों ने मानवीय संबंधों को साधन के बजाय साध्य/लक्ष्य ही मान लिया है। जबकि वास्तविकता यह है कि सुपरिभाषित लक्ष्यों तथा प्रशासकीय निष्पादनों को मानवीय संबंधों से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है।

III) इस सिद्धांत में सम्पूर्ण व्यक्ति के विचार को भुला दिया गया है। व्यक्ति सिर्फ सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से ही प्रेरित नहीं होते हैं जबकि आर्थिक आयाम भी उनके जीवन से जुड़े होते हैं।

IV) कुछ आलोचकों के अनुसार मानवीय सम्बन्ध सिद्धांतों से सम्बंधित प्रयोग पूर्ण रूप से वैज्ञानिक नहीं थे। कार्य, श्रमिक एवं वातावरण के चयन का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था और न ही इसके सम्बन्ध में कोई वैज्ञानिक विधि अपनायी गयी।

V) मानवीय सम्बन्ध सिद्धांतों में संगठन के कार्य की प्रकृति एवं उसके संरचना की अनदेखी की गयी है जो कि किसी भी संगठन के लिये महत्वपूर्ण विषय है।

3.4 कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकतायें (Psychological and Social Needs Of Employees):

किसी भी संस्था का आधार स्तम्भ उनमें काम करने वाले कर्मचारी/सदस्य ही होते हैं। तकनीकी रूप से इन लोगों को उस संस्था/संगठन का मानव शक्ति (Man power) कहा जाता है। कोई भी संस्था/संगठन चाहे समृद्ध और विकासोन्मुखी क्यों न हो, उसे इस स्थिति तक पहुंचाने वाले वहाँ कार्यरत कर्मचारी/सदस्य ही होते हैं। कर्मचारियों/सदस्यों की मूलतः दो प्रकार की आवश्यकतायें होती हैं। प्रथम, आर्थिक आवश्यकतायें तथा द्वितीय, मनोवैज्ञानिक-सामाजिक आवश्यकतायें। प्रथम प्रकार की आवश्यकताओं का स्वरूप मौद्रिक होता है। जबकि दूसरे प्रकार की आवश्यकतायें संतुष्टि, स्वस्थ मनोदेशायें, पहचान, आदि से जुड़ी होती हैं। इन्हीं आवश्यकताओं को मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकता कहा जाता है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित आवश्यकताओं का समवेश किया जाता है:

I) महत्वपूर्ण बनने की भावना (Feeling of Being Important): यह भावना प्रायः सभी व्यक्तियों में होती है चाहे वह किसी भी क्षेत्र में हो। उदाहरण के लिये प्रत्येक शिक्षक यह चाहता है कि विद्यालय के प्राध्यापक उसके कार्यों को गंभीरता से लें और उसको अपनी संस्था का महत्वपूर्ण अंग समझे।

II) आत्म-सम्मान की भावना (Feeling of Self esteem): प्रत्येक व्यक्ति हमेशा अपने आत्म-सम्मान को बनाये रखना चाहता है। उसका पद कितना भी निम्न श्रेणी का क्यों न हो, किसी को यह अधिकार नहीं है कि उसके अहम को चोट पहुंचाये या उसकी बेईज्जती करे।

III) समाज में इज्जत के साथ रहना तथा समाज द्वारा मान्यता की आवश्यकता (Need of living with Dignity in Society and Getting Societal Approval): मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः समाज के साथ अन्य सहयोगियों-सम्बन्धियों के साथ रहने की उसमें स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। ऐसी दशा में प्रशासकों का यह दायित्व बनता है वे सदस्यों की इस सामाजिक आवश्यकता की संतुष्टि करें।

IV) स्नेह का आदान-प्रदान (Exchange of Love and Affection): किसी संस्था में कार्यरत सभी सदस्य आपस में मिलजुल काम करना रहना चाहते हैं। वे हमेशा एक दूसरे की मदद को तैयार रहते हैं। इससे उनके बीच स्नेह का आदान प्रदान होता रहता है और संस्था का माहौल सौहार्द्रपूर्ण बना रहता है।

V) सुरक्षा एवं शांति की आवश्यकता (Needs of Security and Peace): रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकताओं की भांति प्रत्येक सदस्य यह चाहता है कि वह जिस संस्था में कार्य कर रहा है वहां उसकी सेवा स्थायी प्रकृति की हो। कोई भी व्यक्ति आपने जीवन में अशांति नहीं पसंद नहीं करता है। संस्था के सदस्य सुरक्षित सेवायें पसंद करते हैं, नौकरी से किसी भी क्षण निकल दिये जाने की आशंका से वे अपने कार्य में रूचि खो देते हैं। अतः कर्मचारी राज्य बीमा, पेंशन एवं प्रोविडेंट फंड, वृद्धावस्था में सुरक्षा, बीमारी की

अवस्था में चिकित्सीय सहायता एवं अवकाश आदि योजनाओं से श्रमिकों में सुरक्षा की भावना को बढ़ायी जा सकती है।

VI) जीवन में कुछ प्राप्त करने की अभिलाषा (Desire to Acquire Something Special): प्रत्येक सदस्य यह चाहता है की वह अपने सेवाकाल में कुछ प्राप्त करे। इस मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की संतुष्टि में यदि प्रशासक सहायक है तो सदस्य को प्रेरणा मिलती है।

VII) अन्य आवश्यकतायें (Other Needs): इस शीर्षक के अंतर्गत श्रमिकों की अन्य विविध प्रकार की आवश्यकताओं का समावेश किया जा सकता है जैसे- पूछताछ एवं: समझने की आवश्यकता, प्रयोग व शोध की आवश्यकता।

3.4.1 मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सुझाव (Suggestions for Fulfillment of Psychological and Social Needs):

किसी भी संगठन में सदस्यों/कर्मचारियों मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक होती है क्योंकि उनकी कार्य क्षमता का सीधा सम्बन्ध उनके मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दशाओं (**Psycho-Socio Built-Up**) से है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:

I) कार्य स्थल का वातावरण (Ambience of Work Place): भय मुक्त एवं सौहार्द पूर्ण वातावरण ही सदस्यों/कर्मचारियों में आत्म-विश्वास उत्पन्न करता है। अतः कार्य स्थल का वातावरण ऐसा होना चाहिए कि कर्मचारी स्वतंत्र होकर संगठन में पूर्ण मनोयोग से कार्य कर सकें।

II) मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध (Friendly Relation): नियोक्ता एवं कर्मचारियों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होने चाहिये। इससे कर्मचारी स्वयं को संगठन से जुड़ा हुआ मानने लगते हैं और अपने कार्यों में रूचि लेते हैं।

III) कर्मचारियों की सेवा पुस्तिका (Employee's Service Book): इस पुस्तिका में कर्मचारियों के सेवा सम्बन्धी नियमों का उल्लेख होता है। इसके अतिरिक्त उसमें उनकी फोटो, जन्म तिथि, उँगलियों तथा अंगूठों के चिन्ह, निवास स्थान, पदनाम, पद का प्रकार (मौलिक/स्थानापन्न/ स्थाई/अस्थायी) नियुक्ति की तिथि, वेतनमान, पद च्युति का दिनांक और कारण, लिए हुए अवकाश के प्रकार एवं अवधि, कर्मचारी को दिए गए दंड या पुरष्कार या प्रशंसा का विवरण, अर्जित अवकाश आदि का लेखा होता है।

IV) अवकाश का प्रावधान (Leave Arrangement): संगठन में कार्यरत सदस्यों को मानसिक रूप से स्वस्थ होना चाहिये। इसके लिये यह आवश्यक है कि उन्हें साप्ताहिक अवकाश के अतिरिक्त आकस्मिक अवकाश (Causal Leave), चिकित्सा अवकाश (Medical Leave), अर्जित अवकाश (Earned Leave) दिये जायें।

V) पदोन्नति का प्रावधान (Provisions of Promotion): संगठन के सदस्यों/कर्मचारियों को समय-समय पर पदोन्नति दी जानी चाहिये। पदोन्नति का आधार वरीयता/सेवा काल न होकर कार्य की गुणवत्ता होनी चाहिये।

VI) सेवा का स्थायीकरण (Permanence of Services): जिन संगठनों में कर्मचारी स्थाई तौर पर बहाल नहीं किये जाये जाते हैं वहाँ पर निष्पादन संतोषपूर्ण नहीं होता है। ठेके पर बहाल किये गये कर्मचारी उस संगठन से लगाव महसूस नहीं करते हैं और हमेशा नौकरी से हटाये जाने का भय बना रहता है। अतः यह आवश्यक है कि अधिकतम दो सालों तक लगातार सेवाएँ देने पर उस कर्मचारी/सदस्य को सेवाएँ स्थाई/नियमित कर दी जानी चाहिये।

VII) निर्णयों में पारदर्शिता (Transparency in Decision Making): एक प्रशासक जो भी क्रिया करता है वह निर्णयन के द्वारा करता है। अतः उसे व्यक्तिगत तौर पर निर्णय न लेकर सामूहिक तौर पर निर्णय लेने चाहिये। उसे निर्णय प्रक्रिया को पारदर्शी बनाना चाहिये। ऐसा करने से संगठन के सदस्यों को भी यह अहसास होता है कि वे संगठन के लिए कितने महत्वपूर्ण है।

VIII) विशिष्ट कार्यों के किये पुनर्वहन (Reinforcement for Specific Work): संगठन के कर्मचारियों/सदस्यों को उनके विशिष्ट योगदानों या कार्यों के लिए सम्मानित किया जाना चाहिये। यह सम्मान मेडल, पुरस्कार या सुविधाओं के रूप में दिया जाना चाहिये।

IX) नव प्रवर्तन को प्रोत्साहन (Encouragement to Innovations): एक ही तरह का कार्य लम्बे समय तक करते रहने से कर्मचारियों/सदस्यों में बोरियत/उबाऊपन आ जाता है। इससे निजात पाने के लिए यह आवश्यक होता है कि संगठन में काम करने के नये तरीकों या नयी सोच को बढ़ावा दिया जाये।

X) दुर्घटना सम्बन्धी बीमा (Accident Insurance): संगठन के सदस्यों/कर्मचारियों किसी दुर्घटना या गंभीर चोट के शिकार हो सकते हैं। ऐसे में उनके इलाज या दवाईयों या आपरेशन पर बहुत रुपया खर्च होने की सम्भावना होती है। इस विषम परिस्थिति से लड़ने हेतु यह आवश्यक है कि संगठन द्वारा उनकी दुर्घटना सम्बन्धी बीमा करायी जाये।

XI) अवकाश प्राप्ति पर परिलब्धियाँ (Retirement Benefits): अवकाश प्राप्ति पर कर्मचारियों के लिये PPF, Gratuity, Leave Encashment आदि का प्रावधान होना चाहिये।

XII) Other Allowances and perks (अन्य भत्ते एवं परिलाब्धियाँ): इसके अंतर्गत आवासीय सुविधा, बच्चों के लिए स्कूल की सुविधा, यात्रा भत्ता, कैंटीन, अस्पताल, क्लब आदि सुविधायें शामिल हैं।

समूल्यांकन हेतु प्रश्न

- 1) हर्थोर्न संयंत्र में प्रयोग एल्टन मयो और उनके साथियों द्वारा किये गये।
- 2) मेरी पार्कर फोलेट ने रचनात्मक संघर्ष की अवधारणा का सूत्रपात किया है।
- 3) PPF तथा Gratuity कर्मचारियों को अवकाश प्राप्ति पर मिलने वाली परिलाब्धियाँ होती हैं।
- 4) शांति एवं सुरक्षा की आवश्यकता एक आर्थिक आवश्यकता होती है।
- 5) आदेशों के निर्व्यक्तिकरण की अवधारणा प्रतिपादन एल्टन मयो ने किया था।

3.5 सारांश (Summary):

मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत का जन्म टेलरवाद के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। यह सिद्धांत परम्परावादी सिद्धांत के आर्थिक मनुष्य की धारणा को चुनौती देती है। मेयो के हथोर्न प्रयोगों ने इस सिद्धांत को एक निश्चित दिशा दी। उन्होंने ने जिन प्रमुख तत्वों पर बल दिया वे इस प्रकार हैं: मानवीय तत्व, औपचारिक समूह, मानव सहयोग, सामाजिक मनुष्य की अवधारणा, उदार पर्यवेक्षण प्रणाली, सहभागी प्रबंध, कार्यक्षमता पर मानवीय एवं सामाजिक तत्वों का प्रभाव मान्यता, आत्मविकास व मनोबल पर बल, कार्य एक सामूहिक क्रिया के रूप में। इसके अतिरिक्त चेस्टर बर्नार्ड एवं मेरी पार्कर फोलेट ने भी इसे एक नया आयाम प्रदान किया। चेस्टर बर्नार्ड के प्रमुख सिद्धांत थे: संगठन एक सहकारी प्रणाली, प्रेरणाओं की अर्थव्यवस्था, औपचारिक संगठन पर बल, सत्ता का सिद्धांत तथा उदासीनता का क्षेत्र। मेरी पार्कर फोलेट ने रचनात्मक संघर्ष, आदेशों का मनोविज्ञान एवं स्थिति का नियम, समन्वय सिद्धांत, सहमति एवं सहभागिता, अधिकार एवं उत्तरदायित्व की अवधारणा आदि पर बल दिया। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं के अंतर्गत आनेवाली आवश्यकतायें यथा महत्वपूर्ण बनने की भावना, आत्म-सम्मान की भावना, समाज में इज्जत के साथ रहना तथा समाज द्वारा मान्यता, स्नेह का आदान-प्रदान, सुरक्षा एवं शांति की आवश्यकता, जीवन में कुछ प्राप्त करने की अभिलाषा आदि महत्वपूर्ण हैं।

3.6 शब्दवाली (Glossary)

1. हथोर्न प्रयोग: एल्टन द्वारा किया गया प्रयोग
2. मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत: व्यक्तियों का अध्ययन
3. आदेशों के निर्व्यक्तिकरण: आदेश स्थिति से प्राप्त होते हैं, व्यक्ति से नहीं।
4. अनौपचारिक संगठन: व्यक्तिगत संपर्कों तथा अन्तःक्रियाओं कारण बना संगठन।
5. सहकारी प्रणाली: व्यक्तियों के संयुक्त प्रयास से निर्मित व्यवस्था।

3.7 समूल्यांकन हेतु प्रश्न के उत्तर

अभ्यास प्रश्न- 1

- 1) सही 2) सही 3) सही 4) गलत 5) गलत

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ (Bibliography)

1. Awasthi, A & S. Maheshwari, *Public Administration*. Lakshmi Narayan Agarwal, Agra, 2011.
2. Bhatnagar, R.P.& V. Aggarwal. *Educational Administration, Supervision, Planning &*

3. *Financing*. R.L Book Depot, Merrut, 2009.
4. Bhattacharya, M. *New Horizons of Public Administration*, Jawahar Publishers & Distrubutors, New Delhi, 2011.
5. Chandra ,S.S & A.K, Chakraborty *School Administration, Organisation, Management and Supervision*. R.Lal Book Depot, Meerut, 2008.
6. Mukherjee,S.N. *Administration of Education, Planning & Finance (Theory and Practices)*. Archarya Book Depot, Baroda, 1970.
7. Owens,Robert.G. *Organisational Behaviour In Education: Adaptive Leadership & School Reform*. Pearson, Boston.
8. Prasad, L.M. *Organisational Behaviour*. S Chand & Sons, New Delhi, 2005.
9. Saxena, L.C. *Prabandh Ke Siddhant* Sahitya Bhawan, Agra, 2002.
10. Sharma, G.D & G.C. Khurana, *Prabandh Ke Siddhant*. Ramesh Book Depot, Jaipur, 2007.
11. Sharma, M.P &, B.L. Sadana *Lok Prashasn Kitab Mahal*, Alladabad. 2011.
12. Stephens J. Knezevish. *Administration of Public Education*. Happer & Row Publishers,
13. Newyork.

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. मानव सम्बन्ध को परिभाषित करें। इस सिद्धांत के विकास में हव्थोर्न प्रयोगों की व्याख्या करें।
2. मानव सम्बन्ध सिद्धांत के विकास में मेयो के योगदान पर प्रकाश डालें।
3. मानव सम्बन्ध सिद्धांत को समृद्ध करने में चेस्टर बर्नार्ड एवं मेरी पार्कर फोलेट के विचारों का उल्लेख करें।
4. मानव सम्बन्ध सिद्धांत की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालें एवं उनकी अलोचनाओं को लिखें।
5. कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकताएं कौन कौन सी होती हैं? उनकी पूर्ति हेतु उपायों की चर्चा करें।

इकाई 4: शैक्षिक प्रशासन की नूतन प्रवृत्तियाँ New Trends of Educational Administration

इकाई की रूपरेखा

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 प्रशासन का प्रणाली उपागम
 - 4.3.1 प्रणाली की परिभाषायें
 - 4.3.2 प्रणाली की कार्यविधि
 - 4.3.3 प्रणाली के घटक
 - 4.3.4 प्रणाली की प्रकृति
- 4.4 निर्णयन
 - 4.4.1 निर्णयन की परिभाषायें
 - 4.4.2 निर्णयन के विशिष्ट लक्षण
 - 4.4.3 निर्णयन की प्रक्रिया
- 4.5 संगठनात्मक विकास
 - 4.5.1 संगठनात्मक विकास की परिभाषायें
 - 4.5.2 संगठनात्मक विकास के उद्देश्य
 - 4.5.3 संगठनात्मक विकास की प्रक्रिया
- 4.6 कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षण तकनीक (PERT)
 - 4.6.1 कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षण तकनीक (PERT) के चरण
 - 4.6.2 कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षण तकनीक (PERT) तंत्र का निर्माण
 - 4.6.3 कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षण तकनीक (PERT) की लाभ एवं सीमायें
- 4.7 सारांश
- 4.8 शब्दावली
- 4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ
- 4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

थॉमस जेफ़रसन का कथन है "मैं विगत इतिहास की तुलना में भविष्य के सपनों को अधिक पसंद करता हूँ। यह सच है कि भविष्य में ही व्यक्ति के या किसी उपक्रम के स्वप्न, योजनायें, चुनौतियाँ, अवसर, विकास

दृश्य.प्रतिबद्धतायें आदि निहित होती हैं। शिक्षा जगत भी निरंतर बदल रहा है – नये विचारों, नयी तकनीकों, नये चिंतन एवं नये सन्दर्भों के साथ। शैक्षिक प्रशासन में नवीन प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही हैं, नई चुनौतियाँ उठ रही हैं तथा नये सामाजिक एवं नीतिगत मूल्यों का उदय हो रहा है। इस नये उतरदायित्वों एवं चुनौतियों से शैक्षिक प्रशासन का स्वरूप अत्यंत गतिशील हो चुका है। प्रस्तुत इकाई में हम इसकी कुछ नई प्रवृत्तियों का अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य (Objectives):

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- प्रशासन के प्रणाली उपागम के तात्पर्य को बता सकेंगे।
- प्रणाली को परिभाषित कर सकेंगे।
- प्रणाली के घटकों एवं प्रकृति पर को स्पष्ट कर सकेंगे।
- निर्णयन की परिभाषा एवं अर्थ को बता सकेंगे।
- निर्णयन की विशेषतायें एवं सिद्धांतों को बता सकेंगे।
- निर्णयन की प्रक्रिया पर प्रकाश दल सकेंगे।
- संगठनात्मक विकास की परिभाषा एवं अर्थ को बता सकेंगे।
- संगठनात्मक विकास की प्रक्रिया को स्पष्ट कर सकेंगे।
- कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षण तकनीक (PERT)के विभिन्न चरणों के बारे में बता सकेंगे।
- कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षण तकनीक (PERT) के लाभ एवं सीमाओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।

4.3 प्रशासन का प्रणाली उपागम (System Approach to Administration):

आधुनिक युग में प्रशासन के अद्ध्ययन को अधिक वैज्ञानिक बनाने के लिए प्रणालीबद्ध दृष्टिकोण एक तकनीकी के रूप में अपनाया जाने लगा है। इस दृष्टिकोण की व्याख्या करने से पूर्व "प्रणाली" का अर्थ समझना आवश्यक है। सामान्यतः "प्रणाली" से आशय किसी कार्य को सम्पन्न करने की पद्धति या ढंग से होता है, किन्तु व्यापक दृष्टि से "प्रणाली" से आशय किसी सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिये विभिन्न क्रियाओं के परस्पर संकलन से है। जिस प्रकार मानव शरीर एक सम्पूर्ण प्रणाली है जिसमें अनेक उपप्रणालियाँ समिलित हैं जैसे नाड़ी प्रणाली, श्वसन प्रणाली, पाचन प्रणाली आदि उसी प्रकार एक उपक्रम भी अनेक उपप्रणालियों की एक प्रणाली होती है। प्रणाली सम्पूर्णता से संबंधित होती है, खण्डों से नहीं। प्रणाली के अंतर्गत सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये अमुक कार्य को विभिन्न चरणों में विभाजित करके एक क्रम निर्धारित कर लिया जाता है तथा उसी के अनुरूप कार्य का निष्पादन किया जाता है। इस प्रकार प्रणाली

दृष्टिकोण से आशय किसी सम्पूर्ण के विश्लेषण एवं अध्ययन से है। प्रणालीबद्ध दृष्टिकोण विशिष्टता के स्थान पर सामान्यता पर अधिक बल देता है।

4.3.1 प्रणाली की परिभाषायें (Definitions of System):

कूटज व ओ' डोनेल: प्रणाली को परस्पर क्रियाओं द्वारा उद्देश्यों या कार्यों के एक संकलन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

जे ए मोर्टन: प्रणाली विभिन्न अंगों का परस्पर संकलन है जो एक सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिये मिलकर कार्य करते हैं।

सेमुर टील्स: प्रणाली परस्पर सम्बद्ध भागों का एक समूह होती है।

जॉन ए बेकेट: प्रणाली परस्पर क्रियाशील प्रणालियों का संकलन है।

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि प्रणाली किसी सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिये रचित अन्तः क्रियाओं का एक समन्वित रूप है।

4.3.2 प्रणाली की कार्य विधि (Working Procedure of System):

प्रत्येक प्रणाली की एक निश्चित कार्यविधि होती है। यह अपने वातावरण से साधन एवं निवेश प्राप्त करती है। उसके बाद प्रणाली द्वारा उन साधनों का प्रसंस्करण अथवा रूपांतरण करके उत्पादन या निर्माण किया जाता है जिसे समाज या वातावरण को प्रदान किया जाता है। प्रत्येक प्रणाली में पुनः निवेश की व्यवस्था भी होती है जिसके द्वारा उत्पाद या परिणामों का मूल्यांकन करके संबंधित सूचना एवं तथ्य सुधार हेतु पुनः निवेश के लिये संप्रेषित किये जाते हैं। प्रणाली निरंतर वातावरण से जुड़ी होती है। एक प्रणाली की कार्य विधि को आगे दर्शाये गये चित्र से समझा जा सकता है।

4.3.3 प्रणाली के घटक या तत्व (Components of System):

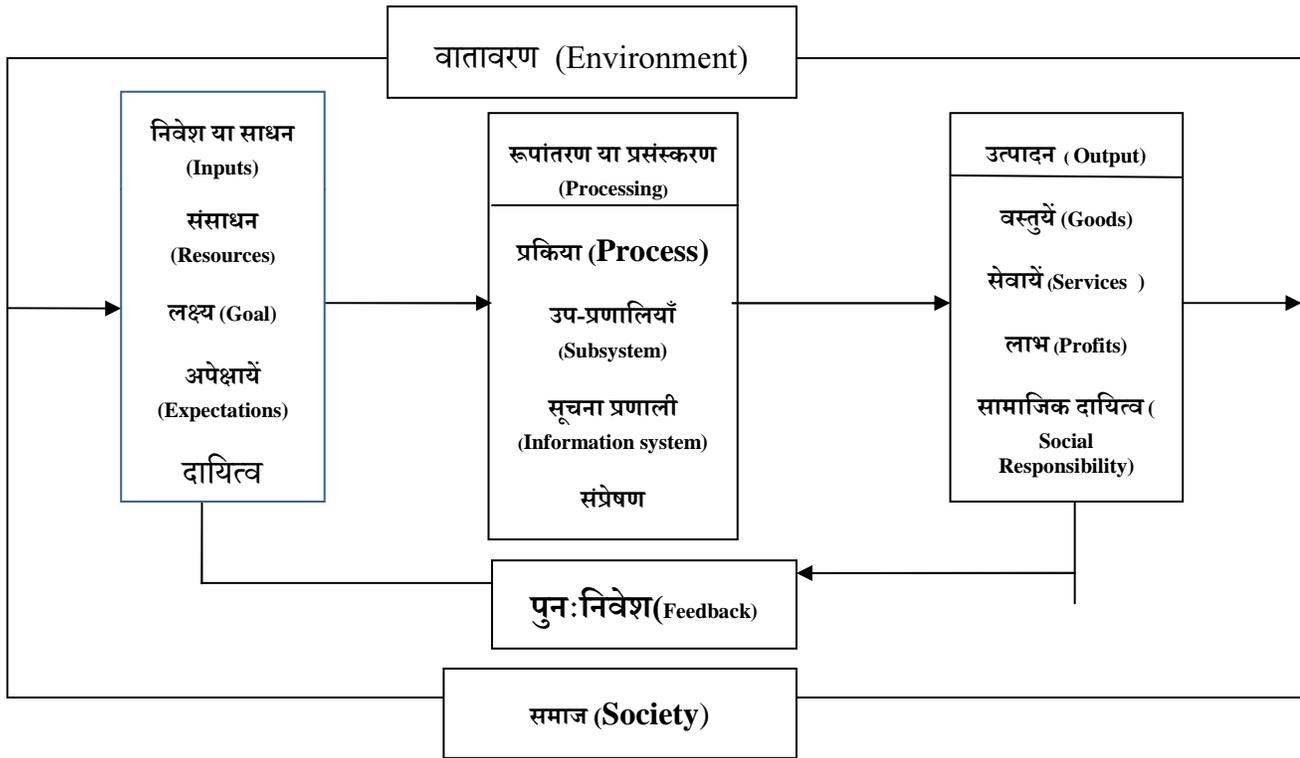
I) निवेश (Inputs): इसके अंतर्गत किसी संगठन में मानव, श्रम, भौतिक साधन, मशीन आदि आते हैं। साथ ही विभिन्न वर्गों के लक्ष्य तथा उनकी अपेक्षायें भी निवेश में शामिल हैं।

II) रूपांतरण क्रिया (Transformation Process): इसमें विभिन्न उपप्रणालियों के माध्यम से वातावरण से प्राप्त निवेशों का रूपांतरण किया जाता है।

III) उत्पादन (Output): इसमें निवेश किए गये संसाधनों का रूपांतरण करके संगठन के सदस्यों की कार्यकुशलता एवं योग्यता की वृद्धि की जाती है।

IV) पृष्ठ पोषण (Feedback): इसमें निवेश, विभिन्न उद्देश्यों, अपेक्षाओं, आशाओं आदि का मूल्यांकन करके कमियों तथा त्रुटियों का पता लगाया जाता है और उन्हें दूर किया जाता है।

V) संचार व्यवस्था (Communication System): सभी विभागों के कुशल संचालन तथा प्रबंधकीय कार्यों के सफल निष्पादन के लिये कुशल संचार की व्यवस्था करनी होती है। बाह्य वातावरण से संपर्क करने तथा विभिन्न वर्गों जैसे सरकार, पेशेवर संस्थानों, अन्संधानकर्ताओं आदि से जुड़ने के लिये यह प्रणाली आवश्यक है।



4.3.4 प्रणाली की प्रकृति (Nature of System):

I) सम्पूर्ण का अध्ययन (Study of Whole) – सम्पूर्ण उपक्रम एक इकाई के रूप में कार्य करता है जो विभिन्न विभागों में विभाजित होता है। ये विभाग अपने आप में पूर्ण एवं स्वतंत्र होते हुये भी पृथक् रूप में होते हैं जिनको बाँटकर अलग अलग अध्ययन नहीं किया जा सकता है।

II) समन्वित प्रयास (Coordinated Effort) – यह विचारधारा यह मानती है कि एक उपक्रम विभिन्न विभागों, अनुभागों व मनुष्यों का संकलन मात्र नहीं है। अतः प्रशासक इनके प्रयासों को समन्वित करके कुल परिणामों में वृद्धि कर सकता है।

III) अन्तःसंबंधों पर ध्यान (Focus upon Interrelationships) – किसी उपक्रम के विभिन्न विभागों की क्रियायें परस्पर रूप से संबंधित होती हैं। विभागों के कार्यकारी औपचारिक सम्बन्ध होते हैं। ये एक-दूसरे की क्रियाओं से प्रभावित होते हैं।

IV) सामान्य उद्देश्य की पूर्ति (Fulfillment of General Objectives) – यद्यपि प्रत्येक विभाग के कुछ विशिष्ट लक्ष्य होते हैं जिनकी प्राप्ति के लिये वे प्रयत्नशील होते हैं किन्तु उपक्रम का लक्ष्य सर्वोपरि होता है। प्रत्येक विभाग उपक्रम के उद्देश्य, योजनाओं व नीतियों के अनुरूप ही अपने कार्यों का संचालन करता है।

V) प्रतिपुष्टि (Feedback) – किसी प्रशासक का उद्देश्य उपक्रम की क्रियाओं में एक गतिशील साम्य (Dynamic Homeostasis) बनाये रखना होता है। अतः प्रशासक को उपक्रम में प्रतिपुष्टि (Feedback) एवं सम्प्रेषण (communication) की व्यवस्था करनी होती है।

VI) सम-अन्तिमता (Equifinality) – प्रशासन की कोई एक श्रेष्ठ विधि नहीं हो सकती। प्रशासक विभिन्न संसाधनों, प्रक्रियाओं, अथवा विधियों के द्वारा लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकता है। इस प्रकार प्रशासक सम-अन्तिमता पर बल देता है।

VII) वातावरण से संबद्ध (Related with Environment) – उपक्रम एक सामाजिक प्रणाली है। अतः उसे न केवल आंतरिक वातावरण वरन् बाह्य वातावरण भी प्रभावित करता है।

4.4 निर्णयन (Decision Making):

निर्णय लेना किसी प्रशासक का एक प्रमुख कार्य है। निर्णय के बिना किसी भी संस्था को कारगर नहीं बनाया जा सकता है। आर. एस. डावर के अनुसार "एक प्रशासक जो भी करता है वह निर्णय पर आधारित होता है। उसे निर्णय लेकर ही अपने कर्तव्यों का निष्पादन करना पड़ता है"। उदाहरण के लिए एक विद्यालय के प्रशासक को यह सोचना पड़ता है कि उस विद्यालय को संचालित करने के लिए कितने शैक्षणिक एवं गैर शैक्षणिक कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। उसे यह तय करना होता है कि विद्यालय कि समय सारिणी क्या होगी और कौन से शिक्षक को कितने कालांश दिए जायेंगे? इन प्रश्नों पर चिंतन करके किसी निष्कर्ष तक पहुँचने का कार्य ही निर्णयन कहा जाता है। इस तरह एक प्रशासक अनेक विकल्पों पर विचार करके किसी श्रेष्ठ विकल्प का चयन करता है ताकि कम समय एवं न्यूनतम लागत पर कार्यों को सम्पन्न किया जा सके।

4.4.1 निर्णयन की परिभाषायें (Definitions of Decision Making):

वेबस्टर शब्दकोष: निर्णयन किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में किसी विचार या क्रिया विधि को निर्धारित करने की क्रिया है।

कूज एवं विहरिच: निर्णयन किसी क्रियाविधि के विभिन्न विकल्पों में से किसी एक का चयन करना है।

चेस्टर बर्नार्ड: निर्णयन की प्रक्रियायें प्रमुख रूप से चयन को सीमित करने की तकनीकें हैं।

ट्रेवेथा तथा न्यूपोर्ट: निर्णयन में से किसी समस्या का समाधान करने के लिये दो या अधिक संभावित विकल्पों में से किसी एक क्रियाविधि का चयन किया जाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि निर्णयन एक बौद्धिक क्रिया है जिसमें किसी कार्य को करने या किसी समस्या के समाधान के लिये विभिन्न संभावित विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चयन किया जाता है। निर्णयन किसी वांछित लक्ष्य की प्राप्ति के लिये एक सर्वश्रेष्ठ क्रियाविधि के चयन की प्रक्रिया है।

4.4.2 निर्णयन की विशेषतायें (Characteristics of Decision Making):

- निर्णयन विभिन्न चरणों में विभाजित एक प्रक्रिया है।
- यह श्रेष्ठ विकल्प की खोज एवं चयन की प्रक्रिया है।
- यह एक बौद्धिक एवं विवेकपूर्ण प्रक्रिया है।

- निर्णयन के कुछ मानदंड या आधार होते हैं।
- सामान्यतः तर्कपूर्ण एवं पर्याप्त विचार – विमर्श के बाद ही निर्णय लिये जाते हैं
- निर्णय कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए लिये जाते हैं। यह एक सामाजिक एवं मानवीय प्रक्रिया है।
- निर्णयन परिस्थितियों, संसाधनों तथा कार्य वातावरण से प्रभावित होता है।
- निर्णयन वास्तविक स्थिति के समरूप होते हैं
- निर्णयन नियोजन का एक अंग है।
- निर्णयन में समय तत्व महत्वपूर्ण होता है।
- निर्णयों की एक क्रमिक श्रृंखला होती है। कोई भी निर्णय अकेला नहीं होता है। वह अपने पहले और बाद के निर्णयों से किसी न किसी रूप में जुड़ा रहता है।
- निर्णयन स्वयं में कोई लक्ष्य नहीं होता है जबकि यह अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति का एक साधन है।
- निर्णयन से वचनबद्धता या कार्यवाही का जन्म होता है।

4.4.3 निर्णयन के सिद्धांत(Principles of Decision Making):

किसी प्रशासक को निर्णय लेने हेतु कुछ आधारभूत सिद्धांतों को ध्यान में रखना चाहिए जो इस प्रकार हैं:

I) उचित व्यवहार का सिद्धांत (Principle of Reasonable Behaviour): निर्णय लेते समय प्रशासक को मानवीय व्यवहार का अध्ययन करके उसे समझना चाहिए। उसे उस निर्णय से अपने अधीनस्थों/सहकर्मियों पर पड़ने वाले प्रभाव का आकलन चाहिए।

II) सीमित घटक का सिद्धांत (Principle of Limiting Factors): किसी प्रशासक को निर्णय लेते समय उन घटकों को पहचान लेना चाहिए जो इच्छित लक्ष्यों की प्राप्ति में सीमित हैं।

III) गतिशीलता का सिद्धांत (Principle of Dynamics): किसी भी संस्था के सदस्यों की आवश्यकतायें, उद्देश्य, मनोदशायें, सामाजिक मूल्य, राजनीतिक दशायें, आर्थिक परिवेश आदि सभी बदलते रहते हैं। इन सभी को ध्यान में रख कर ही प्रशासक को निर्णय लेने चाहिये।

IV) समय का सिद्धांत (Principle of Timing): अनुकूल और अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने के लिये सही समय पर सही निर्णय लेना चाहिये तथा उनका क्रियान्वयन भी सही समय पर सही तरीके से होना चाहिये।

V) अनुपातिक सिद्धांत (Principle of Proportionality): निर्णय लेते समय वित्तीय, मानवीय एवं समय संसाधनों का आनुपातिक संयोजन रखा जाना चाहिये।

VI) सहभागिता का सिद्धांत (Principle of Participation): निर्णय लेते समय निर्णय से प्रभावित सभी पक्षकारों को निर्णयन में सहभागिता प्रदान की जानी चाहिए।

VII) विकल्पों का सिद्धांत (Principle of Alternatives): किसी समस्या के समाधान हेतु निर्णय लेने से पूर्व प्रशासक को विभिन्न विकल्पों का पता लगाकर उनका सही सही मूल्यांकन करना चाहिए।

VIII) लोच का सिद्धांत (Principle of Flexibility): प्रशासकों द्वारा लिये गये निर्णय लोचशील होने चाहिये ताकि उन्हें परिवर्तित परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुरूप समायोजित किया जा सके।

IX) अधिकतम लाभ का सिद्धांत (Principle of Profit Maximization): इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक प्रशासक को अपने निर्णयों में संगठन के आर्थिक, मानवीय सेवा उद्देश्यों का इस प्रकार से समन्वय करना चाहिये कि वह संगठन को अधिक रूप से लाभान्वित कर सके।

X) संदेह का सिद्धांत (Principle of Doubt): संदेह की स्थिति निर्णयन का हृदय होती है। कौन सा विकल्प श्रेष्ठ है इस सम्बन्ध में निर्णय कर्ता के मस्तिष्क में अनिश्चितता रहनी चाहिये। संदेह ही विकल्पों के विश्लेषण और मूल्यांकन को जन्म देता है।

4.4.4 निर्णयन प्रक्रिया (Decision Making Process):

निर्णयन प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें विभिन्न चरण शामिल होते हैं। ये चरण निम्नलिखित हैं:

I) स्थिति परीक्षण एवं समस्या की परिभाषा (Investigating the situation and defining the problem): निर्णयन प्रक्रिया तभी आरम्भ होती जब कोई प्रशासक किसी समस्या को हल करने या किसी अवसर का लाभ उठाने की आवश्यकता अनुभव करता है। इसमें निम्न चार पहलुओं पर विचार किया जाता है –

- **समस्या का अभिज्ञान (Problem awareness):** समस्या की जानकारी होने पर ही प्रशासक उसके समाधान के लिये प्रयास करता है।
- **समस्या निदान (Problem Diagnosis):** प्रत्येक प्रशासक को समस्या के लक्षणों एवं मूल कारणों को जानने का प्रयास करना चाहिये।
- **वातावरणीय विश्लेषण (Environmental analysis):** वातावरण के विभिन्न घटकों जैसे राष्ट्रीय नीतियाँ एवं निर्णय, प्रतिस्पर्धा, टेक्नोलॉजी आदि का विश्लेषण करने से समस्या निदान के लिये पर्याप्त सूचनार्यें प्राप्त हो जाती हैं।
- **समस्या को परिभाषित करना (Defining the problem):** इस चरण में किसी समस्या को प्रशासक सही-सही समझ कर उसे परिभाषित करता है।

II) समस्या का विश्लेषण करना (Analyzing the problem): समस्या के विश्लेषण में निम्न जानकारियों को एकत्रित किया जाता है –

- निर्णय किसे लेना है ?
- निर्णय किस तरह से लेना है ?
- निर्णय लेने हेतु कौन कौन सी सूचनार्यें एकत्रित करनी है ?
- निर्णय से प्रभावित होने वाले क्षेत्र एवं कार्य कौन-कौन से हैं ?

III) वैकल्पिक समाधानों का विकास करना (Developing alternatives): विभिन्न समाधान विकल्पों का विकास किये बिना कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता है। विकल्पों के अभाव में निर्णय नहीं वरन विवशता होती है। विकल्पों के विकास के लिये निर्णयकर्ता को अपनी सृजनात्मकता, कल्पना एवं दूरदृष्टि का प्रयोग करना चाहिये।

IV) विकल्पों का मूल्यांकन करना (Evaluating alternatives): विकल्पों के मूल्यांकन का उद्देश्य ऐसे विकल्प को निर्धारित करना है जो उद्देश्य के अनुकूल परिणाम उत्पन्न करता हो। विकल्पों के मूल्यांकन के प्रमुख मापदंड निम्न होते हैं –

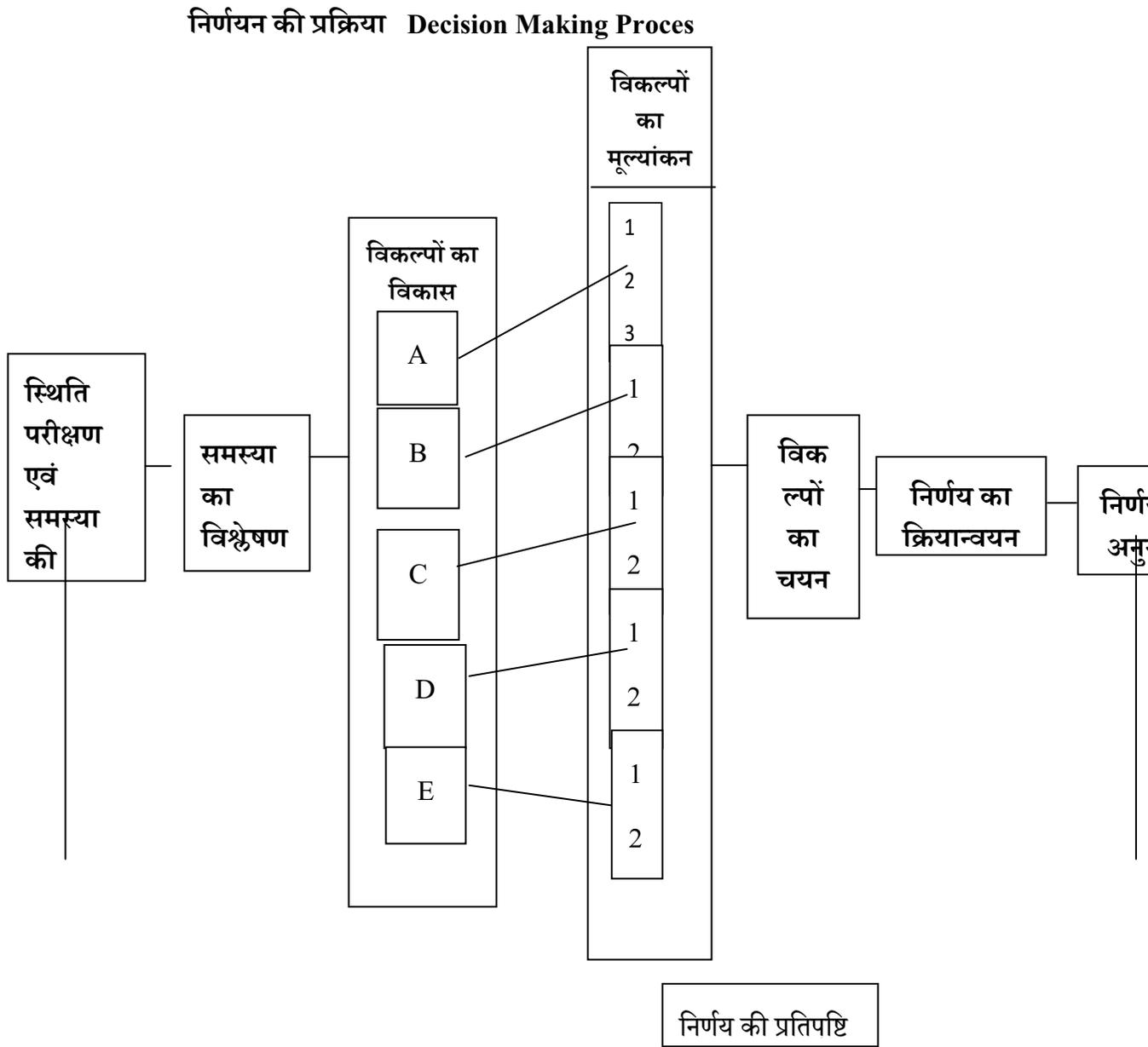
- **उपयुक्तता (Suitability):** क्या विकल्प समस्या को हल कर सकेगा ?
- **व्यवहार्यता (Practicability):** क्या विकल्प लागत, क्षमता और व्यय की दृष्टि से व्यवहारिक है ?
- **स्वीकार्यता (Acceptability):** क्या विकल्प प्रभावित लोगों को स्वीकार्य होगा ?
- **क्रियाशीलता (Functionality):** क्या विकल्प को व्यवहार में क्रियान्वित कर पाना सरल होगा ?

V) सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन (Selecting the best alternative): वैकल्पिक समाधानों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन करने के लिये अनेक प्रमाणों का प्रयोग किया जाता है जो निम्नवत है

- **जोखिम (Risk):** सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करते समय निर्णयकर्ता को प्रत्याशित लाभों की तुलना में उसके जोखिमों का मूल्यांकन करना चाहिये।
- **प्रयास की मितव्ययिता (Economy of Effort):** सामान्यतः ऐसे समाधान का चयन करना चाहिये जिसमें न्यूनतम प्रयासों से अधिकतम परिणाम प्राप्त हो सके।
- **समयानुकूल (Timing):** सर्वश्रेष्ठ विकल्प समय की आवश्यकताओं तथा आकस्मिकता को पूरा करने वाला तथा स्थिति की मांग के अनुसार भी होना चाहिये।
- **संसाधनों की सीमा (Limitation of Resources):** सर्वश्रेष्ठ विकल्प संसाधनों की सीमा के भीतर होना चाहिये।

VI) निर्णय का क्रियान्वयन (Implementing Decisions): इस चरण में निर्णयन को कार्यवाही में बदला जाता है। यदि किसी निर्णयन को क्रियान्वित नहीं किया जाता है तो वह मात्र एक कोरी कल्पना होती है और कुछ नहीं।

VII) निर्णयन का अनुगमन तथा प्रतिपुष्टि (Following up decisions and feeding up the results): इसके अंतर्गत निर्णयन के प्रभावों की जानकारी लेना तथा निर्णय की सफलता और असफलता का मूल्यांकन किया जाता है।



स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- 1) प्रणाली उपागम में किसी संगठन को के रूप में देखा जाता है।
- 2) प्रणाली उपागम के अंतर्गत उद्देश्यों की पूर्ति पर ध्यान दिया जाता है।
- 3) निर्णयन एक प्रक्रिया है।
- 4) निर्णयन में श्रेष्ठ का चयन किया जाता है।
- 5) प्रणाली उपागम में विभिन्न उपप्रणालियों के माध्यम से से प्राप्त निवेशों का रूपांतरण किया जाता है।
- 6) निर्णयन का प्रथम चरण..... होती है।

4.5 संगठनात्मक विकास (Organizational Development):

हमारा वातावरण, जीवन परिवेश, संगठनात्मक व्यवहार, हमारी संस्कृति आदि निरंतर प्रवाहशील हैं। व्यवस्थित, एकीकृत एवं नियोजित परिवर्तन के द्वारा किसी संगठन को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। संगठनात्मक विकास व्यक्तियों को परिवर्तन के लिये तैयार करने तथा परिवर्तन का प्रबंध करने की प्रक्रिया है। यह व्यक्तियों की अभिवृत्तियों, मूल्यों, व्यवहार एवं संगठन की संरचना तथा नीति में समग्र परिवर्तन लाने की क्रिया है। संगठनात्मक विकास शब्दावली का प्रवर्तन करने का श्रेय रोबर्ट ब्लेक, हेर्बर्ट शेफर्ड और जेनी माउटन को जाता है।

4.5.1 संगठनात्मक विकास की परिभाषायें (Definitions of Organizational Development):

गोर्डन लिपिट: संगठन विकास संगठन में उन मानवीय प्रक्रियाओं को सुदृढ़ करता है जो संगठित प्रणाली की कार्य शीलता में वृद्धि करती है ताकि इसके लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके।

वारेन जी बैनिस: संगठन विकास परिवर्तन का प्रत्युत्तर है, एक जटिल शैक्षिक रण नीति है जिसका उद्देश्य संगठन के विश्वासों, अभिवृत्तियों, मूल्यों एवं संरचना में परिवर्तन करना है ताकि वे नयी प्रौद्योगिकी, चुनौतियों तथा स्वयं परिवर्तन की तीव्र गति के साथ अपने को ढाल सकें।

रिचर्ड बेकहार्ड: संगठन विकास वह प्रयास है जो नियोजित, संगठन विस्तृत तथा उच्च स्तर से प्रतिबंधित है तथा जो व्यवहारवादी विज्ञान के ज्ञान का उपयोग करते हुये संगठन की प्रक्रियाओं में नियोजित हस्तक्षेप के जरिये संगठन की प्रभावशीलता और स्वास्थ्य में वृद्धि करता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है संगठन विकास नियोजित परिवर्तन एवं व्यवहारवादी शिक्षण की एक दीर्घकालीन एवं संगठन व्यापी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत संगठन की तकनीकी व मानवीय प्रक्रियाओं,

मूल्यों, संस्कृति एवं संरचनाओं में परिवर्तन लाकर संगठन क्षमता प्रभावशीलता, गत्यात्मकता और परिपक्वता में वृद्धि की जाती है।

4.5.2 संगठनात्मक विकास के उद्देश्य (Objectives of Organizational Development):

संगठनात्मक विकास के निम्नांकित उद्देश्य होते हैं :

- संगठनात्मक सदस्यों के बीच व्यक्तिगत उत्साह, संतुष्टि तथा समर्थन को बढ़ाना।
- सभी दिशाओं में खुले संचार को बढ़ाना।
- अधिक प्रभावी कार्य समूहों का विकास करना।
- सुव्यवस्थित ढंग से समस्या समाधान एवं संघर्षों के समाधान हेतु अंतर्व्यक्तिक सक्षमता में सुधार लाना।
- समग्र संगठनात्मक वातावरण में सुधार लाना।

4.5.3 संगठनात्मक विकास की प्रक्रिया (Process of Organizational Development):

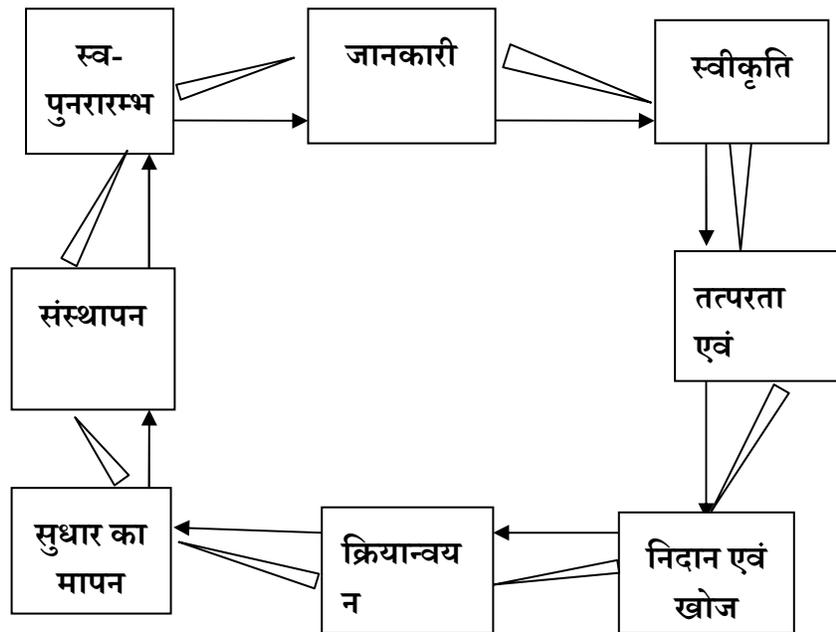
संगठनात्मक विकास एक जटिल प्रक्रिया है जो कई वर्षों तक चलती है। अमेरिका के वृहद् उपक्रम जेनेरल मोटर्स द्वारा अपनाई गयी प्रक्रिया का वर्णन इस प्रकार है –

- **जानकारी (Awareness):** संगठन के विकास के प्रथम चरण में कई बातों की जानकारी की जाती है – जैसे – संगठनात्मक समस्याएं, संगठन के विकास का स्तर, मानवीय सन्तुष्टि, मानवीय संसाधनों का उपयोग आदि।
- **स्वीकृति(Acceptance):** इस चरण में संगठन की प्रकृति, संगठनात्मक प्रबंध के वैकल्पिक तरीकों तथा मानवीय एवं संगठनात्मक सम्भावनाओं की गहराई एवं विस्तार को स्वीकार किया जाता है।
- **कार्य के लिये तत्परता एवं वचनबद्धता (Readiness and Commitment):** परिवर्तन प्रक्रिया के लिये संगठन के सदस्यों में तत्परता एवं वचनबद्धता उत्पन्न की जाती है।
- **निदान एवं खोज (Diagnosis and Search):** इस चरण में यह जाना जाता है की समस्या के वास्तविक कारण क्या हैं, संगठन का निष्पादन कैसा होना चाहिए, संगठन के लक्ष्यों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप सुधार की व्यूह रचना क्या होनी चाहिये।
- **नये व्यवहार की क्रियान्वति (Application of New Behaviour) :** इस चरण में कार्य करने के नये तरीकों का प्रयोग करने, संगठनात्मक प्रक्रियाओं में सुधार करने तथा लक्ष्यों व वैयक्तिक आवश्यकताओं में एक सुसंगति खोजने की दृष्टि से नये व्यवहार की क्रियान्वति की जाती है।
- **सुधार का मापन (Measurement of Improvement):** इस चरण में नये व्यवहार के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों का मापन किया जाता है।
- **संस्थापन (Institutionalization):** इस चरण में संगठन में मानव संसाधन, प्रबंध के सिद्धान्तों तथा संगठन विकास की व्यूह रचनाओं एवं तकनीकों को संस्थापित एवं समाविष्ट किया जाता है।

- **स्व-पुनरारम्भ (Self Renewal):** यह वह प्रणाली है जिसके द्वारा संगठन की समस्याओं की निरंतर जानकारी बनी रहती है ताकि समाधान के लिये संगठन विकास की प्रक्रिया पुनः आरंभ की जा सके। यह स्व नवीनीकरण की प्रक्रिया है जिसके द्वारा संगठन की निरंतरता को बनाये रखा जा सकता है।

उपर्युक्त विवरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संगठनात्मक विकास किसी संगठन को एक प्रणाली, व्यवहार्य तथा वातावरण के साथ समायोज्य बनाने का प्रयास है।

संगठन विकास की प्रक्रिया का रेखाचित्र



4.6 कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षण तकनीक या पर्ट (Programme Evaluation And Review Technique):

इसका विकास 1958 में पोलेरिस परियोजना के लिये अमेरिकन जल सेना के विशेष परियोजना अधिकारी एवं लॉकहीड एयरक्राफ्ट निगम द्वारा संयुक्त रूप से किया गया था। पर्ट परियोजना प्रबंध की महत्वपूर्ण तकनीक है। यह परियोजना के अनुगमन (Sequencing), सारणीयन Scheduling) तथा समन्वय से

संबंधित समस्याओं को हल करने की एक अत्यंत प्रभावी तकनीक है। जब परियोजनाओं को अनेक चरणों या उपकार्यों में पूरा किया जाता है तो ऐसी दशा में उनके उपकार्यों का विशिष्ट अनुक्रम तैयार करना, प्रत्येक उपकार्य में लगने वाले समय का निर्धारण करना तथा समस्त कार्यों को मूल परियोजना के साथ जोड़ना, अंतर्संबंधित करना एवं समन्वित करना आवश्यक हो जाता है। जब किसी परियोजना की समस्त क्रियाएँ एवं घटनाएँ तार्किक एवं अनुक्रमिक रूप से परस्पर सम्बन्ध कर दी जाती हैं तो वे तंत्र को जन्म देती हैं।

इस प्रकार पर्ट नियोजन एवं नियंत्रण की एक ऐसी तकनीक है जो किसी पूर्व निर्धारित परियोजना या अनुसूची को पूरा करने में तन्त्र विश्लेषण(Network analysis) का प्रयोग करती है। यह तकनीक किसी परियोजना के क्रियान्वयन में आने वाली रुकावटों को दूर करने तथा परियोजना को समय पर पूरा करने में सहायक होती है।

4.6.1 पर्ट के चरण(Steps of PERT):

पर्ट की तकनीकों के प्रयोग हेतु निम्न तकनीकों को अपनाया पड़ता है -

I) क्रियाओं एवं घटनाओं की पहचान (Identification of activities and events): क्रिया एक ऐसी परिचालन है जिसमें समय एवं संसाधनों का उपयोग किया जाता है। इसमें समयबद्धता का तत्व होता है। घटना उस समय बिन्दू को कहते हैं जब कोई क्रिया प्रारंभ होती है या समाप्त होती है। नीचे दिये गये चित्र में पर्ट की प्रक्रिया को दर्शाया गया है। इसमें क्रिया को तीर के निशान से और घटना को गोले द्वारा दिखाया गया है।

II) क्रियाओं का अनुक्रम तय करना (Determining the sequence of activities): क्रिया की पहचान होने के बाद तर्कयुक्त ढंग से क्रियाओं का अनुक्रम निर्धारित किया जाता है। अनुक्रम तय होने के फलस्वरूप क्रियाओं के अंतर्संबंध स्पष्ट हो जाते हैं। इससे ज्ञात हो जाता है कि कौन कौन से कार्य एक साथ किये जाने हैं तथा कौन कौन से कार्य पूर्ववर्ती तथा कौन कौन से कार्य पश्चवर्ती हैं।

III) समयानुमानों का पता लगाना (Finding time estimates): इस चरण में विभिन्न समयानुमानों पर विचार करके अपेक्षित समय का निर्धारण किया जाता है। सामान्यता तीन प्रकार के अनुमान लगाये जाते हैं:

- **आशावादी समयानुमान a (Optimistic time estimates):** यह अनुमान न्यूनतम अनुमानित समय है जो किसी क्रिया को पूरा करने में अवश्य लग जाता है चाहे परिस्थितियाँ कितनी भी अनुकूल क्यों न हो।
- **निराशावादी समयानुमान b (Pessimistic time estimates):** यह वह अधिकतम अनुमानित समय है जिसमें समस्त परिस्थितियों के प्रतिकूल होने के बाद भी क्रिया पूरी कर ली जायेगी।
- **अधिकतम प्रायिक समयानुमान m (Most likely time estimate):** यह वह अनुमानित समय है जो सामान्य अवस्था में किसी क्रिया के पूरा होने में लगेगा।

- इन समयानुमानों से बिटा प्रायिकता के आधार पर प्रत्येक क्रिया के किये प्रत्याशित समय निकला जाता है जिसे प्रत्याशित क्रिया समय (Expected Activity Time-te) निकला जाता है । प्रत्याशित क्रिया समय को द्वारा प्रदर्शित किया जाता है । इसे ज्ञात करने हेतु निम्नांकित सूत्र है –

$$te = (a + 4m+b)/6$$

IV) परियोजना अनुसूचियन (Project Scheduling): इस चरण में जिन बातों का निर्धारण किया जाता है, वे निम्न प्रकार हैं:

- परियोजना के पूर्ण होने का समय
- क्रांतिक क्रियाएँ जो निश्चित समय पर पूर्ण की जानी हैं ।
- अक्रान्तिक क्रियाओं का अनुमति योग्य विलंब जिसके कारण सम्पूर्ण परियोजना के पूर्ण होने पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा । दूसरे शब्दों में, सभी घटनाओं एवं क्रियाओं में शैथिल्य समय की गणना करना ।

IV) तंत्र का निर्माण करना (Formulating the network): तंत्र के निर्माण के लिये परियोजना की सभी क्रियाओं में अंतर्संबंध स्थापित किया जाता है । इसके पश्चात् सभी क्रियाओं को एक चार्ट में प्रदर्शित करते हुये तंत्र तैयार किया जाता जाता है ।

VI) चरम पथ का निर्धारण (Determination of critical path): यह चरम पक्ष या क्रांतिक मार्ग सबसे लम्बा मार्ग होता है । यह क्रांतिक घटनाएँ या क्रियाएँ वे होती हैं जिनमें शीघ्र घटित होने वाला समय तथा विलंबित घटना समय समान होता है । शीघ्र घटित होने वाला समय वह होता है जब घटना अस्तित्व में आती है तथा विलंबित घटित समय वह है जबकि कार्य समपन्न हो जाता है ।

VII) समीक्षा एवं नियंत्रण (Monitoring and Control): परियोजना प्रारंभ कर दी जाने के पश्चात् समय समय पर उसकी समीक्षा की जाती है । इस चरण में निम्न कार्य किये जाते हैं –

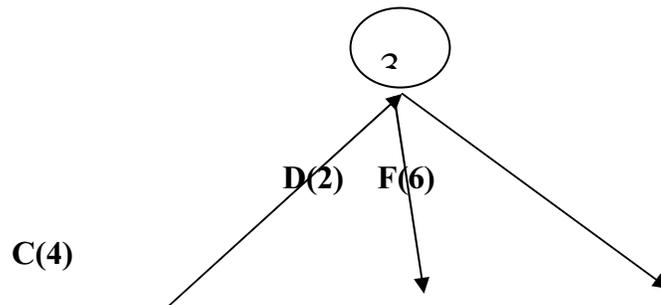
- सभी क्रियाओं तथा उसके निष्पादन समयों की समीक्षा करना तथा पूर्व निर्धारित योजना के साथ उसकी तुलना करना ।
- मूल योजना से होने वाले सभी विचलनों की पहचान करना ।
- क्रांतिक क्रियाओं में विलंब की पहचान करके पुनः योजना बनाना तथा सम्पूर्ण तंत्र का पुनः निर्माण करना ।
- संसाधनों को क्रांतिक क्रियाओं की ओर हस्तांतरित करना जिससे परियोजना के निर्माण कार्य के संभावित विलंब को दूर किया जा सके ।

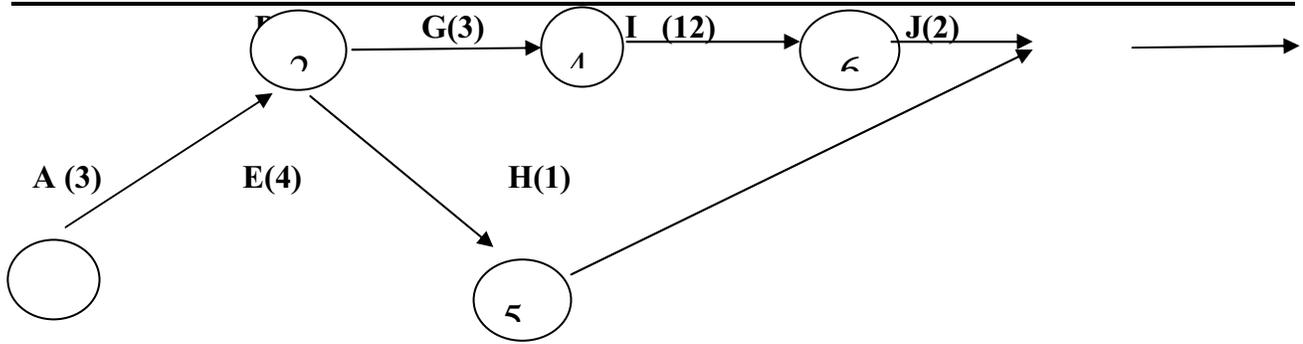
4.6.2 पर्ट तंत्र का निर्माण (Formulation of PERT Network):

नीचे दिये गये तालिका में किसी परियोजना की क्रियाओं और अप्रत्याशित क्रिया समय को दिया गया है।

Activity	Expected Activity Time
A	3
B	4
C	4
D	2
E	4
F	6
G	3
H	1
I	12
J	2

उपर्युक्त तालिका में निर्धारित क्रियाओं के आधार पर एक तंत्र तैयार किया जाता है ताकि परियोजना को पूर्ण करने में विभिन्न मार्गों उनमें लगने वाले अनुमानित समय का ज्ञान हो सके। नीचे दिये गये रेखा चित्र में पर्ट नेटवर्क को दिखाया गया है। इसमें घटनाओं को गोले से और क्रियाओं को दो गोलों के बीच तीर से दिखाया गया है। क्रियाओं की अनुमानित समयावधि सप्ताहों में अंकित किये गये हैं। घटनाओं को संख्याओं द्वारा दर्शाया गया है। इस तंत्र का प्रारंभिक बिन्दू घटना संख्या 1 है और अंतिम बिन्दू घटना संख्या 8 है।

पर्ट तंत्र (PERT Network)



उपर्युक्त नेटवर्क में प्रथम घटना से अंतिम घटना तक पहुँचने के निम्न चार मार्ग हैं:

मार्ग 1	1-2-3-4-6-7-8	26
मार्ग 2	1-2-3-6-7-8	27
मार्ग 3	1-2-4-6-7-8	24
मार्ग 4	1-2-5-7-8	10

उपर्युक्त चार मार्गों में से सबसे लम्बी अवधि वाला मार्ग 2 क्रांतिक मार्ग है। यह संकट और नाजुक मार्ग है इस पर अधिक समय एवं संसाधनों का विनियोजन करना पड़ता है।

4.6.3 पर्ट के लाभ एवं सीमायें(Advantages and Limitations of PERT):

इस तकनीक के निम्नांकित लाभ हैं:

- I) **अग्रिम क्रिया योजना:** इस तकनीक को अपनाने के किये एक अग्रिम योजना तैयार करनी पड़ती है। इससे योजना के विभिन्न पहलूओं पर विचार करना संभव हो जाता है।
- II) **समय एवं लागत की निश्चितता:** पर्ट के प्रयोग द्वारा परियोजना के पूर्ण होने में लगने वाला संभावित समय और लागत को सुनिश्चित किया जाता है। इससे अनिश्चितताओं पर नियंत्रण रखा जा सकता है।
- III) **प्रमाप निर्धारण:** पर्ट के द्वारा परियोजना के प्रत्येक मेल बिन्दू को पूरा करने में लगने वाले समय तथा आर्थिक व्यय के रूप में प्रमाप निश्चित किये जाते हैं।
- IV) **श्रेष्ठ निर्णय:** इस तकनीक के अंतर्गत आशावादी, निराशावादी तथा अधिकतम संभावित समय के अनुमानों के आधार पर श्रेष्ठतर निर्णय लिये जा सकते हैं।

V) योजना का मूल्यांकन एवं संशोधन: पर्ट के द्वारा समय एवं लागत के सन्दर्भ में मूल्यांकन करना सरल हो जाता है। मूल्यांकन के आधार ओर परियोजना में निश्चित सुधार किया जा सकता है।

VI) विलंबों एवं शैथिल्य पर नियंत्रण: इस तकनीक के द्वारा प्रबंधक यह जान सकते हैं कि कार्यों में विलंब का वास्तविक कारण क्या है? वे कार्य में शिथिलता और विलंब को दूर करने के लिये आवश्यक कदम भी उठा सकते हैं।

उपर्युक्त लाभों के अतिरिक्त की सीमाएं भी हैं जिनका उल्लेख निम्नांकित हैं:

I) लागत समस्यायें: पर्ट के उपयोग में लागत सम्बन्धी कई समस्यायें जैसे- लागतों की अनिश्चितता, लागत परिवर्तन, लागत बंटन आदि का सामना करना पड़ता है।

II) समयानुमानों पर निर्भरता: पर्ट की सफलता बहुत कुछ सीमा तक समयानुमानों की शुद्धता एवं विश्वसनीयता पर निर्भर करती है।

III) आर्थिक भार: पर्ट तकनीक का प्रयोग करना खर्चीला होता है क्योंकि तंत्र निर्माण तथा अन्य क्रियाओं पर नियंत्रण रखने के लिये विशेषज्ञों की नियुक्ति आवश्यक हो जाती है।

IV) प्रशासनिक सत्ता में कमी: इस तकनीक के प्रयोग में विशेषज्ञों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। अतः प्रशासकों की सत्ता में कमी हो जाती है।

V) जटिलता: क्रियाओं तथा घटनाओं का तंत्र तैयार करना एक जटिल कार्य है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. संगठनात्मक विकास व्यक्तियों को परिवर्तन के लिये तैयार करने तथा करने की प्रक्रिया है।
2. संगठनात्मक विकास शब्दावली के प्रवर्तक..... हैं।
3. पर्ट तकनीक का निर्माण के लिये में किया गया था।
4. यह परियोजना के अनुगमन, तथा समन्वय से संबंधित है।
5. पर्ट तकनीक में क्रिया एक ऐसा परिचालन है जिसमें और का उपयोग किया जाता है।
- 6 पर्ट तकनीक में प्रत्याशित क्रिया समय ज्ञात करने का सूत्र..... होता है।

4.7 सारांश (Summary)

इस इकाई के अंतर्गत हमने यह जाना कि प्रशासन का समग्र स्वरूप रूपांतरित हो रहा है। नवीन प्रवृत्तियाँ इसे एक नई दिशा और आधार भूमि प्रदान कर रही हैं। प्रणाली उपागम, निर्णयन, संगठनात्मक विकास एवं पर्ट – इन सभी ने प्रशासन को गत्यात्मकता प्रदान की हैं। प्रणाली उपागम ने प्रशासन को एक व्यवस्था का रूप दिया है। प्रणाली के मुख्य घटक निर्णयन करना ही प्रशासकों की सार्वजनिक पहचान है। यह उपलब्ध विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव से संबंधित है। संगठनात्मक विकास की अवधारणा शीर्ष प्रबंध के द्वारा समूचे संगठन में नियोजित परिवर्तन लेने की प्रक्रिया है ताकि संगठनात्मक प्रभावशीलता को सुधार जा सके। पर्ट तकनीक में क्रियाओं और संबंधित प्रमुख चरणों या घटनाओं के सम्पूर्ण तंत्र का एकरूपन निहित है जो उद्देश्यों की प्राप्ति को अधिकाधिक संभव बनाता है।

4.8 शब्दावली

प्रणाली: अन्तः क्रियाशील तंत्रों का संकलन

निर्णयन: प्रक्रिया जिसके द्वारा सर्वोत्तम विकल्प का चयन किया जाता है।

संगठनात्मक विकास: एक दीर्घकालीन एवं संगठन व्यापी प्रक्रिया जिसका उद्देश्य संगठन के प्रभावशीलता, गत्यात्मकता और परिपक्वता में वृद्धि करना है।

पर्ट: नियोजन एवं नियंत्रण की एक ऐसी तकनीक है जो किसी पूर्व निर्धारित परियोजना या अनुसूची को पूरा करने में तन्त्र विश्लेषण(Network analysis) का प्रयोग करती है।

क्रांतिक मार्ग: सर्वाधिक लम्बे समय वाला मार्ग।

4.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न. 1

1. सम्पूर्ण 2. सामान्य 3. बहुचरणीय 4. विकल्प 5. वातावरण 6. स्थिति परीक्षण एवं समस्या की परिभाषा

अभ्यास प्रश्न. 2

1. परिवर्तन का प्रबंध 2. रोबर्ट ब्लेक, हेर्बर्ट शेफर्ड और जेनी माउटन 3. पोलेरिस परियोजना, 1958

4. सारिणीयन 5. समय, संसाधन 6. $(a + 4m + b)/6$

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Beckhard, R. *Organisational Development: Strategies and Models*. Reading, Mass, Addition – Wesley, 1969.

Bennis, W.G. *Organisational Development: Its Nature, Origin and Perspectives*. Reading, Mass, Addition – Wesley, 1969.

Stonner, J and Charles Wankel . *Management*. Prentice Hall of India, New Delhi, 1988.

Joseph L.Massie. *Essentials of Management*. Prentice Hall of India, New Delhi, 1987.

.Koontz and Wehrich. *Management*, McGraw-Hill, NewYork, 1988.

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रणाली से आप क्या समझते हैं? प्रशासन के प्रणाली उपागम की विशेषताओं पर प्रकाश डालें ।
2. प्रणाली की कार्य विधि को स्पष्ट करें ।
3. निर्णयन प्रक्रिया एक बहुचरणीय प्रक्रिया है । कैसे ?
- 4 संगठनात्मक विकास की अवधारणा को अपने शब्दों में लिखें ।
5. पर्ट तकनीक की रेखा चित्र सहित विवेचना कीजिये ।
6. पर्ट तकनीक के लाभ और हानियों पर प्रकाश डालें ।

इकाई 5. नेतृत्व का अर्थ एवं प्रकृति और नेतृत्व के सिद्धान्त

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 नेतृत्व: अर्थ एवं प्रकृति

5.4 नेतृत्व के सिद्धान्त

5.5 निबंधात्मक प्रश्न

5.6 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

कोठारी कमीशन (1964-66) के अनुसार भारत के भविष्य का निर्माण इसकी कक्षाओं में हो रहा है। यह कथन पूर्णरूपेण सत्य है, वास्तव में किसी भी राष्ट्र के विकास में शिक्षा का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान होता है। राष्ट्रीय एवं सामाजिक विकास हेतु शिक्षा प्रदान करने का कार्य मुख्यतः शैक्षिक संस्थाओं द्वारा किया जाता है एवं शैक्षिक उद्देश्यों की प्रभावी प्राप्ति के लिये उक्त संस्थाओं/संगठनों में कुशल नेतृत्व की आवश्यकता अति महत्वपूर्ण हो जाती है। कुशल नेतृत्व ही शिक्षण संस्थाओं में अधिकाधिक मानव संसाधन विकास करते हुए सीमित व्यय,साधन एवं समय में अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल होता है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- शैक्षिक संस्थाओं में नेतृत्व के महत्व से परिचित हो सकेंगे।
- नेतृत्व के अर्थ एवं प्रकृति से परिचित हो सकेंगे।
- नेतृत्व के विभिन्न सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे।

5.3 नेतृत्व: अर्थ एवं प्रकृति

नेतृत्व एक मूल्य-परक अवधारणा है। परम्परागत अवधारणा के अनुसार नेतृत्व एक व्यक्तिगत योग्यता है। नेता आलौकिक शक्तियों द्वारा बनते थे जिनमें मानव-मस्तिष्क को पढ़ने की योग्यता होती थी। वर्तमान समय में नेतृत्व को एक व्यक्तिगत योग्यता के रूप में देखा जाता है। वर्तमान परिभाषाओं में नेतृत्व को एक समाज-प्रभावित प्रक्रिया माना गया है। नेतृत्व, किसी दी हुई परिस्थिति में निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु समूह-क्रियाओं को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है। यह प्रबंधक की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह अपने सहयोगियों को पूर्ण उत्साह एवं आत्म-विश्वास के साथ कार्य करने को प्रेरित करता है। संक्षेप में, नेतृत्व समूह उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तियों की क्रियाओं को प्रभावित करने वाली क्रिया है। नेतृत्व वह प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत नेता अपने सहयोगियों को एक निश्चित ढंग से कार्य करने का आदेश देता है। समूह के सदस्यों को सहयोगपूर्ण ढंग से कार्य करने हेतु दिशा निर्देश देता है। यह एक अन्तर्व्यक्तिक सम्बन्ध है, जिसमें दूसरे व्यक्ति नेता के आदेशों को मानते हैं क्योंकि वे उन्हें मानना चाहते हैं न कि उनके ऊपर मानने का दबाव डाला जाता है। एक नेता का कार्य ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करना होता है जिसमें समूह प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य कर सके। एक अच्छा नेता वही होता है जो ऐसा समूह तैयार करे जो विभिन्न परिणाम दे सके। नेता का यह गुण सामाजिक समस्या-समाधान का जटिल रूप प्रदर्शित करता है। सामान्यतया नेतृत्व एवं प्रबंधन दोनों को एक-दूसरे से जुड़ा माना जाता है। ये दोनों आपस में जुड़े तो होते हैं, परन्तु प्रबंधन में जहाँ कुशलता, नियोजन, कागजी-कार्य, प्रणाली, नियामक, नियंत्रण एवं संगतता का गुण मौजूद होता है, वहीं नेतृत्व गत्यात्मकता जोखिम लेना, सृजनात्मकता, परिवर्तन, दूरदर्शिता आदि गुणों से जुड़ा रहता है। प्रबंधक जहाँ प्रशासक, नियामक, नियंत्रक, अल्पकालीन विचारों वाला होता है वहीं नेता सृजनात्मक, प्रेरणादायी, नवाचारी एवं दीर्घकालीन विचारों वाला होता है। प्रबंधक एवं नेता दोनों ही आपस में जुड़े रहते हैं परन्तु उनके कार्यों में भिन्नता पायी जाती है।

नेतृत्व: अर्थ, परिभाषाएँ:

नेतृत्व समूह अथवा संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सदस्यों को प्रभावित करने की योग्यता है। नेतृत्व, मुख्य रूप से व्यवहार को प्रभावित करने वाली सतत् प्रक्रिया है। एक नेता समूह में ही साँस लेता है और समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रेरणा प्रदान करता है। यह गुण कुछ करने को दर्शाता है न कि पहले से मौजूद गुण को। नेतृत्व को समझने के लिए निम्नलिखित परिभाषाओं का अध्ययन आवश्यक है -

“नेतृत्व एक ऐसी क्रिया है जो व्यक्तियों को इस प्रकार प्रभावित करे कि वे अपनी इच्छा से सामूहिक उद्देश्यों के लिए प्रयास करें।” (जॉर्ज आर0 टैरी, 1954)

“Leadership is an activity of influencing people to strive willingly for group objectives.” *George R. Terry, 1954*

“नेतृत्व एक परिस्थिति में प्रयुक्त किया गया तथा विशिष्ट लक्ष्य अथवा लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर निर्देशित पारस्परिक प्रभाव है।” (राबर्ट टैननबाम, 1959)

“Leadership is an interpersonal influence exercised in a situation and directed towards the attainment of a specialized goal or goals.” *Robert Tennunbaun, 1959*

समान लक्ष्यों की प्राप्ति में व्यक्तियों को अनुगमन करने के लिए प्रभावित करना नेतृत्व है।” (कून्ट्ज एवं डोनैल, 1959)

“Leadership is influencing people to follow in the achievement of a common goal.” *Koontz and Donnell, 1959*

इस प्रकार परिभाषाओं द्वारा स्पष्ट होता है कि नेतृत्व समूह लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सदस्यों को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है। नेतृत्व का विचार अपने आप में कला और विज्ञान दोनों है। नेतृत्व कला इस रूप में है कि इसमें परिस्थितियों को समझ कर उसके अनुरूप समूह लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सदस्यों के व्यवहारों को प्रभावित करने का कौशल मौजूद होता है एवं विज्ञान इस रूप में है कि ‘क्या करना है’, यह जानने के अतिरिक्त ‘कब’, ‘कहाँ’, ‘कैसे’, करना है इसका ज्ञान भी नेता को होता है। कभी-कभी परिस्थितियों के मापन एवं क्रियाओं की पूर्णता हेतु नेतृत्व नियमबद्ध, स्पष्ट एवं तर्कसंगत हो जाता है और कभी-कभी भावनात्मक रूप भी धारण कर लेता है, क्योंकि मानव प्रकृति भावनाओं से अछूती नहीं रह सकती। अतः नेतृत्व वह सामाजिक अवधारणा है जो अन्तः प्रक्रियात्मक विशेषताओं एवं गुणों पर बल देती है।

शैक्षिक नेतृत्व की प्रकृति

नेतृत्व को समझने के लिए नेतृत्व की प्रकृति भी जाननी आवश्यक है। प्रकृति के आधार पर नेतृत्व विज्ञान भी है, जो यह स्पष्ट करता है कौन सी क्रियाएँ कब, कहाँ, कैसे करनी है तथा उन क्रियाओं के सम्पादन में नियमबद्धता, क्रमबद्धता, तर्क-संगतता, कारण-परिणाम सम्बन्धों में एकरूपता आदि गुणों की उपस्थिति आवश्यक होती है। नेतृत्व कला इस रूप में है कि इसमें परिस्थितियों के अनुरूप सदस्यों के व्यवहारों को प्रभावित करने, उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन लाने एवं सदस्यों को भावनात्मक सहयोग देने का कौशल उपस्थित होता है। नेतृत्व की प्रकृति अधिक स्पष्ट रूप से समझने हेतु निम्नलिखित विशेषताओं का अध्ययन आवश्यक है -

1. समूह-क्रिया विकसित करना (To develop team-work): समूह क्रिया हेतु तीन प्रमुख तत्व हैं- नेता, सहयोगी एवं वातावरण। ये कारक अपने आप में स्वतंत्र रहते हैं। इन्हें समूह-उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आपस में क्रिया योग्य बनाना नेता का उत्तरदायित्व होता है। वह ही कर्मचारियों की योग्यताओं, रुचियों को जानकर उनके अनुरूप उन्हें कार्य प्रदान करता है। कर्मचारियों की जिज्ञासाओं को उत्साहित करके एवं धोखेबाजी एवं कपटी व्यवहारों पर नियंत्रण लगाकर नेता एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण करता है। वह ही कर्मचारियों में समूह भावना को उजागर करके उन्हें एक समूह (group) के रूप में कार्य करने के लिए प्रेरित करता है।

2. कर्मचारियों का प्रतिनिधि (Representative of subordinates): नेतृत्व में अपने अधिनस्थ कर्मचारियों के प्रतिनिधि होने का गुण मौजूद रहता है। रेनिस लिंकर्ट ने नेता को 'संयोजक कड़ी' कहा है। ये सम्पूर्ण संगठन को समन्वित करने का कार्य करता है। एक प्रतिनिधि के रूप में अपने अधिनस्थों की माँगों को उच्च प्रबंधन स्तर तक पहुँचाता है।

3. उपयुक्त परामर्श देना (To provide appropriate counselling): अक्सर पदोन्नति, आय वृद्धि, प्रदर्शन स्तर एवं उपयुक्त स्थान पर स्थानान्तरण आदि बातों को लेकर कर्मचारी दबाव में रहते हैं और कई प्रकार की भावनात्मक समस्याओं से गुजरते हैं। ये बाधाएँ कर्मचारियों को उनके मार्ग से भटका देती हैं। ऐसी परिस्थितियों में नेता उनकी परेशानियों की सुनता है एवं उनके कार्य में आने वाली इन बाधाओं को दूर करने हेतु उन्हें परामर्श देता है और उन्हें मानसिक रूप से स्वस्थ बनाता है।

4. शक्तियों का सही उपयोग करना (To use power properly): नेता से अपेक्षित उद्देश्यों की प्रभावपूर्ण प्राप्ति के लिए नेता के पास ऐसी शक्तियाँ एवं अधिकार होते हैं जिनके माध्यम से वह कर्मचारियों से सकारात्मक परिणाम प्राप्त करने हेतु उनकी क्रियाओं को प्रेरित कर सकता है। यदि अधिनस्थों द्वारा नेता की आज्ञा का पालन न किया जाए तो नेतृत्व प्रभावहीन हो जाता है। इसलिए नेता द्वारा ऐसी शक्तियों का उपयोग किया जाता है जिनके अधीन अधिनस्थों द्वारा नेता की आज्ञा और आदेशों का इच्छा से पालन किया जाता है।

5. समय का सदुपयोग करना (To use time well): समय मूल्यवान है लेकिन प्रबंधन में अक्सर उनका सही उपयोग नहीं हो पाता है। एक नेता समय-प्रबंधन चार्ट, तकनीक सूची आदि के प्रयोग द्वारा अपने समय का उत्पादकतापूर्ण प्रयोग करता है। सूचना, सत्य एवं सांख्यिकी आगतों के प्रभावपूर्ण संयोजन द्वारा समय का निर्णय ले पाता है।

6. प्रभावपूर्णता लाने का प्रयत्न करना (To strive for effectiveness): प्रभावपूर्ण ढंग से लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु नेता कई प्रकार के निर्णय लेता है। इस सन्दर्भ में लक्ष्य तक समय से पहुँचने के लिए अनेक सहायक क्रियाओं को अपनाता है। नेतृत्व के अन्तर्गत अधिनस्थों द्वारा पहल करने को प्रोत्साहन देना, अच्छे प्रदर्शन के लिए पुरस्कार की व्यवस्था, अधिनस्थों से घुलना-मिलना और आवश्यकतानुसार अनुशासन एवं नियंत्रण लगाना आदि क्रियाओं को अपनाया जाता है।

7. कर्मचारियों को प्रेरित करना (To inspire employees): एक नेता अपने कर्मचारियों में उच्च स्तर के प्रदर्शन की प्रवृत्ति विकसित कर सकता है। वह उनके दृष्टिकोणों को उच्चता प्रदान करता है। कार्य करने के सही तरीके की पहचान कराकर नेता, कर्मचारियों को संगठन के लिए अपना श्रेष्ठ देने में मदद करता है।

8. सहयोग विकसित करना (To develop cooperation): एक गतिशील नेता समूह में साँस लेता है। वह सदस्यों के व्यवहारों को इस प्रकार प्रभावित करता है कि वे संगठन के उद्देश्यों को पूर्ण करने हेतु तत्पर हो जाते हैं। वह उन्हें एहसास दिलाता है कि योजनाओं को कार्य रूप में परिणित करने पर वे पुरस्कार प्राप्त कर

सकते हैं। इस तरह वह कर्मचारियों में समूह-भावना का विकास करता है, ताकि वे एक समूह के रूप कार्य कर सकें। समूह-क्रियाओं हेतु नेतृत्व आवश्यक अवधारणा है। एक सुदृढ़ नेतृत्व के बिना सहयोगपूर्ण क्रियाएँ असम्भव हैं। नेतृत्व ही समूह को एक चरित्र प्रदान करता है और विभिन्न स्तरों पर समन्वित प्रयासों का मार्ग दर्शाता है।

9. विश्वास जगाना (To Create confidence): संगठन में कर्मचारी अक्सर भावनात्मक समस्याएँ झेलते हैं। कुछ कार्य को करने की अयोग्यता, पदोन्नति की चिन्ता, अपनी कुशलताओं का और विकास करना एवं साथियों से घुलना-मिलना आदि कारणों की वजह से वे कुण्ठित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में नेता ही उनको परामर्श देता है, उनके मार्ग की बाधाओं को दूर करने में सहयोग करता है एवं कर्मचारियों में विश्वास जगाता है। वह क्षमताओं को वास्तविकताओं में रूपान्तरित करता है।

10. कार्य हेतु उपयुक्त वातावरण प्रदान करना (To provide good working climate): नेतृत्व द्वारा ही कार्य हेतु एक स्वस्थ वातावरण प्रदान किया जाता है, जहाँ व्यक्ति उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु खुशाी से कार्य करते हैं। नेता ही आवश्यक परिवर्तन लाने की पहल करता है और कर्मचारियों के व्यवहारों में एकरूपता लाता है। समय एवं धन के न्यायपूर्ण प्रयोग द्वारा वह कार्यों की प्राथमिकता तय करता है। एक नेता ही कर्मचारियों में कल्पना, दूरदर्शिता, उत्साह एवं पहल करने की योग्यता विकसित करता है।

5.4 नेतृत्व के सिद्धान्त (Theories of Leadership)

विस्तृत रूप से नेतृत्व के सिद्धान्त तीन रूपों में वर्गीकृत किए जाते हैं- गुण सिद्धान्त (Trait Theory), व्यावहारात्मक सिद्धान्त (Behavioural Theory) एवं परिस्थितियात्मक सिद्धान्त (Situational Theory)। गुण सिद्धान्त के अनुसार नेतृत्व व्यक्तित्व गुणों का संयोजन है। व्यावहारात्मक सिद्धान्त के अनुसार नेता के व्यक्तिगत व्यवहार प्रभावी नेतृत्व से सम्बन्धित होते हैं। परिस्थितियात्मक सिद्धान्त के अनुसार कुछ निश्चित परिस्थितियात्मक कारक प्रभावी नेतृत्व शैली निर्मित करते हैं। इन सिद्धान्तों को अधिक स्पष्ट ढंग से समझने के लिए इनका विस्तृत विवरण निम्नलिखित है-

1. गुण सिद्धान्त (Trait Theory): यह नेतृत्व का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित विश्लेषण करने वाला सिद्धान्त है। जो कि 1960 तक ही मान्य रहा इस सिद्धान्त की मुख्य अवधारणा यह थी कि प्रत्येक व्यक्ति में नेतृत्व के गुण उपस्थित नहीं होते हैं। वे व्यक्ति जिनमें नेतृत्व के निश्चित गुण/विशेषताएं होती हैं वे ही नेतृत्व के क्षेत्र में सफल हो सकते हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार नेता के व्यक्तिगत गुण ही सफल नेतृत्व की चाभी हैं। यह सिद्धान्त नेता के जन्मजात होने की मान्यता को नकारता है। गुण सिद्धान्त के अनुसार, नेताओं में कुछ संख्या में गुणों के आधार पर उनके अनुयायियों द्वारा भिन्नता की जाती है और ये गुण समय के साथ अपरिवर्तित रहते हैं। गिसेली ने सामान्य रूप से स्वीकृत गुणों की एक सूची निर्मित की है जो नेतृत्व को प्रभावशाली बनाते हैं। ये सूची निम्नलिखित है-

व्यक्तित्वगुण (Personality Traits)

योग्यताएँ (Abilities)	व्यक्तित्वगुण (Personality Traits)	प्रेरक (Motivators)
पर्यवेक्षण योग्यता	स्व-आश्वासन	व्यावसायिक उपलब्धि की आवश्यकता
बुद्धिमत्ता	निर्णायक	आत्म प्रकाशन
पहल करना	परिपक्वता	उच्च वित्तीय पुरस्कार
	कार्य-वर्ग सजातीयता	कार्य सुरक्षा

कीथ डेविस ने महान सफल नेताओं के निम्नलिखित चार गुण बताए हैं:

बुद्धिमत्ता (Intelligence): नेता में अपने अनुयायियों से अधिक बुद्धिमत्ता होती है।

सामाजिक परिपक्वता (Social maturity): नेता भावनात्मक रूप से परिपक्व होते हैं और एक उच्च कार्य स्तर रखते हैं। वे जीत से न बहुत खुश होते हैं और हानि से बहुत दुःखी। उनमें कुण्ठा सहन करने की उच्च शक्ति होती है।

अन्तःप्रेरणा एवं उपलब्धि चालक (Inner motivation and achievement drive): नेता में उपलब्धियों को प्राप्त करने की चाहत होती है। एक उपलब्धि प्राप्त करने के बाद दूसरी को प्राप्त करने के लिए तत्पर रहते हैं।

मानवीय सम्बन्ध अभिवृत्ति (Human relations attitude): नेता लोगों के प्रति आदर भाव रखते हैं और जानते हैं कि कौन से कार्य उन्हें किस प्रकार करने हैं ताकि सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न न हो।

आलोचना: गुण सिद्धान्त की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है-

(क) व्यक्तित्व गुणों की सूची बहुत लम्बी है। यद्यपि नेतृत्व हेतु व्यक्तित्व के सौ से अधिक गुणों की पहचान की गई है, परन्तु इनमें संगतता का अभाव है।

(ख) प्रभावी नेतृत्व हेतु महत्वपूर्ण गुणों के सम्बन्ध में शोधकर्ताओं में मतभेद पाया जाता है। एक सफल नेता हेतु आवश्यक गुणों की कोई सार्वभौमिक सूची नहीं है।

(ग) सफल नेतृत्व हेतु गुणों की पहचान एवं मापन में बहुत कठिनाई आती है। इनकी पहचान एवं मापन हेतु उपलब्ध उपकरणों को भी सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है। उदाहरणतः कुछ मनोवैज्ञानिक गुणों जैसे बृद्धिमत्ता या पहल करने की शक्ति आदि केवल व्यवहारों में परिलक्षित होते हैं।

(घ) प्रभावी नेतृत्व केवल गुणों द्वारा संभव नहीं है। इसमें नेता के व्यवहारों एवं परिस्थितियों का भी बहुत बड़ा हाथ होता है।

(ङ) नेतृत्व कौशल में संगठन में किए जाने वाले कार्यों की भिन्नता के अनुरूप विभिन्नता पायी जाती है। एक नेता संगठन में तीन भिन्न प्रकार के कौशलों- तकनीकी, मानवीय एवं प्रशासकीय का प्रदर्शन करता है और ये गुण सभी प्रबन्धकीय स्तर पर समान रूप से वितरित हो अथवा पाए जाएं, यह मानना हास्यास्पद है। व्यक्तित्व के गुणों एवं प्रभावशाली नेतृत्व में सहसम्बन्ध विषयक शोधकार्य में इनके मध्य कोई संबंध नहीं पाया गया। (स्टोगडिल, 1948, मान, 1959, बास, 1960) अतः यह विचार किया जाने लगा कि संभवतः गुण नहीं बल्कि व्यवहार नेतृत्व को अधिक प्रभावित करता है।

2. व्यावहारात्मक सिद्धान्त (Behavioural Theory): गुण सिद्धान्त के विपरीत, व्यावहारात्मक सिद्धान्त, नेता क्या करता है, इस आधार पर नेतृत्व का वर्णन करता है, जबकि गुण सिद्धान्त, नेता क्या है, इस आधार पर नेतृत्व की व्याख्या करता है। इस उपागम के अनुसार, नेतृत्व प्रभावी भूमिका निर्वाह हेतु किए जाने वाले व्यवहारों का परिणाम है। नेतृत्व, नेता के गुणों की बजाए उसकी क्रियाओं से झलकता है। अतः यह अत्यंत गत्यात्मक है। इस सिद्धान्त के अंतर्गत प्रभावशाली नेतृत्व की व्यवहार शैलियाँ तथा व्यवहार प्रारूपों का विश्लेषण कर अध्ययन किया गया कि व्यवहार प्रारूप नेतृत्व को किस प्रकार प्रभावित एवं निर्मित करते हैं।

इस उपागम को निम्नलिखित अध्ययनों द्वारा स्पष्टतः समझा जा सकता है:

(A) मिशिगन अध्ययन: विभिन्न औद्योगिक परिस्थितियों का अध्ययन करने के पश्चात् मिशिगन शोधकर्ताओं ने निम्नलिखित दो प्रकार की नेतृत्व शैलियों की पहचान की है जो कर्मचारियों के प्रदर्शन एवं उत्पादकता को प्रभावित करती हैं-

(1) कर्मचारी केन्द्रित नेता

(2) उत्पादकता केन्द्रित नेता

कर्मचारी-केन्द्रित नेता

1. आधिनस्थ मानव है।

2. कर्मचारियों के स्वास्थ्य के प्रति चिन्तित।

3. लक्ष्य निर्धारण में कर्मचारियों को सम्मिलित व प्रोत्साहित करना।

उत्पादकता-केन्द्रित नेता

1. कार्य के तकनीकी पक्ष पर ज़ोर।
2. कार्य-स्तर पर ध्यान एवं बंद पर्यवेक्षण।
3. उत्पादन प्रक्रिया में कर्मचारी एक उत्पादन यन्त्र।

मिशिगन अध्ययन के आधार पर शोधकर्ता कर्मचारियों के व्यवहार एवं उत्पादकता को प्रभावित करने वाले व्यवहारों की पहचान करने में सक्षम हुए और परामर्श दिया कि कार्य की पहचान एवं दिशा निर्धारण से पहले व्यक्तियों की पहचान एवं व्यवहारों की पहचान आवश्यक है। इस परिणाम ने 1950 के दशक में इस विश्वास को बढ़ावा दिया कि कर्मचारी-परक नेतृत्व शैली ही उत्तम शैली है।

(B) ओहियो-स्टेट यूनिवर्सिटी अध्ययन: ओहियो-स्टेट यूनिवर्सिटी के अध्ययन के अन्तर्गत वृहद परिस्थितियों में वास्तविक नेतृत्व व्यवहारों का विश्लेषण करके दो मुख्य नेतृत्व व्यवहारों की पहचान की गई। वे हैं - आत्मउद्योगी ढाँचा **Initiating Structure** एवं महत्व देना **Consideration**। महत्व देना, नेता का कर्मचारियों के साथ द्विमागी सम्प्रेषण, आपसी आदर एवं सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता आदि को दर्शाता है। आत्मउद्योगी ढाँचा नेता की सीमा एवं संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कर्मचारियों की क्रियाओं के परिभाषीकरण को दर्शाता है। अपने शोध के दौरान ओहियो स्टेट के शोधकर्ताओं ने नेतृत्व की पहचान के लिए दो प्रकार की प्रश्नावलियाँ **Leader Behaviour Description Questionnaire (LBDQ)** एवं **Leader Opinion Questionnaire (LOQ)** का निर्माण किया। इनके माध्यम से शोधकर्ताओं ने पाया कि आत्मउद्योगी ढाँचा (IS) एवं महत्व देना (C) दो स्वतंत्र एवं भिन्न आयाम थे। एक आयाम पर उच्च अंक प्राप्त करने का तात्पर्य यह नहीं है कि दूसरे आयाम पर निम्न अंक प्राप्त हों। इन प्रश्नावलियों के माध्यम से शोधकर्ताओं ने आत्मउद्योगी ढाँचा एवं महत्व देना के संयोजन के चार मापक विकसित किए-

High Consideration and low structure	High Consideration and High structure
Low Consideration and Low structure	Low Consideration and High structure

ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने दो स्वतंत्र व्यवहार शैलियों यथा- व्यवस्था प्रधान तथा व्यक्ति प्रधान की पहचान की जो नेतृत्व के क्रमशः व्यवस्था तथा व्यक्ति पर केंद्रित परिस्थितिजन्य व्यवहार को दर्शाती है।

ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी के अध्ययन का बहुत अधिक महत्व था। महत्व देना एवं आत्म-उद्योगी ढाँचा दोनों अवधारणाओं की प्रबन्धकीय प्रशिक्षण में इतनी अधिक माँग हो गयी थी कि विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों में इनका प्रयोग किया जाने लगा। इनके माध्यम से नेतृत्व की पहचान करना आसान हो गया था, परन्तु समय के साथ इनकी आलोचना भी की गयी, जो निम्नलिखित है-

(क) फिडलर के अनुसार (IS) एवं (C) दो स्वतंत्र आयाम नहीं है। एक व्यक्ति के लिए कर्मचारी-परक एवं उत्पादन-परक दोनों होना संभव नहीं है। ये दोनों पक्ष दो भिन्न व्यक्तियों में हो सकते हैं।

(ख) उच्च (IS) एवं (C) का संयोजन प्रदर्शन बेहतर बनाता है, यह विश्वास भी उचित नहीं है। कोरमैन के अनुसार नेता के व्यवहार एवं उत्पादक जैसे मापकों में कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।

(ग) ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी का नेता-व्यवहार उपागम वास्तविकता से परे है। किसी भी निश्चित नेतृत्व व्यवहार पर वातावरण द्वारा पड़ने वाले प्रभाव पर ध्यान नहीं दिया गया है।

प्रबन्धकीय जाल : इस अवधारणा को अमेरिका के औद्योगिक मनोवैज्ञानिक आर0आर0 ब्लेक एवं जेन एस0 मोऊटन द्वारा विकसित किया गया है। प्रबन्धकीय जाल की अवधारणा औद्योगिक परिस्थितियों में व्यवहारिक विज्ञानों में किए जाने वाले प्रायोगिक शोधों पर आधारित है। इस अवधारणा का प्रमुख पक्ष संगठन के अन्दर संगठन के लाभों हेतु व्यक्तियों के व्यवहारों एवं अभिवृत्तियों में प्रभावी सुधार से है। यह प्रबन्धन की कला को विज्ञान में परिवर्तित करता है। ब्लेक एवं मोऊटन के अनुसार उत्पादन एवं व्यक्तियों सम्बन्धी विचार एक सिक्के के दो पहलू हैं और संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दोनों का समन्वित उपयोग किया जाना चाहिए।

प्रबन्धकीय जाल की अवधारणा इस तर्क पर आधारित है नेता की नेतृत्व शैली उत्पादन सम्बन्धी एवं व्यक्ति सम्बन्धी दोनों आयामों का संयोजन है। कोई भी प्रबन्धक पूरी तरह कार्य परक या सम्बन्ध परक नहीं हो सकता, उसमें दोनों के गुण मौजूद रहते हैं। इस दोनों आयामों को स्पष्ट करते हुए ब्लेक एवं मोऊटन के विचार निम्नलिखित हैं-

1. उत्पादन सम्बन्धी: यह केवल वस्तुओं तक सीमित नहीं होता। उत्पादन का मापन सृजनात्मक विचारों की संख्या से होता है जो शोधों को उपयोगी उत्पाद में परिवर्तित करते हैं, कर्मचारी सेवाओं की गुणात्मकता, कार्य-भार, कुशलता आदि इनका मापन करते हैं।

2. व्यक्ति सम्बन्धी: यह विचार केवल अन्तर्व्यक्तिक सम्बन्ध एवं मित्रता तक सीमित नहीं होते, बल्कि इसके अन्तर्गत कार्य को पूरा करने का व्यक्तिगत वचनबद्धता, आत्म-सम्मान, कार्य में सुरक्षा की इच्छा, सहयोगियों के साथ मित्रता जो एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण करती है आदि बातें भी आती हैं।

प्रबन्धकीय जाल को निम्न रेखाचित्र द्वारा समझा जा सकता है -

कन्ट्री क्लब 1,9	समूह 9,9 मध्य मार्ग 5,5
न्यूनतम प्रयास 1,1	कार्य 9,1

रेखाचित्र उत्पादन एवं व्यक्तियों को महत्व दिए जाने की मात्रा एवं उनके बीच संभव अन्तःक्रिया को दर्शाता है। क्षैतिज अक्ष उत्पादन के विचार को महत्व देने का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि लम्ब अक्ष व्यक्तियों को महत्व देने का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक को महत्व देने के नौ बिन्दू मापनी पर प्रदर्शित किया जाता है। संख्या 1 प्रत्येक पक्ष में न्यूनतम महत्व को दर्शाता है एवं संख्या 9 अधिकतम महत्व को।

न्यूनतम प्रयास: कार्य के सम्पादन एवं संगठन के चरित्र (नैतिकता) को बनाए रखने के लिए न्यूनतम प्रयास आवश्यक हैं।

कन्ट्री क्लब: संतुलित, मित्रतापूर्ण संगठन वातावरण हेतु सम्बन्ध को सन्तुष्ट करने के दृष्टिकोण से व्यक्तियों की आवश्यकताओं पर विचारपूर्वक ध्यान देना।

मध्य मार्ग: कार्य करने की आवश्यकता को सन्तुष्टि स्तर तक व्यक्तियों की नैतिकता को बनाए रखते हुए संतुलित करना ताकि संगठन का प्रदर्शन उत्तम हो सके।

कार्य: संगठन के परिणामों में कुशलता प्राप्त करने हेतु कार्य की दशाओं को इस प्रकार व्यवस्थित करना ताकि मानवीय तत्वों का हस्तक्षेप न्यूनतम मात्रा में हो।

समूह: समर्पित एवं आत्मनिर्भर व्यक्तियों द्वारा कार्य की पूर्णता ताकि संगठन में विश्वास एवं आदर युक्त सम्बन्ध स्थापित हो।

सैद्धान्तिक रूप से जाल में 81 संभावित नेतृत्व शैलियाँ प्रकट होती हैं परन्तु सामान्य 5 शैलियों पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। नेता (9,1) का मुख्य सम्बन्ध उत्पादन क्रियाओं से और व्यक्तियों से निम्न सम्बन्ध होता है। इस प्रकार का नेता उत्पादन सूची चाहता है और किसी भी कीमत पर कार्य की पूर्णता चाहता है। (9,1) शैली उत्पादन के प्रति निम्न महत्व एवं व्यक्तियों के प्रति अधिक महत्व को दर्शाती है। (1,1) शैली वाला नेता दोनों (उत्पादन एवं व्यक्ति) के प्रति थोड़ी-थोड़ी भावना रखता है। (5,5) शैली दोनों पक्षों के प्रति उदारता रखती है। (9,9) शैली नेतृत्व की आदर्श शैली को प्रदर्शित करती है। यह शैली दोनों पक्षों के प्रति घनिष्ठ सम्बन्ध को दर्शाती है, इसमें दोनों पक्षों को महत्व दिया जाता है। प्रबन्धकीय जाल के अनुसार (9,9) शैली अनुकूलतम नेतृत्व उपागम है और बहुत से संगठन इस शैली के प्रबन्धक तैयार करने हेतु कार्यक्रम चलाते हैं।

आलोचना: यद्यपि जाल उपागम आकर्षक, निर्देशात्मक एवं प्रबन्धकीय गुणों एवं शैलियों को दर्शाने वाला है। इसके माध्यम से प्रबन्धकों को स्वयं की नेतृत्व शैली की पहचान करने में सहायता प्राप्त होती है, परन्तु इस उपागम में मापन आयामों को इतना जटिल बना दिया गया है कि साधारण व्यक्ति द्वारा इनके माध्यम से नेतृत्व शैलियों एवं नेता के व्यवहारों की पहचान करना कठिन हो जाता है। शोधकर्ताओं में इस उपागम के सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है, क्योंकि इससे सम्बन्धित अभुभाविक ज्ञान का अभाव है।

(3) परिस्थितियात्मक अथवा स्थितिपरक सिद्धान्त: नेतृत्व एक जटिल, सामाजिक एवं अन्तर्व्यक्तिक प्रक्रिया है। इसको पूर्ण रूप से समझने के लिए हमें उन परिस्थितियों को जानना आवश्यक है जिसमें नेता कार्य करता है। एक प्रभावी नेता को अधिनस्थों एवं स्थितियों की भिन्नता को अपनाने में लचीला होना चाहिए। अर्थात् परिस्थिति अनुसार नेता की नेतृत्व शैली भी आवश्यकतानुसार सुसमायोजित होते रहना चाहिये। इस सिद्धांत के अनुसार नेतृत्व परिस्थितिजन्य चरों पर निर्भर होता है।

प्रभावी नेतृत्व व्यक्तित्व, कार्य, शक्तियों अभिवृत्तियों, प्रत्यक्षीकरण आदि पर निर्भर करता है। इस अवधारणा पर आधारित कई सिद्धान्त विकसित किए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं-

फीडलर का प्रासंगिकता सिद्धान्त: नेतृत्व की प्रभावशीलता नेता व्यवहार तथा नेतृत्व का प्रयोग की जाने वाली परिस्थितियों के बीच अन्तःक्रिया का परिणाम है। प्रासंगिकता सिद्धान्त में नेताओं की सफलता स्थितिपरक चरों पर निर्भर करती है।

फ्रेड फीडलर (1967) के अनुसार संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एवं उत्पादन हेतु परिस्थितिजन्य विशेषताएँ एवं नेता के गुण दोनों का संयोजन आवश्यक है। नेता का कार्य नेता के व्यक्तित्व एवं परिस्थिति के उपयुक्त संयोजन पर निर्भर करता है। साथ ही परिस्थितियों में निहित कुछ विशेष कारक नेतृत्व की प्रभावशीलता को प्रभावित करते हैं। फीडलर ने इन विशेष कारकों को परिस्थिति की अनुकूलता का नाम दिया है। नेतृत्व की प्रभावशीलता परिस्थिति की अनुकूलता पर निम्न विशेषताओं के सन्दर्भ में निर्भर करती है-

नेता एवं अधिनस्थों के मध्य सम्बन्ध।

कार्य संरचना की सीमा।

नेता की अधिकारिक शक्ति।

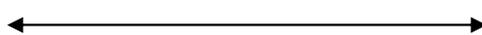
परिस्थितियों का पक्ष में होना।

फीडलर द्वारा वर्णित इन चरों का वर्गीकरण निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा स्पष्टतः समझा जा सकता है-

फीडलर के परिस्थितिजन्य चरों का वर्गीकरण

नेता-सदस्य संबंध	अच्छा				खराब			
कार्य-संरचना	उच्च		निम्न		उच्च		निम्न	
नेता पद की शक्ति	शक्तिशाली	कमजोर	शक्तिशाली	कमजोर	शक्तिशाली	कमजोर	शक्तिशाली	कमजोर
परिस्थिति	I	II	III	IV	V	VI	VII	VIII

पूर्णतः पक्ष में



पूर्णतः विपक्ष में

नेता एवं सदस्यों के मध्य अच्छे सम्बन्ध, उच्च स्तर पर संगठित क्रियाएँ एवं नेता का अपने आधिपत्य पर पूर्ण प्रभाव रखने की शक्ति पूर्णतः पक्ष वाली परिस्थिति को दर्शाती है। सारणी का पहला प्रकोष्ठ पूर्णतः पक्ष को दर्शाता है। जहाँ नेता की शक्तियाँ कमजोर होती हैं, सदस्यों के साथ सम्बन्ध खराब होते हैं और कार्य असंगठित एवं अनिश्चित होते हैं वहाँ पूर्णतः विपक्ष की परिस्थिति को दर्शाती है। यह सारणी के अन्तिम प्रकोष्ठ वाली स्थिति है। इन दोनों ही परिस्थितियों के बीच की परिस्थितियाँ अत्यन्त कठिन होती हैं। फीडलर के अनुसार सम्बन्ध-परक शैली सामान्य स्तर पर पक्ष एवं सामान्य स्तर पर विपक्ष वाली परिस्थितियों में उपयुक्त होती है। उच्च पक्ष एवं उच्च विपक्ष वाली परिस्थितियों में कार्य-परक शैली उपयोगी होती है। रेखाचित्र के आधार पर समझा जा सकता है कि कोई नेता एक परिस्थिति में प्रभावशाली हो सकता है। तथा दूसरी में प्रभावहीन।

सिद्धान्त की मुख्य विशेषताएँ -

- **नेतृत्व शैली:** फीडलर के अनुसार कार्य प्रधान एवं सम्बन्ध प्रधान व्यवहार ही दो मूलभूत शैलियाँ हैं। ये दोनों शैलियाँ आधिपत्य के साथ अच्छे सम्बन्ध एवं कार्य के सफल सम्पादन की माँग पर निर्भर करती हैं।
- **समूह के कार्य निष्पादन में वृद्धि:** इस सिद्धान्त में नेतृत्व की उन शैलियों पर बल दिया गया है जो कार्य निष्पादन में वृद्धि एवं संस्थागत लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होती हैं।

- **समूह-कार्य परिस्थिति:** इस सिद्धान्त के अनुसार नेतृत्व शैली की उपयुक्तता समूह कार्य-परिस्थिति पर निर्भर करती है। इसको फीडलर द्वारा पारस्परिक-विन्यास के रूप में देखा है जो नेता के प्रभाव को बढ़ाने में सहायक होता है।

आलोचना : फीडलर का मॉडल प्रकट करता है कि नेता परिस्थिति की माँगों के अनुरूप कार्य-परक या सम्बन्ध परक हो जाता है। इस मॉडल की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि फीडलर अपने सिद्धान्त को ज्ञात परिणाम प्राप्त करने हेतु आकार देते हैं।

- फीडलर के प्रासंगिकता सिद्धान्त का कोई सैद्धान्तिक आधार नहीं है, यह केवल ल अनुभाविक सामान्यीकरण पर आधारित है।
- फीडलर द्वारा दी गई परिस्थिति में उच्च-पद शक्ति दूसरी परिस्थिति में निम्न पद-शक्ति हो सकती है।
- यद्यपि फीडलर का सिद्धान्त नेतृत्व शैली के अध्ययन के दृष्टिकोण से बहुत अधिक उपयुक्त है तथापि इसमें बहुत अधिक जटिलता है।

हरसे तथा ब्लेनचर्ड का स्थितिपरक सिद्धान्त: ओहियो विश्वविद्यालय के पाल हरसे एवं कैनेथ एच0 ब्लेनचर्ड के अनुसार नेतृत्व की विभिन्न शैली विभिन्न परिस्थितियों में प्रभावशाली एवं अप्रभावशाली हो सकती हैं। एक शैली एक परिस्थिति में प्रभावशाली होती है तो दूसरी परिस्थिति में अप्रभावशाली हो जाती है। परिस्थितियाँ ही नेता की शैली को प्रभावी अथवा अप्रभावी बनाती हैं। लेखकद्वय ने सैद्धान्तिक परिस्थितियों के लिए दो आयामों कार्य-वातावरण एवं परिस्थिति को अपनाया है। यह सिद्धान्त नेतृत्व का “जीवन चक्र सिद्धान्त” के नाम से भी जाना जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न परिस्थितियों में संगठन के सदस्यों का परिपक्वता स्तर एक विशिष्ट कारक होता है, जो नेतृत्व को प्रभावी अथवा अप्रभावी बनाता है। समूह का ये परिपक्वता स्तर सदस्यों द्वारा सम्पादित विशिष्ट कार्य के माध्यम से जाना जाता है। लेखकद्वय के अनुसार परिपक्वता दो अन्तर्सम्बन्धित कारकों में संयोजन से निर्मित होती है। ये कारक हैं-

उच्च लेकिन वास्तविक लक्ष्यों का निर्धारण करने की क्षमता एवं इच्छा।

लक्ष्य प्राप्ति हेतु उत्तरदायित्व लेने की क्षमता एवं इच्छा।

इन कारकों के आधार पर नेतृत्व प्रभावशीलता को ज्ञात करने के तीन आयाम निर्धारित किए गए हैं-

कार्य प्रधान

सम्बन्ध-प्रधान

समूह की परिपक्वता

यह सिद्धान्त मानता है कि समूह के सदस्यों के परिपक्वता स्तर को समय के साथ प्रशिक्षण आदि के माध्यम से बढ़ाया जा सकता है। यही परिपक्वता स्तर नेतृत्व शैली की प्रभावशीलता में वृद्धि करता है। सदस्य जिनसे परिपक्व होंगे वे नेता के आदेशों को उतनी ही कुशलता से समझेंगे और उनके पालन में अपना योगदान देंगे। लेखकद्वय ने अनुसार सदस्यों की परिपक्वता स्तर को कार्य-प्रधान व्यवहार में कमी एवं सम्बन्ध-प्रधान व्यावहार में वृद्धि द्वारा जाना जा सकता है।

आलोचना: 1. हरसे-ब्लेनचर्ड द्वारा दिए गए सिद्धान्त में परिस्थिति से जुड़े आयामों के बारे में बताया गया है परन्तु उनका स्पष्टीकरण नहीं किया गया है।

2. यह सिद्धान्त सदस्यों की परिपक्वता स्तर को नेतृत्व की प्रभावशीलता से जोड़ता है, परन्तु सदस्यों में व्यक्तिगत भिन्नता के फलस्वरूप परिपक्वता स्तर प्राप्त करने का भी भिन्न-भिन्न स्तर होता है। ऐसी स्थिति में एक समय पर सभी सदस्यों से एक जैसी परिपक्वता की आशा नहीं की जा सकती है।

3. परिपक्वता स्तर कार्य-प्रधान व्यवहार में कमी एवं सम्बन्ध प्रधान व्यावहार में वृद्धि द्वारा पाया जा सकता है, परन्तु ये कमी एवं वृद्धि परिस्थितियों के अनुरूप हो तभी लक्ष्यों की प्राप्ति संभव है। ऐसी स्थिति में आवश्यक समय पर आवश्यक परिपक्वता की प्राप्ति की आशा करना व्यर्थ है।

ब्रूम तथा चैटन का मानकीय प्रासंगिकता सिद्धान्त : विक्टर ब्रूम तथा फिलिप चैटन का प्रासंगिकता सिद्धान्त बताता है कि विशिष्ट परिस्थितियों से सम्बन्धित प्रासंगिकता के दृष्टिकोण से प्रभावित होने के लिए कैसा व्यवहार नेता द्वारा किया जाना चाहिए। इस सिद्धान्त को मानकीय सिद्धान्त के रूप में जाना जाता है क्योंकि यह नेता-व्यवहार से जुड़ी प्रासंगिकताओं के मानक तय करता है। अर्थात् किसी विशेष परिस्थिति में नेता का व्यवहार किस प्रकार होना चाहिये का मानक निश्चित करता है। इस सिद्धान्त में लेखकद्वय ने निम्नलिखित पाँच प्रकार की नेतृत्व शैलियों का वर्णन किया है-

तानाशाही या निरंकुश प्रक्रिया: इस श्रेणी में दो प्रकार की नेतृत्व शैलियाँ आती हैं।

- 1: नेता उपलब्ध सूचनाओं का अध्ययन कर निर्णय लेता है।
- 2: नेता सदस्यों से सूचनाएँ प्राप्त कर निर्णय लेता है एवं सदस्यों को समस्या का ज्ञान करा सकता है या नहीं भी कराता है।

परामर्शवादी प्रक्रिया : इस श्रेणी में दो प्रकार की नेतृत्व शैलियाँ आती हैं-

- 1: इस शैली में नेता मुख्य सदस्यों के सहयोग से निर्णय लेता है। वह एक-एक से व्यक्तिगत रूप से सूचनाएँ ग्रहण करता है, न कि समूह में।
- 2: इस शैली में नेता किसी समूह में सदस्यों से सूचनाएँ प्राप्त कर समूह में ही निर्णय लेता है।

समूह प्रक्रियाएँ : यह शैलियों का समूह है जिसमें नेता निम्न प्रकार से निर्णय लेता है।

इस शैली में नेता समूह में सदस्यों के साथ समस्या पर विचार करता है। साथ ही सदस्यों को सहयोग भी प्रदान करता है ताकि सामूहिक निर्णय हेतु एकमत पर पहुँचा जा सके। नेता सदस्यों से सूचनाएँ प्राप्त करता है, अपने विचार प्रदान करता है परन्तु वह अपने निर्णय सदस्यों पर थोप नहीं सकता, केवल अप्रत्यक्ष ढंग से सदस्यों को अपने निर्णय की स्वीकृति के लिए तैयार कर सकता है। अन्त में वह उन्हीं निर्णयों को पारित करता है जिनमें सर्वसम्मति हो।

ब्रूम तथा चैटन का सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैं-

मान्यताएँ :

निर्णय शैली परिस्थितियों के अनुरूप बदलती है।

नेतृत्व शैली निर्णयों द्वारा प्रभावित होने वाले सदस्यों की संख्या के आधार पर भिन्न-भिन्न होती है।

कोई भी नेतृत्व शैली प्रत्येक परिस्थिति में उपयुक्त नहीं होती।

निर्णय प्रक्रिया में सदस्यों की सहभागिता को प्रभावित करने हेतु नेता को उपयुक्त प्रक्रिया का चयन करना चाहिए।

नेतृत्व शैली का चयन निम्न तीन चरों पर निर्भर करता है-

निर्णय की गुणात्मकता

निर्णय की स्वीकृति

निर्णय लेने हेतु आवश्यक समय की मात्रा

परिस्थिति का निदान: किन परिस्थितियों में कैसे नेतृत्व का प्रयोग किया जाना है उनके निदान हेतु सात प्रश्नों के उत्तरों को जानना आवश्यक है। जिनके उत्तर हाँ या नहीं में दिये जायेंगे। ये प्रश्न हैं-

क्या समस्या में गुणवत्ता की आवश्यकता निहित है? इसका तात्पर्य यह देखना है कि क्या निर्णय तुरन्त लिये जाने हैं तथा दूसरो से परामर्श का समय नहीं है।

क्या सही एवं अच्छा निर्णय लेने हेतु नेता के पास पर्याप्त समय है?

क्या समस्या भली-भाँति सुगठित है?

क्या क्रियान्वयन हेतु निर्णय को सदस्यों की स्वीकृति आवश्यक है?

यदि नेता अकेले निर्णय लेता है तो दूसरों द्वारा स्वीकृति दी जाने की कितनी निश्चितता है?

क्या संस्थागत लक्ष्यों के निर्धारण में सदस्यों ने भाग लिया है?

क्या समस्या के चुने हुए समाधान से सदस्यों में विरोध होने की सम्भावना है?

इन प्रश्नों के उत्तर जानकर परिस्थिति की प्रासंगिकता के निदान के पश्चात् ऐसी नेतृत्व शैली खोजी जाती है, जो सर्वाधिक उपयुक्त है। इस प्रकार वूम एवं येटन के मॉडल से दो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं-(1) किसी विशिष्ट परिस्थिति में एक या एक से अधिक नेतृत्व शैली प्रभावी होती है।

(2) यदि समय की कमी है एवं विरोधाभास की स्थिति है तो नेता को निरंकुश शैली अपनानी चाहिए और यदि वह अपने आधिनस्थों के विकास हेतु कुछ समय चाहता है तो उसे सहभागी शैली अपनानी चाहिए।

आलोचना: (1) इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमी 'समय बाध्यता' की है। ऐसी बाध्यता में नेता ऐसी शैली अपनाने में लाभ समझता है जो कम समय लेती हैं। परन्तु ऐसी शैली प्रत्येक परिस्थिति में उपयुक्त नहीं हो सकती।

(2) इस सिद्धान्त में विधि सम्बन्धी समस्याएँ विद्यमान हैं, अर्थात् यदि प्रबंधक निर्णय में अपने सदस्यों की सहभागिता चाहता है तो उसे सदस्यों के प्रशिक्षण हेतु समय चाहिए साथ ही सदस्यों को निर्णय लेने में, सुझाव देने में समय लगता है तथा उन्हें प्रेरित करने के लिए पुरस्कृत भी किया जाना चाहिए। इन सब विधियों के बाद भी नेतृत्व शैली की प्रमाणिकता सिद्ध नहीं होती और यह कमी सिद्धान्त की उपयोगिता को कम कर देती है।

मार्ग-लक्ष्य सिद्धान्त: आर.जे. हाउस द्वारा प्रस्तावित मार्ग-लक्ष्य सिद्धान्त के अनुसार, नेता को संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सदस्यों को व्यक्तिगत पुरस्कार प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुए प्रेरित करना चाहिए। ये मार्ग तभी स्पष्ट होगा जब सदस्यों के विचारों की दुविधा अथवा विरोधाभास को समाप्त किया जाएगा। आधिनस्थों को दिए जाने वाले पुरस्कारों के प्रकार एवं मात्रा में नेता द्वारा वृद्धि की जानी चाहिए। उसे पुरस्कार प्राप्ति के मार्ग को स्पष्ट करने हेतु निर्देशन एवं परामर्श भी देना चाहिए। दूसरे शब्दों में, आधिनस्थों को कार्य-सुरक्षा, वास्तविक अनुभव प्राप्त करने हेतु स्पष्टीकरण एवं मूल्यपरक लक्ष्यों की प्राप्ति में आने वाली बाधाओं को प्रबन्धक द्वारा दूर किया जाना चाहिए। नेता को लक्ष्य एवं मार्ग को स्पष्ट करना चाहिए। सहयोग एवं पुरस्कार प्रदान करना चाहिए, साथ ही कार्य, परिस्थितियों एवं कर्मचारियों की आवश्यकताओं का विश्लेषण करना चाहिए।

उपरोक्त कार्यों के सम्पादन हेतु नेता को निम्नलिखित व्यावहारिक शैलियाँ अपनानी चाहिए-

(1) **सहयोगात्मक :** नेता, आधिनस्थों के प्रति मित्रवत् हो, कर्मचारियों की आवश्यकता, सुरक्षा एवं स्थिति के प्रति सचेत हो और सहयोगियों को अपने बराबर समझे।

(2) **निर्देशात्मक :** नेता इस शैली में नियोजन, संगठन एवं कर्मचारियों की क्रियाओं को निर्देशित करता है। वह प्रदर्शन के स्तर को परिभाषित करता है और आधिनस्थों को प्रकट करता है कि उनसे क्या आशा की जाती है?

(3) **सहभागी :** इस शैली में नेता, कर्मचारियों से सलाह लेता है, उनके सुझावों को अपनाकर एक उत्तम निर्णय लेता है।

(4) **उपलब्धि-परक:** इस शैली को अपनाने वाले नेता चुनौतीपूर्ण लक्ष्य निर्धारित करते हैं, कर्मचारियों से अपना उत्तम देने की आशा करते हैं और निरन्तर कर्मचारियों के प्रदर्शन स्तर में सुधार चाहते हैं।

हाउस के अनुसार एक निश्चित नेतृत्व शैली, जो कि सदैव उत्तम कार्य करे, दो चरों द्वारा निर्धारित होती है-

कर्मचारियों के गुण: नेता द्वारा अपनायी जाने वाली शैली उसके अनुयायियों की आवश्यकता, योग्यता एवं व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। यदि अनुयायी उच्च योग्यता वाले हैं तो सहयोगात्मक शैली उपयुक्त होती है और यदि अनुयायी निम्न योग्यता वाले हैं तो निर्देशात्मक शैली उपयुक्त होती है। उच्च आवश्यकता वाले अनुयायियों हेतु सहयोगी नेता एवं उच्च आवश्यकता वाले, उपलब्धि प्राप्त करने वाले अनुयायियों हेतु कार्य-परक नेता आवश्यक हैं। अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले कर्मचारी जो मानते हैं कि वे अपने व्यवहार को नियंत्रित कर सकते हैं, वे सहयोगी व्यवहार वाला नेता चाहते हैं।

कार्य वातावरण: वातावरणीय चर कर्मचारियों के नियंत्रण में नहीं होते लेकिन वे प्रभावी प्रदर्शन की योग्यता अथवा सन्तुष्टि हेतु महत्वपूर्ण होते हैं। इसके अन्तर्गत कर्मचारी क्रियाएँ, औपचारिक अधिकारिक ढाँचा एवं प्राथमिक कार्य समूह आते हैं।

कार्य सन्तुष्टि

प्रासंगिकता कारक कार्य ढाँचे के साथ आधिनस्थ सन्तुष्टि एवं निर्देशालय नेता के बीच परिकल्पनात्मक सम्बन्ध स्पष्ट होता है कि ढाँचागत अथवा संगठित कार्य, उच्च स्तर के निर्देशालय व्यवहार, निम्न कार्य सन्तुष्टि से जुड़े रहते हैं। असंगठित कार्यों के लिए उच्च स्तर की निर्देशात्मकता, उच्च स्तर की कार्य सन्तुष्टि के साथ जुड़ी रहती है। अन्तिम विश्लेषण के अनुसार, मार्ग-लक्ष्य सिद्धान्त प्रस्तावित करता है, कि कर्मचारियों को वातावरणीय अनिश्चितताओं से जूझने के लिए कर्मचारियों को उपाय समझाने हेतु नेता का व्यवहार प्रेरणादायक होगा। कार्य की अनिश्चितताओं को कम करने की योग्यता रखने वाला नेता प्रेरक होना चाहिए क्योंकि वह कर्मचारियों की अपेक्षाओं को बढ़ाता है ताकि उनके प्रयास उन्हें पुरस्कार प्रदान करें। इस प्रकार मार्ग-लक्ष्य सिद्धान्त नेता को आधिनस्थों एवं परिस्थितियों दोनों को समान महत्व देने को प्रेरित करता है।

आलोचना: (1) यह एक जटिल स्थितिपरक सिद्धान्त है। विधियों की जटिलता के कारण अनुभाविक परीक्षण कठिन है।

(2) इस सिद्धान्त के पीछे शोधकर्ताओं एवं विशेषज्ञों की मान्यताओं का अभाव है। इस सिद्धान्त से जुड़े शोधों की संख्या भी नाममात्र है, इस कारण इसकी प्रामाणिकता पर प्रश्न चिन्ह लगता है।

(3) इस सिद्धान्त से जुड़े शोध प्रमाण कभी-कभी सिद्धान्त निर्माणक तत्व बन जाते हैं।

(4) यह एक अपूर्ण सिद्धान्त है जो नेता के व्यवहार को प्रभावित करने वाले कर्मचारियों से जुड़े कुछ कारकों जैसे अपेक्षा, स्वीकृति, सन्तुष्टि आदि पर ही विचार करता है। यह नेतृत्व शैली का संभावित स्पष्टीकरण मात्र है।

(5) यह नेता के व्यवहार को प्रभावित करने वाले व्यक्तिगत गुणों की अवहेलना करता है।

5.5 निबंधात्मक प्रश्न

1. नेतृत्व को परिभाषित कीजिए।
2. नेतृत्व के कौन-कौन से सिद्धान्त प्रचलन में हैं? मानक बताइये।

5.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Terry, G.R. (1954). Principles of Management, Illinois, Richard, D. Trwin. Inc., Homewood.
- Tannenbaum & Schmidt, W. 'How to choose a leadership Pattern, Harvard Bussiness Review.
- Koontz, Harold & O' Donnel, Cyril. Essentials of Management, New York, Tata Mc. Graw Hill.
- Rao, V.S.P. & Krishna, V. Hari (2002) Management : Text and cases, New Delhi, Excel Books.
- Hughes, Richard L., Gennett, R.C. & Curphy, Gordon J. Leadership, Enhancing the lessons of Experience (Sixth edition) New York, Tata Mc Graw Hill.
- Bhatnagar, R.P. (2010). Educational Administration. Meruth, International Publishing House.
- Verma, J.P. (2008). Educational Management (4th edition). Jaipur Rajasthan Hindi Granth Academy.

इकाई 6. नेतृत्व की शैलियाँ

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 नेतृत्व की शैलियाँ

6.3.1 एकतंत्रतीय अथवा अधिकारिक शैली

6.3.2 प्रजातांत्रिक शैली

6.3.3 लेसेज़ फेयर अथवा अहस्तक्षेपी शैली

6.3.4 पितातुल्य शैली

6.3.5 व्यवहार शैली

6.3.6 रुपान्तर शैली

6.3.7 सहभागी शैली

6.3.8 सहयोगी शैली

6.4 क्रियाकलाप

6.5 संदर्भ एवं सहायक पुस्तक सूची

6.1 प्रस्तावना

नेतृत्व एक मूल्य-परक अवधारणा है। परम्परागत अवधारणा के अनुसार नेतृत्व एक व्यक्तिगत योग्यता है। नेता आलौकिक शक्तियों द्वारा बनते थे जिनमें मानव-मस्तिष्क को पढ़ने की योग्यता होती थी। वर्तमान समय में नेतृत्व को एक व्यक्तिगत योग्यता के रूप में देखा जाता है। वर्तमान परिभाषाओं में नेतृत्व को एक समाज-प्रभावित प्रक्रिया माना गया है। नेतृत्व, किसी दी हुई परिस्थिति में निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु समूह-क्रियाओं को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है। यह प्रबंधक की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह अपने सहयोगियों को पूर्ण उत्साह एवं आत्म-विश्वास के साथ कार्य करने को प्रेरित करता है। शिक्षण संस्थानों में शिक्षक, पर्यवेक्षक निरीक्षक प्रधानाचार्य, विभागाध्यक्ष, निदेशक, समन्वयक, कुलपति आदि नेतृत्व का कार्य संभालते हैं। शैक्षिक नेता के रूप में वे संस्थागत लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु उत्तरदायी होते हैं।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- नेतृत्व शैली की अवधारणा से परिचित होंगे;

- नेतृत्व की एकतांत्रिक, प्रजातांत्रिक, पितातुल्य शैली, व्यवहार शैली, रूपान्तर शैली, सहभागी शैली, सहयोगी शैली तथा अहस्तक्षेपी शैलियों के बारे में जान सकेंगे।
- शैक्षिक संस्थाओं में नेतृत्व के विभिन्न शैलियों के महत्व से परिचित हो सकेंगे।

6.3 नेतृत्व की शैलियाँ

शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में उच्च अधिकारियों अथवा नेता द्वारा आधिनस्थों अथवा सहकर्मियों के हृदय को जीतने वाला, उनको सहयोग व परामर्श, पुरस्कार-दण्ड देने, अनुशासन बनाये रखने वाला व्यावहार जो व्यक्ति अथवा अर्जित गुणों, परिस्थितियों पर आधारित होता है, शैक्षिक नेतृत्व कहा जाता है। सामाजिक परिवर्तन के अनुकूल शिक्षा के विकास, सामूहिक कार्यक्रमों में समन्वय, शिक्षा में नियोजन एवं संलग्नता की सफलता हेतु शैक्षिक नेतृत्व अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर उन्नति, विकास, विद्यालय की प्रगति हेतु एक कुशल नेता की आवश्यकता होती है। एक शैक्षिक नेता सामाजिकता, सामाजिक जागरूकता बनाये रखने, सामाजिक विशेषताओं के अनुकूल विद्यालय की व्यवस्था करने, उच्च शैक्षिक प्रबन्धन हेतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षा के क्षेत्र में विद्यालय प्रबन्धन में प्रबन्धक अथवा प्रधानाचार्य एवं कक्षा स्तर पर अध्यापक नेता की भूमिका निभाता है।

किसी भी शैक्षिक संस्था में नेतृत्व संस्थागत लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्य परिवेश को इस प्रकार निश्चित करता है कि प्रधानाचार्य, शिक्षक, गैर-शिक्षणत्तर कर्मचारी एवं छात्रों सभी शैक्षिक संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु तत्पर होकर कार्य करते हैं। चूँकि एक शैक्षिक संस्था के उत्थान से समाज का उत्थान जुड़ा होता है अतः शैक्षिक नेता का उत्तरदायित्व बहुत अधिक जटिल एवं महत्वपूर्ण होता है। शैक्षिक संस्थानों के प्रबन्ध में शैक्षिक नेतृत्व निहित है तथा शैक्षिक नेतृत्व में संस्थागत लक्ष्यों को प्राप्त करने के दक्ष एवं प्रभावशाली तरीके निहित होते हैं।

शैक्षिक नेतृत्व का कार्यक्षेत्र :

शैक्षिक नेतृत्व के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यक्षेत्र समाहित किए जा सकते हैं-

1. विद्यालयी क्रियाओं हेतु उद्देश्य निश्चित करना।
2. नीति निर्धारित करना।
3. कार्य का निश्चय एवं प्रारूप तैयार करना।
4. प्रशासकीय कार्यों तथा उनके ढाँचे में समन्वय करना।
5. प्रभाव तथा संचालन का मूल्यांकन।
6. शिक्षा के विकास हेतु सामाजिक नेतृत्व के साथ मिलकर कार्य करना।
7. शैक्षिक संसाधनों का कुशलतम उपयोग।

8. सम्बन्धित शैक्षिक कार्यों में समाज के व्यक्तियों, विशेषज्ञों से सहयोग एवं विचार विनिमय करना।

नेतृत्व शैलियाँ

नेतृत्व शैली, एक नेता की दिशा निर्देश प्रदान करने, योजनाओं के क्रियान्वयन एवं आधीनस्थों को प्रेरित करने की शैली को प्रदर्शित करती है। नेतृत्व शैली, एक नेता के सामान्य व्यक्तित्व, सहनशक्ति एवं संगठनात्मक व व्यक्तिगत लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मार्ग दर्शन प्रदान करने की दिशा में अपनायी जाने वाली सम्प्रेषण तकनीकों आदि पर निर्भर करती है। कर्मचारियों द्वारा नेता द्वारा किये जाने वाले व्यावहारों का पर्यवेक्षण कर उनका नामकरण नेतृत्व शैलियों के नाम से जाना जाता है।

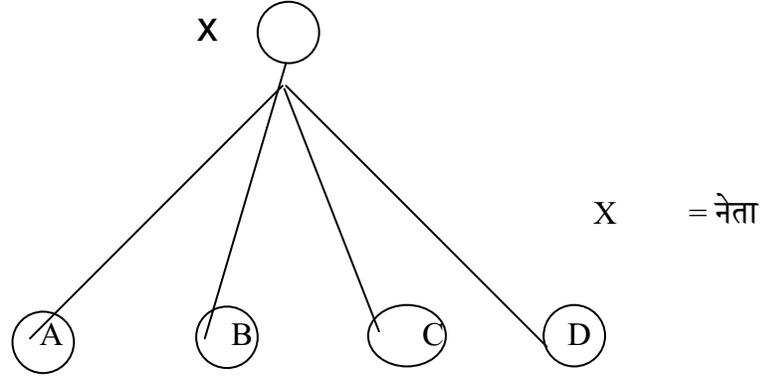
नेतृत्व शैलियों की दिशा में किये गए शोधों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि एक सफल नेता प्रत्येक परिस्थिति में एक संगत शैली ही अपनाने का प्रयत्न करता है। एक नेता की शैली संगठन की प्रकृति एवं बाह्य समुदायों के साथ उसके सम्बन्धों में प्रदर्शित होती है। एक नेता, संगठन के भीतर नेतृत्व का सम्प्रत्यय एवं नेता द्वारा निर्देशित करने की तकनीकों आदि के संयोजित रूप से नेतृत्व शैली निर्मित होती है। एक संगठन के भीतर नेतृत्व की अवधारणा निर्देशन विधियाँ, परिवर्तन हेतु अभिवृत्ति आदि नेता द्वारा विभिन्न शैलियों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सामान्यतः नेतृत्व शैली संगठन लक्ष्यों की सफलता पूर्वक प्राप्ति हेतु नेता द्वारा अपनाया जाने वाला मार्ग है। इसका संगठन एवं उसके कर्मचारी सदस्यों पर गहरा प्रभाव पड़ता है और एक कुशल शैली ही संगठन को प्रभावी अथवा अप्रभावी बनाती है। एक संगठन के भीतर परिस्थितियों के अनुरूप नेता को विभिन्न शैलियाँ अपनानी पड़ती है। किसी अवसर पर कर्मचारी एवं आधीनस्थ नेता की ओर से प्रशंसा अथवा पुरस्कार की अपेक्षा करते हैं तो किसी अवसर पर समूह में दूरदर्शिता प्रशिक्षण की नवाचारी तकनीकों को अपनाने की आवश्यकता महसूस की जाती है, ऐसी परिस्थितियों में नेता को बड़ी सूझ-बूझ के साथ नेतृत्व शैली का चयन करना होगा। नेतृत्व शैली, एक संगठन के भीतर प्रत्येक क्षेत्र एवं प्रत्येक क्रिया को प्रभावित करती है। इसलिए यह समझना बहुत ही महत्वपूर्ण है कि विभिन्न परिस्थितियों में कौन सी शैली अधिक प्रभावी होगी और कौन सी कम प्रभावी।

नेतृत्व शैलियाँ कई प्रकार की हो सकती हैं, कुछ प्रमुख शैलियों का विवरण अग्रलिखित है--

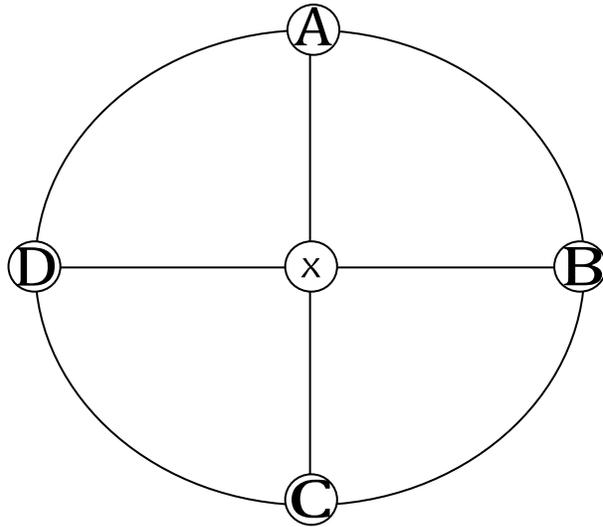
6.3.1 एकतंत्रतीय अथवा अधिकारिक शैली (Autocratic or Authoritarian Style): इस प्रकार की शैली में बिना कर्मचारियों से परामर्श लिये नेता द्वारा ही सारे निर्णय किये जाते हैं। शक्तियाँ एवं विनिश्चयीकरण उसमें ही केन्द्रित रहती हैं। नेता का कर्मचारियों पर पूरा नियंत्रण रहता है। नेता द्वारा आदेश दिये जाते हैं और कर्मचारियों से आशा की जाती है कि वे बिना किसी विरोध के उनका पालन करें। इस प्रकार नेता आज्ञाकारी एवं नियमबद्ध व्यावहार सदस्यों द्वारा करने की योग्यता विकसित करता है। वह कार्य में सीमित स्वतंत्रता प्रदान करता है। पुरस्कार एवं दण्ड दोनों के माध्यम से अनुशासन स्थापित किया जाता है, जिसमें दण्ड

का अधिक योगदान होता है। सम्प्रेषण एक-मार्गी होता है। आधिनस्थों को प्रत्येक कार्य के लिए उच्च अधिकारियों पर निर्भर रहना होता है। निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा इस शैली को समझा जा सकता है-



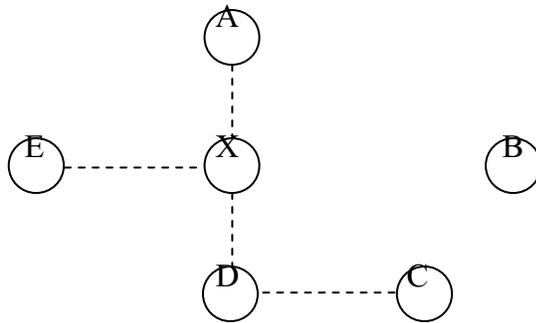
कर्मचारियों की अनुभवहीनता, असुरक्षा एवं अकुशलता की स्थिति में इस शैली का प्रयोग किया जाता है।

6.3.2 प्रजातांत्रिक शैली (Democratic Style): प्रजातांत्रिक नेता विनिश्चयीकरण प्रक्रिया में आधिनस्थों के योगदान को प्रोत्साहित करता है। वह निर्णय लेने से पहले उनका परामर्श लेता है। इस प्रकार की शैली खुली हुई, द्विमार्गी सम्प्रेषण वाली शैली है। समूह के सदस्यों के बीच एक उत्तम स्थिति बनाने का प्रयास किया जाता है। नेता प्रभुत्व नहीं जमाता है। वह आधिनस्थों को हर प्रकार की स्वतंत्रता देता है, परन्तु अनुशासनहीनता उत्पन्न नहीं होने देता। समूह के सदस्यों की अधिकतम योग्यता का लाभ प्राप्त करने के लिए नेता, सहभागिता एवं सहयोग पर जोर देता है। इस शैली को निम्न रेखाचित्र द्वारा जाना जा सकता है-



जब संगठन द्वारा अपने लक्ष्य एवं उद्देश्य आधिनिस्थों को सम्प्रेषित किये जाते हैं, तब नेता आधिनिस्थों की सलाह चाहता है, जब आधिनिस्थ निर्णय प्रक्रिया में भाग लेते हैं एवं कर्मचारियों की कुशलता एवं अनुभव का लाभ उठाने की स्थितियों में इस शैली का प्रयोग किया जाता है।

6.3.3 लेसेज़ फेयर अथवा अहस्तक्षेपी शैली (Laissez Faire or Free-rein Style): इस शैली में नेता सभी कार्य एवं समस्याएँ आधिनिस्थों पर डाल देता है। आधिनिस्थों से आशा की जाती है कि वे ही लक्ष्य का निर्धारण करें एवं उनकी प्राप्ति हेतु योजनाएँ बनायें। नेता कोई निर्देश नहीं देता है। वह केवल निष्क्रिय निरीक्षक बना रहता है एवं शक्तियों का उपयोग नहीं करता है। केवल आवश्यकता पड़ने पर सलाह देता है। समूह के सदस्यों पर उसका बहुत कम नियंत्रण रहता है। जिन संगठनों में लक्ष्यों को पहले से ही सम्प्रेषित कर दिया जाता है एवं आधिनिस्थों द्वारा स्वीकृत कर लिया जाता है, आधिनिस्थ अपने उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए पूर्ण प्रशिक्षित, उच्च ज्ञान एवं अनुभव वाले होते हैं, ऐसी परिस्थितियों में इस शैली का प्रयोग किया जाता है। आधिनिस्थ उच्च प्रेरणा वाले, कार्य के प्रति समर्पित होते हैं। इस शैली को निम्न रेखाचित्र द्वारा जाना जा सकता है।



6.3.4 पितातुल्य Paternalistic style -

इस प्रकार की शैली को अपनाने वाला नेता अपने अधिनिस्थों के साथ पितातुल्य व्यवहार करता है। इस शैली को अपनाने वाला नेता अपने कर्मचारियों की पूर्ण देखभाल करना है और बदले में उनके विश्वास और नेता के प्रति वफादारी का पात्र होता है। कर्मचारी अपने नेता के विश्वासों के प्रति पूर्ण समर्पित होते हैं और स्वच्छन्द होकर कोई कार्य नहीं करते हैं। नेता और कर्मचारियों के मध्य सम्बन्ध बहुत ही घनिष्ठ होते हैं। कर्मचारियों से नेता के प्रति विश्वास एवं वफादारी के कारण यह अपेक्षा की जाती है कि वे संगठन के साथ लम्बे समय तक जुड़े रहें। इस शैली को अपनाने वाले संगठन कर्मचारियों को परिवार जैसा वातावरण प्रदान करते हैं और कर्मचारी भी मानते हैं कि उनकी हर समस्या का समाधान किया जाएगा। इस प्रकार की नेतृत्व शैली को अपनाने वाले नेता उच्च संगठनात्मक कौशलों से युक्त होता है। नेता कर्मचारियों को स्वस्थ कार्य दशाएँ प्रदान करता है ताकि संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में कोई कमी न रह जाय और यही कर्मचारियों के आत्म विश्वास को बढ़ाने में सहायक होता है ताकि संगठन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु वे पुरस्कार पद्धति के क्रियान्वयन में

भी सहायक होती है। यह शैली कर्मचारियों को पुरस्कार की लालसा में उच्च श्रेणी के प्रदर्शन हेतु प्रेरित करती है और इस तरह के निर्धारित समय सीमा के भीतर लक्ष्यों की प्राप्ति कर पाते हैं।

6.3.5 व्यवहार शैली TRANSACTIONAL STYLE : प्रबंधन के अन्तर्गत इस शैली का प्रयोग करने वाले नेता पुरस्कार अथवा दण्ड पद्धति के माध्यम से अपने कर्मचारियों को प्रेरित करने का प्रयत्न करते हैं। इस शैली का सर्वप्रथम वर्णन 1947 में मैक्स वेबर द्वारा किया गया और 1981 में बर्नार्ड बास द्वारा पुनः इसका विश्लेषण किया गया। इस शैली के दो प्रमुख आधार हैं- प्रासंगिक पुरस्कार एवं अपवाद द्वारा प्रबंधन। **प्रासंगिक पुरस्कार:** कर्मचारियों के अच्छे प्रदर्शन हेतु उन्हें मनोवैज्ञानिक अथवा भौतिक पुरस्कार प्रदान करना।

अपवाद द्वारा प्रबंधन: यह अवधारणा नेता को यथास्थिति बनाये रखने के लिए प्रेरित करती है। जब कर्मचारियों का प्रदर्शन स्तर स्वीकार्य न हो तो उनके प्रदर्शन में आवश्यक सुधार हेतु नेता पहल करते हैं। यह अवधारणा इसलिए भी स्वीकार्य है कि यह प्रबंधक के कार्यभार को काफी हद तक कम करती है और केवल उन्हीं परिस्थितियों में उनको आगे आने को प्रेरित करती है जब कर्मचारी ठीक ढंग में उनको आगे आने को प्रेरित करती है जब कर्मचारी ठीक ढंग से मान्य स्तर का प्रदर्शन न कर रहे हों। इस शैली के माध्यम से नेता अपने कर्मचारियों की आवश्यकताओं को पहचान कर उन्हें एक निश्चित प्रदर्शन स्तर के बदले सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। इस शैली के माध्यम से नेता पूर्व निर्धारित क्रियाओं और विधियों की कुशलता को बढ़ाने हेतु ध्यान केन्द्रित करते हैं। वे संगठन के निर्धारित नियमों को परिवर्तित करने के बजाय उनके पालन पर ही जोर देते हैं। यह शैली एक युक्तिसंगत नेतृत्व को प्रस्तुत करती है जो संगठन के विकास के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। समूह नवाचार हेतु यह शैली बहुत आवश्यक है। इस शैली हेतु संगठनात्मक लक्ष्यों एवं कार्य सम्पादन हेतु लोगों की आवश्यकताओं के साथ अपेक्षाओं के समन्वय की आवश्यकता होती है।

6.3.6 रुपान्तर शैली Transformational Style

इस शैली को अपनाने वाला नेता अपने कर्मचारियों के प्रत्यक्षीकरण में बंधा नहीं होता है। उसका मुख्य उद्देश्य अपने कर्मचारियों की आवश्यकताओं को परिवर्तित अथवा रुपान्तरित एवं उनकी सोच को पुनः निर्देशित करना होता है। इस शैली को अपनाने वाला नेता अपने कर्मचारियों को कर्तव्य निष्ठ और उत्साही बनाकर प्रेरित करता है एवं चुनौतियाँ प्रदान करता है। उन्हें क्या प्राप्त करना है इसके लिए अपने कर्मचारियों को दूरदर्शी बनाता है साथ ही उनका साथ अपने विचार भी बाँटता है। शुल्ट्ज एवं शुल्ट्ज के अनुसार रुपान्तरण शैली को अपनाने वाले नेता में तीन प्रमुख विशेषताएँ होती हैं-

- स्व-विकास करने वाला व्यक्तित्व, उच्च शक्ति स्तर, जोखिम उठाने की इच्छा एवं कर्मचारियों को स्वतंत्र चिंतन हेतु प्रेरित करने के लिए अनियमित युक्तियों के प्रयोग का गुण नेता में होता है।
- व्यक्तिगत सहायता प्रदान करना।
- बौद्धिक उद्दीपनों को प्रस्तुत करना।

यह शैली प्रबंधन की ओर से उच्च स्तरीय सम्प्रेषण आधारित होती है। स्पष्ट दृष्टिकोण एवं कुशल सम्प्रेषण के माध्यम से नेता, कर्मचारियों को प्रेरित करता है एवं उनकी उत्पादकता व दक्षता को बढ़ाता है। इस शैली को अपनाने वाले संगठन में नेता का ध्यान संगठन के वृहद लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर होता है और कर्मचारीगण वृहद लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में संगठन के छोटे लक्ष्यों एवं समूह क्रियाओं के सम्पादन की ओर होता है। इस शैली को अपनाने वाले नेता अपने कर्मचारियों को ऐसा वातावरण प्रदान करते हैं जहाँ हर व्यक्ति अपनी उच्च आवश्यकताओं की प्राप्ति में सक्षम होता है और एक उत्पादक अधिगम समुदाय का सदस्य होता है। यह शैली नैतिक नेतृत्व, प्रेम से निर्देशित करना एवं आध्यात्मिक नेतृत्व का समन्वित रूप होता है। प्रेम आधारित, मानवीय दयालुता, सामाजिक न्याय एवं आदि तत्व क्रोध, अविश्वास और घृणा व ईर्ष्या को समाप्त कर नेतृत्व की शक्तियों को पुनः खोजते हैं और उसे समृद्ध बनाते हैं। दूसरे शब्दों में यह शैली मूल्य आधारित एवं मानवीय गुणों से युक्त होती है।

6.3.7 सहभागी शैली Participative Style - इस शैली में आधीनस्थों एवं कर्मचारियों से प्राप्त आगतों को भी महत्व दिया जाता है, परन्तु अन्तिम निर्णय सहभागी नेतृत्व के आधार पर ही लिया जाता है। यह शैली कर्मचारियों को उत्साहित और प्रेरणा शक्ति को जागृत करती है क्योंकि निर्णयन प्रक्रिया में उनका भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। कर्मचारियों को यह अनुभव होता है कि उनके अभिमतों को भी महत्व दिया जाता है। जब संगठन के भीतर कोई परेशानी नहीं होती क्यों कि वे भी इस परिवर्तन को लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जब कर्मचारियों द्वारा संगठन लक्ष्यों की प्राप्ति में असफलता प्राप्त होती है तब प्रबंधक द्वारा कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने अथवा उनका त्रुटियों को सुधारने के लिए अपनाये जाने वाले उपायों के सन्दर्भ में कर्मचारियों द्वारा कोई बाधा नहीं खड़ी की जाती। लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में यह शैली समूह के सदस्यों की वैचारिक भिन्नता को भी पूर्ण महत्व प्रदान करती है ताकि प्रत्येक क्रिया एवं अन्तिम उत्पाद की गुणवत्ता बनी रहे। प्र अधिकारियों के साथ-साथ अवरोधों के विचारों को भी निर्णयन प्रक्रिया में समाहित करना, आधीनस्थ से सलाह लेना, आधीनस्थों की त्रुटियों में सहलशीलता के साथ सुधार करना तथा आधीनस्थों द्वारा परिवर्तनों को स्वीकार करना आदि इस शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

6.3.8 सहयोगी शैली Cooperative Style -

यह शैली सहभागी शैली के समान ही संगठन के प्रत्येक कर्मचारी की संगठन सम्बन्धी निर्णयों में सम्मिलित करने का प्रयत्न करती है। सभी निर्णय सदस्यों के सहयोग, सुझाव के आधार पर या तो बहुमत आधारित या मतैक्य समझौतों के रूप में लिये जाते हैं। एक सहयोगी नेता सदैव प्रयत्न करता है कि कर्मचारियों में समूह कार्यों एवं विश्वास को बढ़ावा दे सके। सहयोगी शैली अपनाने वाला नेता नियंत्रण अथवा शक्तियों उसी सीमा तक अपनाता है जिस सीमा तक आवश्यकताओं की पूर्ति में वे बाधक नहीं बनती। यदि आवश्यकताएँ अधिक प्रभावकारी बनाती हैं तो वह शक्तियों द्वारा कर्मचारियों पर अपनी पकड़ ढीली भी कर देता है। ऐसा संगठन में लक्ष्यों की प्राप्ति एक सहयोगी प्रक्रिया मानी जाती है और यह समूह को भी सशक्त बनाती है। नेता इस विश्वास के साथ कर्मचारियों को स्वतंत्र वातावरण प्रदान करता है कि यदि उनके पास सभी संभाव्य सूचनाएँ हैं तो वे किसी विशेष परिस्थिति में एक सही निर्णय ले सकते हैं। साथ ही नेता इस बात का ध्यान रखता है कि कर्मचारियों को निर्णय लेने में कोई बाधा प्रवर अधिकारियों द्वारा न पहुँचायी जाय

बल्कि उन्हें आवश्यक सुविधाएँ भी प्रदान की जाया यह शैली लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में कर्मचारी और नेता को एक दूसरे के बेहद निकट ला देती है और समानता व सशक्तिकरण के दर्शन को संगठन के भीतर मूर्त रूप प्रदान करती है। जिसके माध्यम से यह प्रवर प्रशासकों एवं आधीनस्थों के मध्य सामान्यतया पाये जाने वाले अविश्वासों को कम कर देती है। इस शैली को अपनाने वाले नेता में जो प्रमुख गुण पाये जाते हैं, वे हैं-

- प्रेरणात्मक वचनबद्धता एवं क्रियाएँ,
- सहयोगियों की समस्याओं का समाधान ढूँढने वाला,
- वृहद स्तर पर समर्पण को बढ़ावा देना,
- आशाओं एवं सहभागिताओं को स्थिरता के साथ बनाये रखना।

इस प्रकार सहयोगी निर्णयन प्रजातांत्रिक होता है और वृहद विचार-विमर्श के पश्चात् मतैक्य के साथ बहुमत आधारित होता है। सामान्यतया निर्णयन प्रक्रिया में मतैक्य स्थापित करना अत्यन्त कठिन कार्य होता है, परन्तु इस शैली पर आधारित होने से निर्णयन प्रक्रिया सरल, मतैक्य आधारित और जनतांत्रिक हो जाती है।

6.4 क्रियाकलाप

1. नेतृत्व की शैली से आप क्या समझते हैं?
2. नेतृत्व की विभिन्न शैलियों के गुण तथा दोषों पर एक टिप्पणी लिखिये।
3. नेतृत्व की किस शैली को आप अपनी शैक्षिक संस्था के विकास के लिए उपयुक्त मानते हैं और क्यों?

6.5 संदर्भ एवं सहायक पुस्तक सूची

1. Terry, G.R. (1954). Principles of Management, Illinois, Richard, D. Trwin. Inc., Homewood.
2. Tannenbaum & Schmidt, W. 'How to choose a leadership Pattern, Harvard Bussiness Review.
3. Koontz, Harold & O' Donnel, Cyril. Essentials of Management, New York, Tata Mc. Graw Hill.
4. Rao, V.S.P. & Krishna, V. Hari (2002) Management : Text and cases, New Delhi, Excel Books.
5. Hughes, Richard L., Gennett, R.C. & Curphy, Gordon J. Leadership, Enhancing the lessons of Experience (Sixth edition) New York, Tata Mc Graw Hill.
6. Bhatnagar, R.P. (2010). Educational Administration. Meruth, International Publishing House.
7. Verma, J.P. (2008). Educational Management (4th edition). Jaipur Rajasthan Hindi Granth Academy

इकाई 7 नेतृत्व का मापन

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 नेतृत्व का मापन

7.4 नेतृत्व के मापन हेतु प्रयुक्त उपकरण

7.4.1 नेतृत्व कौशल अनुसूची

7.4.2 कम वरीयता प्राप्त कर्मचारी पैमाना

7.4.3 नेता-सदस्य विनिमय उपकरण

7.4.3 बहुकारक नेतृत्व प्रश्नावली

7.4.4 नेतृत्व व्यवहार वर्णन प्रश्नावली

7.4.5 नेतृत्व अभिमत प्रश्नावली

7.4.6 पर्यवेक्षकीय व्यवहार वर्णन प्रश्नावली

7.4.7 नेतृत्व प्रभावशीलता तथा अनुकूलता वर्णन प्रश्नावली

7.4.8 नेतृत्व क्रियाएँ अनुसूची

7.5 निबंधात्मक प्रश्न

7.6 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना

शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में उच्च अधिकारियों अथवा नेता द्वारा आधिनस्थ अथवा सहकर्मियों के हृदय को जीतने वाला, उनका सहयोग व परामर्श, पुरस्कार-दण्ड देने, अनुशासन बनाये रखने वाला व्यावहारिक व्यक्तिक अथवा अर्जित गुण, परिस्थितियों पर आधारित होता है, शैक्षिक नेतृत्व कहा जाता है। सामाजिक परिवर्तन के अनुकूल शिक्षा के विकास, सामूहिक कार्यक्रम में समन्वय, शिक्षा में नियोजन एवं संलग्नता की सफलता हेतु शैक्षिक नेतृत्व अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर उन्नति, विकास, विद्यालय की प्रगति हेतु एक कुशल नेता की आवश्यकता होती है। एक शैक्षिक नेता सामाजिकता, सामाजिक जागरूकता बनाये रखने, सामाजिक विशेषताओं के अनुकूल विद्यालय की व्यवस्था करने, उच्च शैक्षिक प्रबन्धन हेतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षा के क्षेत्र में विद्यालय प्रबन्धन में प्रबन्धक अथवा प्रधानाचार्य एवं कक्षा स्तर पर अध्यापक नेता की भूमिका निभाता है।

किसी भी शैक्षिक संस्था में नेतृत्व संस्थागत लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कार्य परिवेश को इस प्रकार निश्चित करता है कि प्रधानाचार्य, शिक्षक, गैर-शिक्षण कर्मचारी एवं छात्र सभी शैक्षिक संस्था के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु तत्पर हो कर कार्य करते हैं। चूँकि एक शैक्षिक संस्था के उत्थान से समाज का उत्थान जुड़ा होता है अतः शैक्षिक नेता का उत्तरदायित्व बहुत अधिक जटिल एवं महत्वपूर्ण होता है। शैक्षिक संस्था के प्रबन्ध में शैक्षिक नेतृत्व निहित है तथा शैक्षिक नेतृत्व में संस्थागत लक्ष्य को प्राप्त करने के दक्ष एवं प्रभावशाली तरीके निहित होते हैं।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- नेतृत्व मापन की आवश्यकता एवं महत्व को जान सकेंगे
- नेतृत्व मापन के कार्यों को समझ सकेंगे
- नेतृत्व मापन से परिचित हो सकेंगे।
- नेतृत्व मापन में प्रयुक्त विभिन्न उपकरण के बारे में जान सकेंगे।
- नेतृत्व मापन में विभिन्न उपकरणों के महत्व को जान सकेंगे।

7.3 नेतृत्व का मापन

किसी शैक्षिक संस्थान की सफलता, उसके छात्रों की शैक्षिक तथा अन्य क्षेत्रों में उपलब्धि एवं कर्मचारिय/शिक्षक का व्यावसायिक विकास, उनकी कार्यसंतुष्टि, कार्य समर्पण, निष्ठा आदि संस्थागत नेतृत्व पर आधारित होता है। इसके अतिरिक्त उपयुक्त शिक्षण अधिगम वातावरण का निर्माण भी कुशल नेतृत्व पर निर्भर करता है। अतः एक संस्था के सफल प्रदर्शन के लिए कुशल व प्रतिभाशाली नेतृत्व आवश्यक होता है तथा नेतृत्व को बेहतर बनाने के लिये नेतृत्व मापन की आवश्यकता होती है जो संस्था में उच्च अधिकारियों शिक्षको/कर्मचारियों तथा स्वयं द्वारा किया जाता है।

नेतृत्व मापन द्वारा ही शैक्षिक नेता का व्यक्तिगत विकास संभव हो पाता है क्योंकि मापन द्वारा उनके कार्य-व्यवहार के कमजोर पक्ष की पहचान कर उपयुक्त प्रशिक्षण एवं विकास कार्यक्रम द्वारा व्यावसायिक विकास के अवसर दिये जा सकते हैं। प्रोन्नति संबंधी निर्णय लेने में तथा संस्था में उपयुक्त कार्यसंस्कृति के वातावरण को विकसित करने के लिए भी नेतृत्व मापन की मदद ली जाती है। संस्था में नवाचार लागू करने में उपलब्ध संसाधन के छात्र हित हेतु अधिकतम उपयोग हेतु, छात्र एवं अभिभावक/समाज की आकांक्षाओं व अपेक्षाओं को संतुष्ट करने के लिए भी नेतृत्व मापन आवश्यक होता है।

नेतृत्व गुणों, शैलियों, व्यवहारों आदि सभी के अध्ययन के पश्चात् नेतृत्व के मापन का अध्ययन भी आवश्यक है। गुणों, शैलियों, व्यवहारों की पहचान भी मापन द्वारा ही होती है। नेतृत्व के मापन के माध्यम से नेतृत्व के गुण दोषों आदि का ज्ञान प्राप्त होता है, विभिन्न शैलियों की विशेषताएँ ज्ञात होती हैं और साथ ही संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किस प्रकार के नेतृत्व की आवश्यकता होती है इसका उत्तर भी प्राप्त हो जाता है। नेतृत्व मापन या मूल्यांकन द्वारा ही नेतृत्व प्रशिक्षण का कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है क्योंकि इसके द्वारा ही उन प्रभावी शैलियों तथा व्यवहारों का ज्ञान प्राप्त होता है जो किसी नेता को परिस्थिति विशेष में प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान करने लायक बनाती है।

नेतृत्व मापन के कार्य-

नेतृत्व मापन के मुख्य रूप से तीन कार्य होते हैं-

1. कर्मचारियों /अधीनस्थ का प्रबंधन जिससे उनके समय, समस्या एवं कोशल का बेहतर उपयोग संस्थागत उद्देश्य की प्राप्ति हेतु किया जा सके।
2. अधीनस्थ का व्यावसायिक विकास करना।
3. संस्था का विकास करना।

नेतृत्व मापन का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना कि नेतृत्व का प्रारंभिक काल से ही अपेक्षाकृत सरल विधियों जैसे कि-उच्च अधिकारियों द्वारा प्रेक्षण, व्यवहार जाँचसूची, मूल्यांकन आदि के द्वारा नेतृत्व के कार्य ,कर्तव्य तथा प्रोन्नति का निश्चित किया जाता था। परंतु उक्त विधियाँ नेतृत्व मापन के क्षेत्र में विश्वसनीय एवं वैध नहीं थीं। अतः अधिक विश्वसनीय, वैध तथा व्यापक मापन विधियों की आवश्यकता महसूस की गई जो अधिक विस्तृत रूप में नेतृत्व को मापन करें। नेता के गुण, व्यवहार, परिस्थिति, छात्र-उपलब्धि, नेतृत्व कार्यविधियाँ आदि कुछ बिंदु हैं जिनके आधार पर नेतृत्व का मापन किया जाता है।

नेतृत्व मापन हेतु सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न उभरता है कि आखिरकार नेतृत्व के किन पक्षों का मापन किया जाये और किन पक्ष का नहीं? सामान्यतः मापन उपकरण नेतृत्व व्यवहार तथा कार्य के मापित करने के बदले नेतृत्व गुण के मापने पर आधारित होते हैं। विशेष रूप से शैक्षिक संस्थाओं में छात्र-अधिगम, अभिभावक तथा छात्र संतुष्टि, विद्यालय-समुदाय संबंध आदि कुछ ऐसे बिंदु हैं जिन पर नेतृत्व मापन को केन्द्रीकृत होना चाहिए।

शैक्षिक संस्थानों में शैक्षिक नेता (प्रशासक) से की जानेवाली कार्य अपेक्षाओं एवं उसके द्वारा किये गये कार्यों के मापन हेतु प्रयास सदियों से जारी है। शैक्षिक नेतृत्व की विभिन्न परिभाषाओं तथा सिद्धान्त के आधार पर नेतृत्व को 1930 से 1950 तक मुख्यतया उपहार माना गया जिसके लिए कुछ आवश्यक गुण महत्वपूर्ण होते हैं।

अतः मुख्यतया नेतृत्व मापन की शुरुआत गुण सिद्धान्त से मानी जाती है। अन्य नेतृत्व सिद्धान्त जैसे- व्यवहारात्मक सिद्धान्त, परिस्थितियात्मक अथवा स्थितिपरक सिद्धान्त तथा कुछ नवीन सिद्धान्त जैसे कि रूपान्तरकारी नेतृत्व सिद्धान्त (Transformational Leadership Theory), मूल्य आधारित नेतृत्व (Value Based) सिद्धान्त के द्वारा भी नेतृत्व को स्पष्ट करने की कोशिश की गई है। किन्तु अब तक नेतृत्व का कोई एक सर्वसम्मान सिद्धान्त नहीं होने से नेतृत्व मापन की भी कोई एक सर्वमान्य विधि विकसित नहीं हो पायी है। नेतृत्व मापन के उपकरण तथा विधियाँ संबंधित नेतृत्व सिद्धान्त पर आधारित होते हैं। विभिन्न सिद्धान्त के अंतर्गत नेतृत्व के विभिन्न पक्ष का अध्ययन किया जाता है। नेतृत्व के क्षेत्र में कई सिद्धान्त प्रचलित हैं जैसे-

1. गुण सिद्धान्त
2. व्यवहारात्मक सिद्धान्त
3. परिस्थितियात्मक या स्थितिपरक सिद्धान्त
4. सामाजिक विनिमय सिद्धान्त
5. रूपान्तरण सिद्धान्त
6. मूल्य आधारित सिद्धान्त, आदि।

नेतृत्व सिद्धान्त के तहत किसी संस्था में नेतृत्व का मापन इस तथ्य पर निर्भर करता है कि नेतृत्व संबंधी दिन पक्षों का मापन किया जाता है। नेतृत्व सामान्यतया पर्यवेक्षको व प्रशासको के नेतृत्व व्यवहार/गुण/कोशल/क्रिया पर आधारित होता है

नेतृत्व के विभिन्न सिद्धान्त के लिए प्रश्नावली, चुनाव, नामांकन, कोटिक्रम (Ranking), नेतृत्व व्यवहार मापन/प्रेक्षण, पूर्व नेतृत्व व्यवहार मापने आदि विधियों का प्रयोग शिक्षा जगत में किया जाता रहा है। उपर्युक्त विधियों द्वारा नेतृत्व का मापन विभिन्न सिद्धान्तों के अंतर्गत निम्न पक्ष/बिन्दुओं पर किया जाता है-

- नेता एवं अधिनस्थ के गुण
- नेता एवं /अधिनस्थ का व्यवहार
- परिस्थितियाँ
- नेता एवं अधिनस्थ की अन्तर्क्रिया
- करिश्मा तथा अन्य पक्ष

नेतृत्व मापन के उपलब्ध उपकरण नेतृत्व क्षेत्र में कार्य की शुरुआत करने वाले प्रारंभिक नेताओं /प्रशासको के नेतृत्व का मापन करने के साथ ही शिक्षा क्षेत्र में स्थापित नेताओं के नेतृत्व के मापन कार्य भी करते हैं।

नेतृत्व के मापन हेतु रेटिंग स्केल, प्रश्नावली, अनुसूची आदि कई उपकरणों को प्रयोग में लाया जाता है। नेतृत्व मापन हेतु प्रयुक्त कुछ उपकरण निम्न हैं:

7.4.1 नेतृत्व कौशल अनुसूची

नेतृत्व कौशल अनुसूची का निर्माण Karnes and Chauvin ने 1985 में किया था। नेतृत्व कौशल अनुसूची का प्रयोग छात्रों के नेतृत्व कौशल एवं क्षमताओं को मापने हेतु किया जाता है जिससे विद्यालय एवं समाज छात्र की नेतृत्व प्रतिभा के बारे में जान कर भविष्य में उन्हें कुशल नेतृत्व के अवसर तथा प्रशिक्षण प्रदान कर उनके विकास में योगदान दे सके। इस अनुसूची में 125 नेतृत्व संबंधी कथनों का लिफ्ट मापनी पर मापन छात्र तथा अध्यापकों द्वारा किया जाता है। उक्त 125 कथन नेतृत्व के नौ पक्ष - नेतृत्व के आधार, लिखित सम्प्रेषण, वाक क्षमता, मूल्य स्पष्टता, निर्णयन कौशल, समूह गतिकी कौशल, समस्या समाधान कौशल, व्यक्तिगत विकास कौशल, नियोजन कौशल से संबंधित होते हैं। इस अनुसूची के द्वारा नेतृत्व मापन से नेतृत्व प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता जाँचने में तथा नेतृत्व में छात्र निर्धारण में सहायता मिलती है।

7.4.2 कम वरीयता प्राप्त कर्मचारी पैमाना Least Preferred Coworker Scale

इस पैमाना के द्वारा नेतृत्व का कार्य-आधारित तथा संबंध-शैलियों का विश्लेषण कर नेतृत्व का मापन किया जाता है। प्रासंगिकता सिद्धान्त पर आधारित यह 8 पद द्विध्रुवीय विश्लेषण पैमाना जाँच करता है कि नेतृत्व/प्रशासक किस संस्थागत कर्मचारी के साथ कार्य करने में कठिनाई का अनुभव करता है। इस स्केल पर उच्च अंक दर्शाते हैं कि नेता व्यक्तिगत संबंध को वरीयता देते हैं, जबकि कम अंक उत्पादन व कार्य कर बल देते हैं।

7.4.3 नेता-सदस्य विनिमय उपकरण Leader Member Exchange Instrument

नेता-सदस्य विनिमय उपकरण किसी संस्था के मध्य एवं निम्न प्रबंध स्तर पर नेता एवं आधीनस्थ तथा स्वयं अधिनस्थ के मध्य सामाजिक संबंध का विश्लेषण करने के लिए उपयोग में लाया जाता है कि वे दोनों पक्ष एक-दूसरे की अपेक्षाओं को किस स्तर तक सन्तुष्ट करते हैं। यह उपकरण सामाजिक विनिमय सिद्धान्त पर आधारित है जिसमें सात पदों पर नेता एवं आधीनस्थ/सदस्य के संबंध की जाँच आधीनस्थ द्वारा दिये गये जवाबों से होती है। वस्तुतः यह उपकरण उच्च प्रबंध स्तर पर कार्य नहीं करता है। यह उपकरण उच्च तनाव युक्त संस्था वातावरण के लिए भी उपयुक्त नहीं होता है क्योंकि नियम कठोरता एवं तनाव युक्त संस्था में नेता आधीनस्थ सामाजिक संबंध को प्रभावित करते हैं। यह पदानुक्रम (Hierarchical) संस्थागत संरचना के लिए उपयुक्त है न कि समतल (Flat) संस्थागत संरचना के लिए।

7.4.3 बहुकारक नेतृत्व प्रश्नावली

बहुकारक नेतृत्व प्रश्नावली का निर्माण Bass and Avolio ने 1985 में किया था। नवीन करिश्माई/नवीन नेतृत्व सिद्धान्त जैसे-मूल्य आधारित नेतृत्व सिद्धान्त, रूपान्तरण नेतृत्व सिद्धान्त आदि पर आधारित है। पाँच-पद लिफ्ट पैमाने पर आधारित यह उपकरण नेतृत्व के गुणों तथा इन गुणों के आधीनस्थन पर को अधिनस्थ द्वारा प्राप्त उत्तरों से जाँचना है। यह उपकरण विभिन्न नेतृत्व शैलियों जैसे रूपान्तरण (transformational), अहस्तक्षेपी (laissez faire) आदि का किसी नेता के कार्य प्रदर्शन में अध्ययन करता है। शैक्षिक तथा अन्य

संस्थाओं जहाँ नेतृत्व अधीनस्थ के कार्य-व्यवहार तथा प्रदर्शन को प्रभावित करता है इस उपकरण को प्रयोग में लाया जा सकता है किंतु नौकरशाही वातावरण (**beaurocratic environment**) वाली संस्थाओं जहाँ नियम व संरचना प्रमुख होते हैं तथा नेतृत्व का अधीनस्थ पर कम प्रभाव पड़ता है, इस उपकरण का प्रयोग उचित नहीं होता है।

7.4.5 नेतृत्व व्यवहार वर्णन प्रश्नावली (द लीडर बिहेवियर डिस्क्रिप्शन क्वेश्चनर **LBDQ**): **LBDQ** स्टेट यूनिवर्सिटी में हेम्फिल एवं कून्स द्वारा निर्मित किया गया। यह उपकरण समूह के सदस्यों द्वारा नेतृत्व व्यवहार के दो आयाम इनिशियेटिंग स्ट्रक्चर (IS) एवं कन्सीडरेशन (C) पर नेता के व्यवहार को परिभाषित करता है। इसमें प्रत्येक आयाम के 15 कथनों को पंच बिन्दू पैमाने- I Always, After, Occasionally, Seldom, Never पर मापित किया जाता है। यहाँ कन्सीडरेशन के तहत नेता एवं अधीनस्थों के मध्य सम्मान, विश्वास, दोस्ती एवं गर्मजोशी पूर्ण संबंधों को स्थान मिलता है। जहाँ नेता ओपचारिक एवं समाजवादी नहीं होता है एवं वह अधीनस्थों से सहानभूति रखता है। इनिशियेटिंग स्ट्रक्चर के तहत नियम आधारित संस्थागत संरचना, सम्प्रेषण एवं कार्य करने के तरीकों से नेतृत्व अपने अधीनस्थों से कार्य पूर्ण करवाता है। शोध में ज्ञात हुआ है कि इन दोनों में से किसी एक आयाम पर उच्च अंक प्राप्त करने वाले नेता को अधीनस्थों तथा उच्च अधिकारियों द्वारा पूर्ण नहीं माना जाता है। किसी नेता के व्यवहार में इन दोनों आयामों का मेल महत्वपूर्ण होता है।

इस उपकरण के द्वारा निम्नलिखित चार प्रबन्धकीय शैलियों का ज्ञान होत है-

1. हाई इनिशियेटिंग स्ट्रक्चर, हाई कन्सीडरेशन HIS, HC
2. लो इनिशियेटिंग स्ट्रक्चर, हाई कन्सीडरेशन LIS, HC
3. लो इनिशियेटिंग स्ट्रक्चर, लो कन्सीडरेशन LIS, LC
4. हाई इनिशियेटिंग स्ट्रक्चर, लो कन्सीडरेशन HIS, LC

7.4.5 नेतृत्व अभिमत प्रश्नावली (द लीडर ओपिनियन क्वेश्चनर **LOQ**): इस उपकरण में दो मुख्य तत्वों स्ट्रक्चर एवं कन्सीडरेशन पर नेता के गुणों का मापन 40 कथनों में पंच बिन्दू पैमाने पर किया जाता है। इस उपकरण का विकास साइन्स रिसर्च एसोसिएट्स, शिकागो द्वारा 1960 में किया गया। इसमें अंकों का विस्तार शून्य से चार तक होता है।

7.4.6 पर्यवेक्षकीय व्यवहार वर्णन प्रश्नावली (सुपरवाइज़री बिहेवियर डिस्क्रिप्शन **SBD**): यह उपकरण उच्च अधिकारियों के व्यावहारों का निम्न आधिनस्थों द्वारा प्रेक्षण का मापन करता है। इसको इ0ए0 फ्लैशमैन द्वारा A leader behaviour description for industry के नाम से स्टौगडिल (एडीटेड) की 'Leader Behaviour : Its description & measurement में प्रकाशित किया गया। यह 48 कथनों की प्रश्नावली है जो इनिशियेटिंग स्ट्रक्चर एवं कन्सीडरेशन दो आयामों पर नेतृत्व का मापन करती है। उक्त 48 कथनों का पंच बिन्दू पैमाने पर (0 से 4) मापन किया जाता है।

7.4.7 नेतृत्व प्रभावशीलता तथा अनुकूलता वर्णन प्रश्नावली (लीडर इफेक्टिवनेस एण्ड एडप्टेबिलिटी डिस्क्रिप्शन LEAD): इस उपकरण का विकास हरसे तथा ब्लेडचार्ड द्वारा 1978 में किया गया। यह नेतृत्व व्यावहार के तीन पक्षों नेतृत्व शैली, नेतृत्व शैली का विस्तार एवं शैली अनुकूलनशीलता का मापन करता है। यह उपकरण स्थितिजन्य नेतृत्व सिद्धान्त पर आधारित है। यह आधिनस्थ कर्मचारियों पर यह जानने के लिए प्रशासित किया जाता है कि वे प्रबन्धक की नेतृत्व शैली का प्रेक्षण किस प्रकार करते हैं। इसमें 12 कथन होते हैं। प्रत्येक परिस्थिति के लिए चार विकल्प होते हैं जिनमें से एक प्रबन्धक को चुनना होता है।

7.4.8 नेतृत्व क्रियाएँ अनुसूची -

नेतृत्व अनुसूची का निर्माण Pisner & Kouzes ने 1993 में किया था। इस अनुसूची में पंचपदीय लिंकर्ट पैमाने पर 30 पदों द्वारा पाँच नेतृत्व क्रियाओं का मापन किया जाता है। इन पंच नेतृत्व क्रियाओं में प्रक्रिया को चुनोती देना, सम्मिलित दृष्टिकोण को प्रेरित करना, ओरों को कार्य करने के लिए तैयार करना/क्षमताएँ विकसित करना, प्रतिदर्शन देना, प्रोत्साहन देना सम्मिलित है।

LP3I-Self नेता स्वयं LPI-Observer अधिनस्थों की प्रतिक्रिया को मापित करता है। इस अनुसूची का उद्देश्य संस्था में वास्तविक नेतृत्व व्यवहार का मापन होता है। साथ ही तथा रूपान्तरण नेतृत्व शैलियों में अन्तर ज्ञान करने का कार्य भी यह अनुसूची करती है।

7.5 निबंधात्मक प्रश्न

1. नेतृत्व मापन हेतु कौन-कौन से उपकरण प्रयोग में लाये जाते हैं?
2. LBDQ एवं SBD से आप का समझते हैं?
3. नेतृत्व मापन क्यों आवश्यक है?
4. नेतृत्व मापन के कौन कौन से कार्य हैं?

7.6 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

1. Terry, G.R. (1954). Principles of Management, Illinois, Richard, D. Trwin. Inc., Homewood.
2. Tannenbaum & Schmidt, W. 'How to choose a leadership Pattern, Harvard Business Review.
3. Koontz, Harold & O' Donnell, Cyril. Essentials of Management, New York, Tata Mc. Graw Hill.
4. Rao, V.S.P. & Krishna, V. Hari (2002) Management : Text and cases, New Delhi, Excel Books.

5. Hughes, Richard L., Gennett, R.C. & Curphy, Gordon J. Leadership, Enhancing the lessons of Experience (Sixth edition) New York, Tata Mc Graw Hill.
6. Bhatnagar, R.P. (2010). Educational Administration. Meruth, International Publishing House.
7. Verma, J.P. (2008). Educational Management (4th edition). Jaipur Rajasthan Hindi Granth Academy.

इकाई 8 शैक्षिक नियोजन

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 उद्देश्य
- 8.3 शैक्षिक नियोजन: अर्थ एवं परिभाषा
- 8.4 शैक्षिक नियोजन के उपागम
- 8.5 परिप्रेक्ष्य नियोजन
- 8.6 संस्थागत नियोजन
- 8.7 क्रियाकलाप
- 8.8 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना

वर्तमान गत्यात्मक अर्थव्यवस्थाओं के परिवेश में नियोजन की आवश्यकता किसी भी संस्था के संगठन, संचालन, नियंत्रण एवं विकास हेतु महत्वपूर्ण स्थान रखती है। शाब्दिक अर्थ में नियोजन से तात्पर्य है, किसी भी कार्य को कैसे करना है, क्या करना है, कब करना है एवं किसके द्वारा किया जाना है, इसकी रूपरेखा पहले से ही तैयार कर लेना। चूंकि वर्तमान परिवेश में अर्थव्यवस्थाओं में बहुत ही शीघ्रता से परिवर्तन होते रहते हैं, इसलिए इन परिवर्तनों के अनुरूप संस्थाओं के कुशल संगठन, संचालन एवं नियंत्रण हेतु नियोजन अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। नियोजन भविष्य में किये जाने वाले कार्यों के लिए पहले से तैयार की जाने वाली रूपरेखा है, ताकि अधिकतम संभावित साधनों के द्वारा कुछ विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके। अतः हम कह सकते हैं कि नियोजन भावी कार्यों की बुद्धिमत्तापूर्ण तैयारी है। एक कुशल प्रबंधक की कुशलता इस बात पर निर्भर करती है, कि वह भविष्य में होने वाले परिवर्तनों एवं आने वाली समस्याओं का पूर्वाभास करके उनसे निपटने हेतु आवश्यक क्रियाओं की योजना पहले से ही बना ले। प्रबंधन के क्षेत्र में नियोजन प्रथम महत्वपूर्ण कदम माना जाता है। संगठन चाहे छोटा हो अथवा बड़ा उसमें नियोजन की आवश्यकता होती है। बिना इसके संगठन के किसी भी कार्य को सुचारू ढंग से संचालित नहीं किया जा सकता और न ही कर्मचारियों की क्रियाविधि को नियंत्रित किया जा सकता है। इस प्रकार नियोजन प्रबंधन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है, जिसमें प्रबंधन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निश्चित कार्य प्रणाली पूर्व में ही तैयार कर ली जाती है, ताकि लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त किया जा सके।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- शैक्षिक नियोजन की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
- शैक्षिक नियोजन के अर्थ से परिचित हो सकेंगे।
- शैक्षिक नियोजन के विभिन्न उपागमों के बारे में जान सकेंगे।
- परिप्रेक्ष्य नियोजन के अर्थ एवं प्रकारों को बता सकेंगे।
- संस्थागत नियोजन की प्रक्रिया एवं महत्व के बारे में जान सकेंगे।

8.3 शैक्षिक नियोजन: अर्थ एवं परिभाषा

वर्तमान वैश्विक युग में जहाँ शिक्षा को भी एक सेवा प्रविधि (Service process) माना जा रहा है नियोजन एक महत्वपूर्ण केंद्रबिंदू बन गया है। विशेषतः विश्व की सबसे बड़ी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में शैक्षिक नियोजन आवश्यक है क्योंकि शैक्षिक प्रबंधन प्रक्रिया का यह प्रारंभिक चरण है।

शिक्षा में नियोजन अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, क्योंकि यह शिक्षा में परिणामस्वरूप एवं गुणात्मक सुधार के कार्यक्रमों को आधार प्रदान करती है। शैक्षिक नियोजन को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए नियोजन का अर्थ एवं महत्व जान लेना अत्यन्त आवश्यक है, जो कि अग्रलिखित है-

शैक्षिक नियोजन (Educational Planning): शैक्षिक नियोजन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें शिक्षा के क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों का अधिक से अधिक लाभ उठाने हेतु किस प्रकार उपयोग किया जाय, का विवरण निहित होता है। शैक्षिक नियोजन ऐसे प्रयासों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है, जिनके माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र में प्राथमिक से लेकर उच्च स्तर तक, तकनीकी से वैज्ञानिक स्तर तक, बालक से वृद्ध तक सभी के लिए शिक्षा की व्यवस्था करने एवं शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति करना संभव हो पाता है।

शैक्षिक नियोजन वर्तमान समय में भविष्य में प्राप्त किये जाने वाले शैक्षिक लक्ष्यों की तैयारी है। इसके माध्यम से शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं का ज्ञान प्राप्त कर उनके समाधान हेतु आवश्यक तैयारियाँ की जाती हैं। शिक्षा परिवर्तन का एक प्रमुख साधन है अतः इसके नियोजन के माध्यम से उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम सम्भाव्य उपयोग करके विकास की गति को बढ़ावा दिया जा सकता है, सामाजिक बुराइयों में कमी लाकर समाज के पुनर्निर्माण एवं सांस्कृतिक विकास के उच्च स्तर पर पहुँचाकर सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। भारत में शैक्षिक नियोजन का प्रारंभ 1854 के कुछ घोषणापत्र से माना जाता है। 1938 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा नियुक्त राष्ट्रीय नियोजन समिति (National Planning Committee) द्वारा भी नियोजन की अवधारणा दी गई।

केन्द्रीय शिक्षा सलाहाकार परिषद (Central Advisory Board of Education) का नाम भी नियोजन के क्षेत्र में उल्लेखनीय है। 1950 से नियोजन आयोग (Planing Committee) अनेक पंचवर्षीय योजनाओं तथा वार्षिक योजनाओं के माध्यम से शैक्षिक नियोजन के कार्य को पूर्ण कर रहा है।

शैक्षिक नियोजन की विशेषताएँ : शैक्षिक नियोजन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

शैक्षिक नियोजन वर्तमान में भविष्य की तैयारी है।

इसके माध्यम से शैक्षिक समस्याओं, उनके कारणों एवं समाधानों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

1. शैक्षिक नियोजन एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है, जिसमें पूर्व और पश्च योजनाएँ एक-दूसरे से जुड़ी रहती हैं।
2. शैक्षिक नियोजन शैक्षिक समस्याओं के समाधान के साथ-साथ सांस्कृतिक उत्थान एवं समाज के पुनर्निर्माण में भी सहायक होता है।
3. शैक्षिक नियोजन परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार की शैक्षिक उपलब्धि में सहायक होता है।
4. इसमें तात्कालिक एवं दीर्घकालिक दोनों प्रकार की योजनाओं का समावेश होता है, ताकि निम्न गम्भीरता वाली समस्याओं के समाधान के साथ-साथ अधिक गम्भीर समस्याओं का भी समाधान किया जा सके।
5. शैक्षिक नियोजन परिवर्तन के प्रबंधक के रूप में भी कार्य करता है।

नियोजन: अर्थ, परिभाषाएँ:

वेबस्टर (webster) के अंतर्राष्ट्रीय शब्द कोश ने नियोजन को योजनाओं को बनाने, क्रियान्वयन के कार्य अथवा प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है। नियोजन संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनायी जाने वाली क्रियाओं की भविष्यवाणी है। यह पूर्वनिर्धारित क्रियाविधि है। यह भविष्य की क्रियाओं का वर्तमान में प्रक्षेपण है। दूसरे शब्दों में नियोजन भविष्य में की जाने वाली क्रियाओं की एक रूपरेखा प्रस्तुत करता है, ताकि एक निश्चित समय में निश्चित लागत पर, निश्चित परिणाम की प्राप्ति की जा सके।

विशेषज्ञों एवं विद्वानों द्वारा नियोजन को निम्नलिखित दो रूपों में परिभाषित किया जा सकता है-

भविष्य आधारित (Based on Futurity)- “नियोजन भविष्य को बाँधने वाला एक जाल है।” -एलेन

“नियोजन, भविष्य में क्या किया जाना है, इसकी पूर्वधारणा है।” -कून्ट्ज

“नियोजन पूर्वनिर्धारित विनिश्चयीकरण है।” -आर0ल0 एकाफ

“नियोजन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा भविष्य में किये जाने वाले कार्यों के लिए निर्णयों के समुच्चय को तैयार किया जाता है जो साधनों के द्वारा लक्ष्य प्राप्त की ओर निर्देशित होते हैं।” ड्रार

"The Planning is the process of preparing a set of decisions for action in the future directed at acting goals by optional means." Dror

चिंतन प्रकार्य (As a thinking function):

“नियोजन बुद्धिमत्ता पूर्ण क्रियाओं हेतु एक चिंतन प्रक्रिया, एक संगठित भविष्यवाणी एवं सत्य एवं अनुभवों पर आधारित दूरदर्शिता है।”-(अलफ्रेड एवं बेट्टी)

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि भविष्य में क्या किया जाना है, इसे वर्तमान में निश्चित करना ही नियोजन है। यह करने से पहले सोचने की प्रक्रिया है। यह एक निश्चित, लिखित अवधारणा है, जिसमें एक उद्देश्य एवं एक क्रिया कथन समाहित होता है। उद्देश्य साध्य हैं एवं क्रिया कथन उस साध्य की प्राप्ति हेतु साधन हैं। दूसरे शब्दों में, उद्देश्य प्रबंधन को लक्ष्य प्रदान करते हैं और क्रिया कथन उस लक्ष्य को साधने हेतु बाण। इस प्रकार सुनिश्चित ढंग से निर्मित योजना कब, क्या, कहाँ, कैसे करना है, इसका वर्णन करती है।

नियोजन प्रक्रिया के चरण (Steps in the Planning Process): नियोजन वृहद रूप से प्रबंधकीय क्रिया है। इसके लिये नियोजनकर्ता को बहुत सारा समय देना एवं प्रयास करना पड़ता है। उन्हें ऐसी युक्तियों को अपनाने की आवश्यकता होती है, जो त्रुटियों एवं महंगी गलतियों को न के बराबर कर सकें अन्यथा ये सम्पूर्ण उद्यम को हानि पहुँचा सकती हैं। इस प्रकार की युक्तियों में निम्नलिखित चरण सम्मिलित होते हैं-

(1) उद्देश्य निर्धारण: नियोजन प्रक्रिया का प्रथम चरण है-संगठन के लक्ष्य की पहचान करना। उद्देश्य निर्धारण से पूर्व संगठन को प्रभावित करने वाली आन्तरिक एवं बाह्य गतिविधियों एवं परिस्थितियों का सूक्ष्मता से परीक्षण करना आवश्यक होता है। उद्देश्य स्पष्ट रूप से ये निर्देशित करने वाले होने चाहिए कि क्या प्राप्त करना है, किन क्रियाओं के माध्यम से प्राप्त करना है, किसके द्वारा प्रदर्शन करना है, कैसे और कब उनकी प्राप्ति सम्भव है? दूसरे शब्दों में, प्रबंधक द्वारा संगठन में किये जाने वाले प्रयासों के सम्बन्ध में स्पष्ट दिशा निर्देश दिया जाना चाहिए ताकि सभी क्रियाएँ सही दिशा में सम्पन्न हो सकें।

(2) रूपरेखा निर्धारण: उद्देश्य निर्धारण के बाद नियोजन की रूपरेखा का निर्धारण आवश्यक होता है। रूपरेखा वातावरण के सन्दर्भ में पूर्वमान्यताएँ होती हैं जिनमें योजनाएँ निर्मित एवं क्रियान्वित की जाती हैं। इसके साथ ही उपलब्ध आवश्यक संसाधनों की जानकारी, उनकी उपयोगिता की जाँच एवं उनकी कार्य प्रणाली का विश्लेषण एवं मूल्यांकन भी आवश्यक होता है।

(3) विकल्पों का चयन एवं मूल्यांकन: उद्देश्य निर्धारण एवं नियोजन की रूपरेखा निर्धारण के पश्चात् वैकल्पिक क्रियाओं की पहचान की आवश्यकता होती है। नियोजन में चयन एक महत्वपूर्ण अवस्था होती है जिसमें उद्देश्य प्राप्ति हेतु की जाने वाले क्रियाओं हेतु उपलब्ध संभावित विकल्पों की जाँच कर उपयोगी विकल्पों का चयन किया जाता है। जिनके संचालन के उपरान्त अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति संभव हो सकती है।

(4) चयनित विकल्पों का क्रियान्वयन : विभिन्न उपलब्ध विकल्पों के मूल्यांकन एवं उपयोगी विकल्प के चयन के पश्चात् उनके क्रियान्वयन की अवस्था आती है। उपयोगी विकल्पों में से भी कुछ का क्रियान्वयन योजना की प्रारम्भिक अवस्था में किया जाता है और कुछ को भविष्य हेतु सुरक्षित रख लिया जाता है ताकि आवश्यकता पड़ने पर उनका क्रियान्वयन किया जा सके। यही चयनित विकल्प उद्देश्य प्राप्ति में सहायक होते हैं और योजना की दिशा निर्धारित करते हैं।

(5) सहयोगी योजनाओं का निर्माण : नियोजन प्रक्रिया में मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कुछ सहायक उद्देश्यों की भी प्राप्ति आवश्यक होती है, बिना इनके मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति संभव नहीं हो पाती। अतः योजना

निर्माण के समय कुछ छोटी-छोटी सहायक योजनाओं का भी निर्माण किया जाता है। उदाहरण स्वरूप किसी उद्यम में एक आधारभूत उत्पादन योजना के संचालन में बहुत सी अन्य चीजों जैसे मशीनों और प्लान्ट की उपस्थिति, कर्मचारियों का प्रशिक्षण, वित्त सम्बन्धी प्रावधान आदि की आवश्यकता होती है। मौलिक योजना की सफलता के लिए इन सहयोगी योजनाओं का सही क्रम में एवं सही समय पर पूरा होना आवश्यक होता है।

(6) सहयोग एवं सहभागिता : किसी भी योजना की सफलता कर्मचारियों की पूर्ण सहभागिता पर निर्भर करती है। इस सन्दर्भ में प्रबंधक को अपने कर्मचारियों को योजना निर्माण प्रक्रिया में सम्मिलित करना चाहिए। सलाह, शिकायत, आलोचना आदि के माध्यम से प्रबंधक को योजना को उसके प्रारम्भिक स्तर पर ही सुधारने का मौका मिल जाता है और चूंकि योजना निर्माण में उनकी सहभागिता रहती है तो योजना के क्रियान्वयन में उनमें आपसी सहयोग बना रहता है और फलस्वरूप योजना सफलतापूर्वक संचालित हो सकती है।

(7) योजना का मूल्यांकन एवं पृष्ठपोषण : नियोजन का अन्तिम चरण क्रियान्वित योजना का मूल्यांकन करना होता है। योजना के क्या लाभ रहे हैं एवं उसमें क्या कमियाँ पायी गयीं, इसकी जाँच की जाती है। इस प्रक्रिया में कर्मचारियों, निवेशकों एवं क्षेत्र विशेषज्ञों से पृष्ठपोषण (थमकइंबा) लिया जाता है। योजना की प्रभावशीलता के लिए उसकी निरन्तर जाँच होनी आवश्यक है। इस प्रकार के मूल्यांकन से प्रबंधन को क्रियान्वित योजना की कमियाँ पता चल जाती हैं और उसके लिए सुधारात्मक उपाय अपनाने में देर नहीं होती है।

8.4 शैक्षिक नियोजन के उपागम

नियोजन विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु की जाने वाली क्रियाओं की रूपरेखा है। इसमें उद्देश्यों का निर्धारण कर विकल्पों की खोज की जाती है, तत्पश्चात् उपयुक्त विकल्पों का चयन कर उनको लागू कर अभीष्ट परिणाम प्राप्त करने की आशा की जाती है। मूल्यांकन के माध्यम से विकल्पों की उपयुक्तता भी ज्ञात की जाती है साथ ही यह भी ज्ञात किया जाता है कि लक्ष्यों की प्राप्ति कहाँ तक हो पायी हैं और उनमें क्या कमियाँ रह गयी हैं।

शैक्षिक नियोजन के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र से जुड़ी समस्याओं का ज्ञान प्राप्त कर उनमें सुधार हेतु अपनाये जाने वाले आवश्यक समाधानों और उनको लागू करने के लिए अपनायी जाने वाली क्रिया-प्रणालियों का ज्ञान प्राप्त होता है। वह विशिष्ट बिन्दू जो केन्द्रीय लक्ष्य का निर्धारण करता है, नियोजन का उपागम कहलाता है। शैक्षिक नियोजन के क्षेत्र में अनेक उपागमों का विकास हुआ है, जिनमें से कुछ प्रमुख उपागम निम्नलिखित हैं-

1. अन्तः शैक्षिक विस्तार उपागम (Intra-educational extrapolation approach)
2. जनांकिकीय प्रक्षेपण उपागम (Demographic Projection approach)
3. मानव शक्ति या मानव संसाधन विकास उपागम (Man-Power or Human Resource Development Approach)
4. सामाजिक माँग उपागम (Social Demand Approach)
5. लागत-लाभ विश्लेषण उपागम (Cost-benefit analysis approach)
6. सामाजिक न्याय उपागम (Social-Justice approach)

1. अन्तः शैक्षिक विस्तार उपागम : इस उपागम के अन्तर्गत शैक्षिक तन्त्र से जुड़ी विभिन्न समस्याओं में से किसी एक विशिष्ट समस्या हेतु आवश्यक लक्ष्यों-उद्देश्यों का निर्धारण कर, विकल्पों की खोज एवं उपयुक्त विकल्पों का चयन कर समाधान हेतु उनका क्रियान्वयन किया जाता है। उदाहरण स्वरूप यदि लक्ष्य एक निश्चित स्तर तक के सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की प्राप्ति है तो इस प्रकार के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु विद्यालयों का निर्माण, शिक्षकों की पूर्ति, पाठ्य पुस्तकों एवं यूनिफार्म की व्यवस्था आदि उपायों को अपनाया होगा।

लाभ: 1 इस उपागम के माध्यम से शैक्षिक समस्याओं को छोटी-छोटी कई समस्याओं के रूप में बाँट कर उनका पृथक-पृथक समाधान खोजा जाता है।

2 प्रत्येक समस्या से जुड़ी प्रत्येक छोटी-छोटी क्रियाओं, गतिविधियों एवं उपायों का अध्ययन सम्भव है।

3 परिमाणात्मक निहितार्थ का अनुमान लगाया जाता है।

हानि: 1 इस प्रकार के विश्लेषण के लिए अनेकों अनुक्रम सांख्यिकी (थ्रसवू ैजजपेजपबे) की आवश्यकता होती है, जिनका अध्ययन काफी जटिल होता है।

2 यह उपागम तब और जटिल हो जाता है जब राष्ट्रीय के साथ-साथ क्षेत्रीय और जिला सम्बन्धी भिन्नताओं को ध्यान में रखने का प्रयास किया जाता है।

2. जनांकिकीय प्रक्षेपण उपागम : यह उपागम उस जनसंख्या के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए मौलिक प्राचल (Parameter) प्रदान करता है जिसके लिए भविष्य में शैक्षिक तन्त्र को कार्य करना है। यह उपागम किसी न किसी रूप में शैक्षिक नियोजन के सभी उपागमों के लिए आवश्यक हो जाता है। ऐसे जनांकिकीय तत्व जिनकी भविष्य में किसी शैक्षिक समस्या के समाधान में आवश्यकता होगी, उनका सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर यह उपागम लक्ष्यों एवं विकल्पों के निर्धारण में सहायक होता है। जैसे यह ज्ञात करना कि प्राथमिक शिक्षा की प्रारम्भिक आयु क्या है और माध्यमिक शिक्षा से पहले कितना समय बीतता है। इसके माध्यम से उस विशिष्ट जनसंख्या के सम्बन्ध में शैक्षिक नियोजन कैसे और किस मात्रा में किया जाय इसका निर्धारण किया जा सकता है।

लाभ: 1 यह उपागम प्रत्येक स्तर की जनसंख्या का प्रेक्षण कर उनकी शैक्षिक समस्याओं का समाधान सुझाता है।

2 यह प्रत्येक स्तर की जनसंख्या के जनांकिकीय गुणों का पूर्ण गहनता से अध्ययन करता है।

हानि: 1 इस उपागम में त्रुटि के स्रोत शैक्षिक व्यवस्था के उन बिन्दुओं में अधिक होते हैं जहाँ एक आयु समूह के सदस्यों को अनेक शैक्षिक विकल्पों में से चयन करना होता है।

2 जनांकिकीय गुणों की पहचान हेतु विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

3. मानव शक्ति या मानव संसाधन विकास उपागम : इस उपागम का मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था की मानवीय शक्ति की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करना है। यह शैक्षिक व्यवस्था के उन परिणामों पर ध्यान देता है, जो भविष्य में मानवीय शक्ति की आवश्यकताओं को पूर्ण कर मानव संसाधन का विकास

करती हैं। जैसे विभिन्न क्षेत्रों अथवा रोजगार अवसरों में जिस प्रकार के प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता है उसी के अनुरूप उनके परीक्षण एवं शैक्षिक अवसरों की व्यवस्था करना। चिकित्सा के क्षेत्र में आवश्यक चिकित्सकों की संख्या को ध्यान में रखते हुए मेडिकल की शिक्षा एवं मेडिकल कालेजों की व्यवस्था करना। इस उपागम के तीन प्रमुख तत्व पर ध्यान दिया जाता है-भविष्य में मानवीय शक्ति के संगठन को निश्चित करना, मानवीय शक्ति की प्राप्यता एवं पूर्व की निश्चिताओं को भविष्य की निश्चितता से जोड़ना।

लाभ: 1 शैक्षिक व्यवस्था की रिक्तियों और असंतुलन को दूर करने एवं उनमें सुधार करने हेतु मानवीय शक्ति का अधिक से अधिक उपयोग हो जाता है और इसके लिए विस्तृत सांख्यिकी अध्ययन की आवश्यकता नहीं होती।

2 यह शिक्षाविद् को श्रम शक्ति की शैक्षिक योग्यताओं के भविष्य में विकास हेतु उपयोगी निर्देश देता है।

3 मानवीय शक्ति पर आवश्यकता से अधिक ध्यान देने पर बेरोजगार और अल्प रोजगार की चुनौतियों को दूर करने हेतु शिक्षा की व्यवस्था को एक सही दिशा प्रदान की जा सकती है।

हानि: 1 यह शैक्षिक नियोजन कर्ताओं को सीमित दिशानिर्देश ही प्रदान करता है। शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर वास्तव में क्या परिणाम प्राप्त होने चाहिए यह बता पाना इस उपागम के लिए कठिन है।

2 अधिकांश मानवीय शक्ति की आवश्यकता नगरीय रोजगार में होने के कारण नियोजनकर्ताओं का ध्यान भी इसी ओर अधिक होता है। इस कारण नगरों के कम कुशल एवं अकुशल श्रमिकों तथा ग्रामीण इलाकों के श्रमिकों की आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं जा पाता।

3 अधिकांश आर्थिक, तकनीकी एवं अन्य अनिश्चिताओं के कारण मानवीय शक्ति के विकास हेतु पूर्ण एवं विश्वसनीय भविष्यवाणी संभव नहीं है।

4. सामाजिक माँग उपागम : किसी भी देश का बाल एवं युवा वर्ग शिक्षा की सामाजिक माँग को प्रकट करता है। वर्तमान समय में जनसंख्या वृद्धि के कारण यह माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। अतः नियोजनकर्ताओं को इस बढ़ी हुई माँग को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के क्षेत्र में, विद्यालयों की स्थापना एवं अन्य शैक्षिक सुविधाओं के विकास में नियोजन करना चाहिए।

वैश्विक प्रतिस्पर्धा के वर्तमान युग में बढ़ती हुई शैक्षिक आकांक्षाओं तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या शैक्षिक माँग तथा सामाजिक माँग का परिचायक है। बढ़ती हुई सामाजिक माँग के दबाव के कारण आज शिक्षा में परिणात्मक वृद्धि हो रही है किंतु गुणात्मक विकास नहीं हो पा रहा है।

शैक्षिक नियोजन ही वह प्रक्रिया है जो बढ़ती हुई सामाजिक माँग को संतुष्ट करने का कार्य करता है। जिससे समाज में समरसता तथा प्रगति बनी रहें एवं शिक्षा का वास्तविक विकास हो सके।

इस उपागम का ध्यान इस बात पर रहता है कि शैक्षिक अधिकारियों को विद्यालय एवं सभी विद्यार्थियों, जो प्रवेश की माँग करते हैं एवं प्रवेश पाने की योग्यता रखते हैं, को दी जाने वाली सभी सुविधाओं के क्षेत्र में नियोजन करना चाहिए। अजेन्टा (1987) के अनुसार शिक्षा को अन्य सामाजिक सेवाओं की भाँति एक सेवा मानकर उसमें नियोजन करना चाहिए।

लाभ: 1 यह उपागम नियोजन कर्ताओं को आवश्यक क्षेत्रों का ज्ञान कराता है जिनमें शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

2 यह साधारण जनता की माँगों को पूरा करने वाला उपयुक्त राजनैतिक उपकरण है।

3 जहाँ संसाधन सीमित होते हैं एवं कम संसाधनों में, अधिकांश मात्रा में कई प्रकार की शिक्षा उपयोगी हो, उस अवस्था में नियोजन की यह तकनीक अत्यन्त उपयोगी होती है।

हानि: 1 शिक्षा की कीमत जैसे कारकों पर इस उपागम का कोई नियंत्रण नहीं रहता।

2 अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को किस प्रकार प्राप्त किया जाय, इस सन्दर्भ में यह उपागम कोई दिशा-निर्देश नहीं देता है।

3 अर्थव्यवस्था में संसाधनों का आवंटन मितव्ययता के साथ किया जा रहा है या नहीं, इस पर इस उपागम का कोई नियंत्रण नहीं रहता।

4 शिक्षा में केवल इस उपागम पर बल देने से शिक्षित बेरोजगारी की समस्या बढ़ती है।

5. लागत-लाभ विश्लेषण उपागम : इसे लागत प्रभावशीलता (Cost-effectiveness) तथा प्राप्ति दर उपागम (The rate of Return Approach) भी कहा जाता है। यह उपागम शिक्षा पर होने वाले व्यय को राष्ट्रीय निवेश मानकर शिक्षा द्वारा प्राप्त होने वाले लाभ/उत्पादन पर आधारित होता है। राष्ट्र के सर्वतोन्मुखी विकास हेतु कुशल शैक्षिक मानव संसाधन के उत्पादन पर यह उपागम सर्वाधिक बल देता है। अतः किसी भी राष्ट्र को शिक्षा पर होने वाले निवेश को बढ़ाना आवश्यक है। शिक्षा को रोजगारोन्मुखी एवं उत्पादक प्रक्रिया के रूप में विकसित करने से ही समाज एवं राष्ट्र की उन्नति संभव है।

लागत लाभ उपागम इस बात पर अपना ध्यान लगाता है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर मानवीय विकास हेतु इस प्रकार निवेश किया जाय ताकि वह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में सुधार लाने वाला हो। एडेसीना (कमेपद) (1981) के अनुसार इस उपागम की कुछ मान्यताएँ हैं-श्रमिकों को दी जाने वाली आय उनकी उत्पादकता में भिन्नता को प्रदर्शित करती हैं। उत्पादकता में भिन्नता लोगों द्वारा ग्रहण की जाने वाली शिक्षा के प्रकार एवं मात्रा में भिन्नता दर्शाती है। यह शिक्षा और आय के बीच वास्तविक सम्बन्ध का विश्लेषण करने वाला यंत्र है। इस उपागम में नियोजन दो आधारों पर किया जाता है-

सामाजिक प्राप्ति-दर उपागम (Social Rate of Return): इस उपागम में राज्य द्वारा एक विशेष प्रकार की शिक्षा पर किये जाने वाले निवेश पर ध्यान दिया जाता है। शिक्षा पर आने वाली लागत पूर्णरूप से समाज द्वारा वहन की जाती है और उसका प्रतिफल एक साधारण शिक्षित व्यक्ति को प्राप्त होने वाली आय एवं लाभों की गणना करके प्राप्त किया जाता है।

व्यक्तिगत प्राप्ति-दर उपागम (Private Rate of Return): इस उपागम में विशिष्ट प्रकार की शिक्षा पर निजी निवेश और उस पर प्राप्त होने वाले अपेक्षित परिणामों का अध्ययन किया जाता है। इनकी गणना छात्रों को उनकी शिक्षा के दौरान प्राप्त होने वाले लाभों एवं आय से, जो उन्हें शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त होती हैं, से की जाती है।

लाभ: 1 एक शिक्षित व्यक्ति की आय प्राप्ति की आयु को देखते हुए उनकी बढ़ी हुई उत्पादकता की माप संभव हो पाती है।

2 यह विश्लेषण समाज के शैक्षिक ढांचों को एक निश्चित दिशा प्रदान करता है जो कि सामाजिक उत्पादों की उत्पादकता को बढ़ता है।

3 यह अधिक से अधिक शिक्षा पर आने वाली लागत और सहायक शिक्षा के फलस्वरूप आय में होने वाली वृद्धि के बीच के संबंधों को दर्शाती है।

हानि: 1 किसी भी प्रकार की शिक्षा में किये जाने वाले निवेश से होने वाले लाभों की माप करना कठिन होता है।

2 सार्वजनिक सेवकों को प्राप्त होने वाली आय उनकी उत्पादकता के बजाय विभिन्न आर्थिक चरों से प्रभावित होती है।

6. सामाजिक न्याय उपागम : यह उपागम सामाजिक नियोजन या सामाजिक विकास के लिए नियोजन भी कहलाता है। समाज में सामाजिक न्याय की व्यवस्था करने में शिक्षा अति महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। शैक्षिक नियोजन के क्षेत्र में सामाजिक न्याय उपागम समाज में न्यायपूर्ण नियोजन को दर्शाता है। अर्थात् समाज के प्रत्येक वर्ग के हित एवं विकास हेतु नियोजन किया जाय ताकि समाज के उच्च वर्ग के साथ-साथ निम्न वर्ग के उत्थान को प्रोत्साहन मिल सके।

इस उपागम में ऐसी शैक्षिक व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया जाता है जो समाज के सभी व्यक्तियों के सामाजिक-आर्थिक विकास को बढ़ावा दे और सामाजिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करें। इस हेतु शिक्षा के प्रत्येक स्तर को बढ़ावा दिया जाना आवश्यक है ताकि प्रत्येक स्तर (प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर) पर कमजोर वर्ग एवं सीमान्त (Marginalize) व्यक्तियों को आगे आने का मौका मिल सके। इसके अतिरिक्त 6-14 आयुवर्ग के समक्ष छात्र-छात्राओं हेतु अनिवार्य एवं निःशुल्क प्रारंभिक शिक्षा का प्रावधान मध्याह्न भोजन

योजना, मुक्त पुस्तक तथा यूनिफार्म वितरण, छात्रवृत्ति आदि प्रयास इसी श्रेणी में आते हैं। जो समाज के सामान्य तथा वंचित वर्गों को साथ-साथ शिक्षा प्राप्ति के अवसर सुलभ करवाते हैं।

लाभ: 1 समाज के प्रत्येक वर्ग का उत्थान संभव हो पाता है।

2 शिक्षा के प्रत्येक स्तर का विकास एवं उससे प्राप्त होने वाला प्रतिफल समाज के उत्थान एवं सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देता है।

हानि: 1 सामाजिक उत्थान एवं शिक्षा के प्रत्येक स्तर का विकास तभी संभव हो सकता है, जबकि संसाधनों का कुशलतम आवंटन एवं उनका अधिकतम संभाव्य उपयोग किया जाए, जोकि वास्तविक रूप में बहुत कम देखने को मिलता है।

2 कमजोर वर्ग को आगे लाने की बात की तो जाती है परन्तु वास्तव में उन्हें सदैव हाशिए (डंतहपद) पर रखा जाता है।

8.5 परिप्रेक्ष्य नियोजन

परिप्रेक्ष्य नियोजन से तात्पर्य किसी भी प्रकार की छोटी या बड़ी योजना के लिये परिप्रेक्ष्य अथवा केन्द्र बिन्दू निर्धारित करना। ये योजनाएँ अपनी क्रियाओं द्वारा निश्चित रूप से दीर्घकालीन परिणाम देती हैं। ये योजनाएँ कुछ परिस्थितियों में प्रभावकारी होती हैं एवं कुछ परिस्थितियों में प्रभावहीन। परन्तु दोनों ही परिस्थितियों में उनसे जुड़े परिप्रेक्ष्य की प्राप्ति में कुछ हद तक सफलता प्राप्त हो जाती है। परिप्रेक्ष्य नियोजन एक ऐसी नियोजन व्यवस्था है, जिसमें एक निश्चित केन्द्र बिन्दू के इर्द-गिर्द लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है, विकल्पों की खोज, चयन, मूल्यांकन एवं क्रियान्वयन किया जाता है, तत्पश्चात् योजना का मूल्यांकन एवं पृष्ठपोषण प्राप्त किया जाता है।

परिप्रेक्ष्य नियोजन के प्रकार : परिप्रेक्ष्य नियोजन के प्रकार निम्नलिखित हैं-

(1) सामरिक नियोजन (Strategic Planning): इसे दीर्घकालिक नियोजन भी कहते हैं। इसका केन्द्र बिन्दू सम्पूर्ण व्यवस्था होती है। दीर्घकालिक या सामरिक नियोजन 10 से 20 वर्ष की अवधि का होता है और वृहद परिप्रेक्ष्य पर आधारित होता है। यह संस्थागत लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न स्तर पर निर्मित की जाने वाली योजनाओं को निर्देशित करता है। इसमें योजनाओं के क्रियान्वयन एवं उनका परिणाम देखने का समय मिल जाता है इस कारण भी महत्वपूर्ण माना जाता है।

(2) अल्पकालीन नियोजन (Short-term Planning): अल्पकालीन नियोजन 3 से 5 वर्ष हेतु किया जाता है। इसका केन्द्र बिन्दू तत्कालिक एवं दबावयुक्त समस्याएँ होती हैं। विशिष्ट एवं लघु उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु यह नियोजन अधिक उपयुक्त होता है।

(3) प्रबन्ध नियोजन (Management Planning): इसका सम्बन्ध उन निर्णयों से होता है जो पहले से निर्मित योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु लिये जाते हैं। यह नियोजन प्रक्रिया का एक अंग है जो लक्ष्यों एवं नीतियों से सम्बन्धित मूल निर्णय लेने के बाद क्रियान्वित किया जाता है। यह नियोजन प्रासंगिकता नियोजन (Contingency Planning) की अवधारणा पर आधारित है, जिसका तात्पर्य है ऐसे विकल्पों की खोजकर उनका चयन करना है जो अनापेक्षित परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर प्रयोग किये जा सकें। यह दीर्घकालीन एवं

अल्पकालीन दोनों प्रकार की योजनाओं में प्रयुक्त किया जाता है और दोनों प्रकार की योजनाओं की प्रभावशीलता प्रबन्ध नियोजन के प्रभावी होने पर निर्भर करती हैं।

(4) आधार-स्तर नियोजन (Grass-Root Planning): शैक्षिक नियोजन अनेक स्तरों पर किया जा सकता है अर्थात् राष्ट्रीय, राजकीय, जिला, ब्लाक या संस्थागत स्तर पर। प्रत्येक स्तर पर उस स्तर से जुड़ी सभी विशेषताओं सुविधाओं, समस्याओं को नियोजन में सम्मिलित करके एक सम्पूर्ण योजना का निर्माण किया जाता है। तभी वह योजना सम्पूर्ण स्तर के लिए लाभदायक सिद्ध होती है। ऐसा करने के लिए आधार स्तर का ही सहारा लिया जाता है, अर्थात् एक विशिष्ट स्तर के नियोजन हेतु उस स्तर से जुड़े सभी आधार बिन्दू के इर्द-गिर्द लक्ष्यों का निर्धारण एवं विकल्पों का क्रियान्वयन किया जाता है। जैसे ब्लाक स्तर नियोजन हेतु स्थानीय स्वार्थों को आवश्यक महत्व दिया जाता है जबकि राष्ट्रीय नियोजन में राजकीय, जिला, ब्लाक या संस्थागत स्तर पर भी योजनाएँ निर्मित की जाती हैं।

(5) क्षेत्र नियोजन (Area Planning): क्षेत्र नियोजन, आधार स्तर नियोजन का ही एक रूप है। क्षेत्र नियोजन में केन्द्र बिन्दू एक विशिष्ट क्षेत्र होता है। जिस पर विकास के दृष्टिकोण से ध्यान दिया जाना आवश्यक होता है। इसमें योजना के क्रियान्वयन का कार्य क्षेत्र विशेष सत्ता को सौंपा जाता है।

8.6 संस्थागत नियोजन (Institutional Planning)

संस्थागत नियोजन किसी संस्था के भीतर संसाधनों के सर्वोत्तम प्रयोग को सुनिश्चित करता है। संस्था अपनी समस्याओं एवं विकास के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को जानती है, इस कारण वह अपनी समस्याओं का समाधान भी ढूँढ़ सकती है। नियोजन के माध्यम से संस्था अपने पास उपलब्ध संसाधनों का अपनी समस्याओं के अनुरूप आवंटन करती है और नीतियों का क्रियान्वयन इस रूप में करती है कि समस्याओं का हल हो सके। संस्थागत नियोजन में शैक्षिक संस्था की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए नियोजन किया जाता है।

संस्थागत नियोजन को परिभाषित करते हुए एम0बी0 बुच (1968) का कहना है, विद्यालयी कार्यक्रमों एवं विद्यालयी क्रियाओं को ध्यान में रखते हुए, विद्यालयी आवश्यकताओं का विचार एवं उपलब्ध संसाधनों के आधार पर किसी शैक्षिक संस्था के विकास एवं सुधार हेतु कार्यक्रम बनाना संस्थागत नियोजन के अन्तर्गत आता है। यह विद्यालय एवं समुदाय में उपलब्ध संसाधनों के अनुकूलतम (Optimum) उपयोग पर आधारित होता है। इस प्रकार का नियोजन अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन दोनों ही प्रकार की हो सकता है।

संस्थागत नियोजन के लाभ : संस्थागत नियोजन के लाभ निम्नलिखित हैं-

(1) आवश्यकता आधारित न कि अनुदान आधारित : संस्थागत नियोजन संस्था की आवश्यकताओं अथवा समस्याओं पर आधारित होता है न कि संस्था को मिलने वाले अनुदानों पर। संस्था इन अनुदानों का प्रयोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करती है और योजना बनाती है।

(2) **संसाधनों का अनुकूलत उपयोग** : इस नियोजन में संस्था को अपने पास उपलब्ध संसाधनों एवं अपनी समस्याओं दोनों का पूर्ण ज्ञान रहता है। अतः संस्था अपने संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग कर पाती है। कौन-सा संसाधन किस समस्या हेतु आवश्यक है इसका ज्ञान होने से नियोजन करते समय संसाधनों का अपव्यय नहीं होने पाता।

(3) **लक्ष्य-परक** : संस्थागत नियोजन संस्था के विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किया जाता है। इस नियोजन में संस्था के लक्ष्य ही नियोजन के केन्द्र बिन्दु होते हैं और सम्पूर्ण नियोजन इन्हीं की प्राप्ति हेतु किया जाता है।

(4) **भावी एवं विशिष्ट चेतना** : संस्थागत नियोजन भविष्य में संस्था के विकास एवं समस्याओं के समाधान हेतु निर्मित विशिष्ट योजना है जो कि संस्था की विशिष्ट समस्याओं को दूर करती हैं और भविष्य में संस्था का उत्थान करती है।

(5) **सुधारात्मक प्रेरणा** : यह नियोजन एक सुधारात्मक प्रेरणा के रूप में कार्य करता है जो भविष्य में संस्था द्वारा निर्मित होने वाली अन्य योजनाओं को अतीत की कमियों से दूर रहने की प्रेरणा देता है। अतीत की योजनाओं में आने वाली कमियों को दूर करने के उपाय आने वाली पीढ़ी को समझाता है।

(6) **विद्यालयी सुधार एवं विकास** : विद्यालयी कार्यक्रमों एवं क्रियाओं हेतु आवश्यक उपलब्ध संसाधनों के कुशलतम उपयोग द्वारा यह नियोजन विद्यालय व्यवस्था में सुधार लाता है तथा विद्यालय के उत्थान एवं विकास को प्रोत्साहन देता है। कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, शिक्षण कार्यक्रम, परीक्षा आदि सभी क्रियाओं में आने वाली बाधाओं को दूर करता है।

(7) **सतत् विकास** : संस्थागत नियोजन संस्था में सतत् विकास को प्रोत्साहन देता है। समय-समय पर आने वाली बाधाओं को दूर करने की पूर्व तैयारी करता है।

(8) **प्रजातंत्रीय दृष्टिकोण** : इस प्रकार के नियोजन में प्रबन्धक, आधिनस्थों को भी सम्मिलित करता है। उनके सहयोग, सुझाव आदि सुनता है एवं आवश्यक स्थानों पर उनके सुझावों के आधार पर निर्णय लेता है। अपने निर्णय सदस्यों पर थोपता नहीं है। इस प्रकार इस नियोजन में प्रजातंत्रीय दृष्टिकोण को अपनाया जाता है।

(9) **समुदाय का सहयोग** : संस्थागत नियोजन हेतु संस्था, समुदाय के व्यक्तियों, अभिभावकों, सामर्थ्यवान विशेषज्ञों आदि का सहयोग लेती है, ताकि नियोजन के प्रत्येक स्तर पर छोटी से छोटी समस्या का हल ढूंढा जा सके। साथ ही संसाधनों की अनुपलब्धता की स्थिति में समुदाय द्वारा उनकी पूर्ति की जा सके।

(10) **वैज्ञानिक एवं कार्य-परक** : यह नियोजन वैज्ञानिक विधियों को अपनाते हुए कार्य एवं सेवाओं को केन्द्रीय बिन्दु के रूप में रखता है। इसमें कार्य प्रधानता होती है न कि सम्बन्ध प्रधानता तथा सदस्यों द्वारा की जाने वाली क्रियाएँ ही महत्वपूर्ण मानी जाती है।

संस्थागत नियोजन की प्रक्रिया : किसी भी विद्यालय के विकास के लिए योजना बनाते समय वर्तमान एवं भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए लक्ष्यों/उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है, तत्पश्चात् आवश्यकताओं की तीव्रता के अनुरूप लक्ष्यों की प्राथमिकता निर्धारित की जाती है। प्राथमिकता के आधार पर लक्ष्यों का चयन हो जाने के बाद कार्यक्रम तय किये जाते हैं, जिनकी क्रियान्वति के आधार पर निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति संभव हो पाती है। कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु विद्यालय संस्था के पास उपलब्ध संसाधनों

का चयन किया जाना चाहिए। संसाधन मानवीय एवं भौतिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। संसाधन चयनित होने के पश्चात् उन्हें कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु उपयोग में लाया जाता है एवं कार्यक्रम को विस्तार दिया जाता है। नियोजन में समय-समय पर कार्यक्रम की प्रगति का मूल्यांकन आवश्यक है जो कार्यक्रम में आने वाली बाधाओं का ज्ञान कराता है। ये मूल्यांकन मासिक, द्विमासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक अथवा वार्षिक हो सकते हैं। मूल्यांकन जितना वैध एवं विश्वसनीय होता है, उतना ही कार्यक्रम की वास्तविक स्थिति का पता चलता है। मूल्यांकन के पश्चात् कार्यक्रम में आने वाली बाधाओं को दूर करने हेतु आवश्यक उपयों को अपनाया जाता है और योजना में आवश्यक संशोधन किया जाता है। इस नियोजन में कार्यक्रमों, उनकी उपलब्धियों का विस्तृत ब्यौरा रखना आवश्यक है इनके आधार पर वर्तमान कार्यक्रमों का उचित मूल्यांकन होता और भावी कार्यक्रमों हेतु आधार प्राप्त होता है। ये प्रगति विवरण भावी योजनाओं हेतु उद्देश्य निर्धारण में सहायक होता है।

अतः स्पष्ट है कि संस्थागत नियोजन शिक्षण संस्था द्वारा अपने विकास एवं प्रगति हेतु अपने उद्देश्यों, आदर्श एवं परम्पराओं तथा प्राप्त संसाधनों द्वारा किये जाने वाले अनुकूलतम प्रयासों की रूपरेखा है।

8.7 क्रियाकलाप-

1. शैक्षिक नियोजन से आप क्या समझते हैं?
2. परिपूरक्ष्य नियोजन का क्या महत्व है?
3. अपने विद्यालय हेतु संस्थापक योजना का प्रारूप बनाइये।

8.8 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

1. Allen, L.A. (1990). Management and organisation, New York, Mc Graw-Hill Book Company.
2. Koontz, Harold & O'Donnel, Cyril. (2000). Essentials of Management, New York, Tata Mc Graw Hill.
3. Ackoff, R.L. (1970). A Concept of Corporate Planning New York, Wiley.
4. Rao, V.S.P. & Krishna, V. Hari (2002) Management : Text and cases, New Delhi, Excel Books.
5. Bhatnagar, R.P. (2010). Educational Administration. Meruth, International Publishing House.
6. Verma, J.P. (2008). Educational Management (4th edition) Jaipur, Rajasthan Hindi Granth Academy

इकाई 9 पर्यवेक्षण का अर्थ एवं परिभाषा और प्रकार

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- 9.3 पर्यवेक्षण: अर्थ एवं परिभाषा
- 9.4 पर्यवेक्षण के कार्य
- 9.5 पर्यवेक्षण के प्रकार
- 9.6 पर्यवेक्षण के गुण
- 9.7 निबन्धात्मक प्रश्न
- 9.8 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

पर्यवेक्षण प्रबंधन एवं प्रशासन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अभिन्न अंग है। प्रबंधन के प्रमुख कार्यों नियोजन संगठन, निर्देशन, निर्णयन, नियंत्रण, मूल्यांकन आदि में पर्यवेक्षण अतिमहत्वपूर्ण कार्य है जो संस्था के कर्मचारियों के बहेतर कार्य-निष्पादन तथा संस्थागत उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अति आवश्यक होता है।

प्रबंधन विभिन्न कार्यप्रणालियों का समूह होता है। नियोजन, संगठन, विभागीकरण, बजटीकरण, मूल्यांकन, नियंत्रण आदि विभिन्न क्रियाओं की पूर्ति के पश्चात् ही प्रबंधन सफलता प्राप्त करता है। उपरोक्त वर्णित विभिन्न क्रियाओं के समय-समय पर मूल्यांकन एवं उन पर निगरानी रखने हेतु एक ऐसी प्रणाली की आवश्यकता होती है जो इनके कार्या पर नजर रख सके ओर कार्य की सही एवं गलत दिशा के सम्बन्ध में ज्ञान प्रदान कर सके। ये प्रणाली पर्यवेक्षण कहलाती हैं। ये प्रबंधन से जुड़ी विभिन्न क्रियाओं का समय-समय पर मूल्यांकन करता हैं।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- पर्यवेक्षण के अर्थ को जान पायेंगे।
- पर्यवेक्षण की विभिन्न परिभाषाओं से परिचित हो पायेंगे।
- पर्यवेक्षण के कार्यों को जान पायेंगे।
- पर्यवेक्षण के प्रकारों को जान सकेंगे।
- कुशल पर्यवेक्षण के गुणों से परिचित हो पायेंगे।

9.3 पर्यवेक्षण: अर्थ एवं परिभाषा

पर्यवेक्षण शब्द अंग्रेजी भाषा के Supervision का हिन्दी रूपान्तर है। यह दो शब्दों पर (Super) + अवेक्षण (Vision) से मिलकर बना है। 'Super का तात्पर्य 'असाधारण, अलौकिक' होता है तथा Vision का तात्पर्य 'दृष्टि' होता है। ऐसी दृष्टि जो दिव्य अथवा अत्यन्त सूक्ष्म हो, यह पर्यवेक्षण के अन्तर्गत आता है। किसी संगठन की चहुँमुखी दिशाओं का सूक्ष्म अध्ययन करने एवं उनके विकास हेतु सुझाव देने को पर्यवेक्षण कहा जाता है। इस प्रक्रिया में दूसरे व्यक्ति, इकाई अथवा सम्पूर्ण संगठन की क्रियाओं का अवलोकन कर उन्हें आवश्यक दिशा-निर्देश एवं विकास हेतु आवश्यक सुझाव दिया जाता है।

“पर्यवेक्षण इच्छित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मानव-प्रतिभा का बुद्धिमत्ता पूर्ण उपयोग एवं प्रबन्धकों द्वारा संसाधनों रूपी सुविधाएँ उपलब्ध कराना है जो मानव-प्रतिभा को चुनौतियाँ एवं रूचि प्रदान कर सके।” -

जी0आर0 टेरी

"Supervision is the achieving of desired results by means of the intelligent utilization of human talents and facilitating resources in a manager that provides the greatest challenge and interest to human talents." -G.R.Terry

उपरोक्त परिभाषा स्वयं में निम्नलिखित तत्व समाहित किए हुए है-

1. कार्य के दौरान कर्मचारियों की क्रियाओं पर ध्यान रखना।
2. मानव प्रतिभाओं का बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग।
3. प्रदर्शन स्तर उच्च करने हेतु कर्मचारियों को प्रेरित करना।
4. अच्छे मानवीय सम्बन्धों को बनाये रखना।

इन तत्वों के माध्यम से स्पष्ट है कि पर्यवेक्षण जहाँ कर्मचारी क्रियाओं का निरीक्षण है वहीं उनको प्रेरित करने, संगठन के भीतर सुव्यवस्थित मानव सम्बन्ध बनाये रखने एवं कर्मचारियों को प्रेरित करने वाली तकनीक भी है। पर्यवेक्षणीय क्रियाएँ वास्तव में संगठन, उसके लक्ष्यों एवं नेतृत्व आदि के आधार पर भिन्न-भिन्न स्वरूप वाली होती हैं। कुछ संगठनों में पर्यवेक्षक की शक्तियाँ असीम होती हैं तो कुछ संगठनों में पर्यवेक्षक संकुचित शक्तियों वाला होता है। पर्यवेक्षण एवं पर्यवेक्षक के विषय में आवश्यक जानकारी हेतु पर्यवेक्षण की विशेषताओं एवं अन्य तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर लेना भी आवश्यक है।

शैक्षिक पर्यवेक्षण (Educational Supervision): शिक्षा के क्षेत्र में किया जाने वाला पर्यवेक्षण शैक्षिक पर्यवेक्षण कहा जाता है। शैक्षिक पर्यवेक्षण का शिक्षकों, सीखने की परिस्थितियों तथा छात्रों की उन्नति से गहरा सम्बन्ध होता है। शिक्षण की उत्तम विधियों, पुस्तकालय, प्रयोगशाला की सुविधा, क्रीड़ा स्थल, मानदण्डों के अनुरूप शिक्षकों की नियुक्ति, शिक्षक-छात्र अनुपात, विद्यालय भवन आदि विभिन्न तत्वों का मूल्यांकन शैक्षिक पर्यवेक्षण के अन्तर्गत किया जाता है। इसके माध्यम से पाठ्यक्रम में सुधार तथा निर्माण हेतु शोध पर बल दिया जाता है। छात्रों को आवश्यक व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श देने हेतु भी शैक्षिक

पर्यवेक्षण का विशेष महत्व है। वास्तव में शैक्षिक पर्यवेक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जो शिक्षको के व्यावसायिक विकास में, शिक्षण संस्थाओं की निरन्तर उन्नति एवं छात्रों के सर्वांगीण विकास हेतु पूर्ण सहायता प्रदान करती है।

शिक्षा शब्द कोष (Dictionary of Education) के अनुसार शैक्षिक पर्यवेक्षण निम्नलिखित तत्वों से जुड़ा हुआ है-

- शिक्षण उद्देश्य, विधियाँ, सामग्रियों का चयन करना।
- पर्यवेक्षकों, शिक्षकों एवं कार्यकर्ताओं को नेतृत्व प्रदान करना।
- व्यावसायिक उन्नति हेतु प्रेरणा प्रदान करना।
- आवश्यक सुधार हेतु मूल्यांकन करना।

“शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षण को सुधारने का एक सुनियोजित कार्यक्रम है।” -एडम्स एवं डिकके

“Educational supervision is a planned programme for the improvement of the instruction.”
Adams & Dckey

“पर्यवेक्षण शिक्षण प्रक्रिया का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने तथा निर्देशन देने की एक विधि है। पर्यवेक्षण का अन्तिम उद्देश्य छात्रों को उत्तम शिक्षण सेवा द्वारा सभी स्तरों पर योग्य बनाना होना चाहिए।”

-चेस्टर टी, मैक्नवे

“Supervision is the procedure of giving direction and providing critical evaluation of the instructional process. The ending result of all supervision should be to provide students at all levels with better educational services.”

Chester T. Mcnervey

“पर्यवेक्षण विद्यालय प्रशासन का वह रूप है जिसका सम्बन्ध मुख्य रूप से शैक्षिक सेवा की आशाजनक तथा उपयुक्त उपलब्धियों से होता है।” -ग्लेन जी0आई0 तथा नेटजर

”Supervision is that phase of school administration which deals primarily with the achievement of the appropriate selected instructional expectations of educational service.”
-Glang G. Eye & A.L. Netzer

अतः परिभाषाओं से स्पष्ट है कि शिक्षक-छात्र अन्तःक्रिया में आवश्यक सुधार, उपयुक्त एवं कौशल युक्त शिक्षण विधियों का विकास, पाठ्यक्रम का मूल्यांकन, परीक्षा व्यवस्था को वस्तुनिष्ठ स्वरूप प्रदान करना,

छात्र-सुविधाओं का मूल्यांकन एवं उनमें आवश्यक सुधार लाना, शिक्षण प्रबन्धन को प्रभावी बनाने की दिशा में उपरोक्त क्रियाओं का सम्पादन शैक्षिक पर्यवेक्षण के मूलभूत तत्व हैं। उत्तम शैक्षिक पर्यवेक्षण वही है जो शिक्षकों, छात्रों तथा विद्यालय की समस्त परिस्थितियों को उन्नत करता है। वास्तव में शैक्षिक पर्यवेक्षण वह विशिष्ट सेवा है जो शिक्षकों की कार्य-कुशलता तथा व्यावसायिक नेतृत्व हेतु, पाठ्यक्रम में सुधार तथा शिक्षण स्तर को उचित मानक तक पहुँचाने हेतु एवं छात्रों के समाज के अनुरूप आचरण करने हेतु आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करती है।

9.4 पर्यवेक्षण के कार्य

शैक्षिक पर्यवेक्षण के कार्य:- शैक्षिक पर्यवेक्षण के निम्नलिखित कार्य हैं-

1. नेतृत्व प्रदान करना- वांछित शैक्षिक उद्देश्यों की आधिकतम प्राप्ति हेतु पर्यवेक्षण संस्था के कर्मचारियों को नेतृत्व प्रदान करने का कार्य करता है। सर्वप्रथम लक्ष्य निर्धारण एवं इसके उपरांत कर्मचारियों को उद्देश्यप्राप्ति की दिशा में साथ लेकर चलना पर्यवेक्षण के द्वारा ही संभव हो पाता है साथ ही पर्यवेक्षण समूह के सभी सदस्यों को उपयुक्त परिस्थिति में स्वयं नेतृत्व करने के लिए भी प्रेरित करता है जो कि प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण की पहचान है।
2. उचित निर्देशन प्रदान करना- पर्यवेक्षण का एक अन्य प्रमुख कार्य निर्देशन करना है जिसके तहत प्रजातांत्रिक सिद्धांतों के अनुरूप संस्था के सदस्यों को अपने कौशल, गुण, तथा, विषय ज्ञान के आधार पर कार्य करने के लिए निर्देशित किया जाता है।
3. सम्प्रेषण सम्प्रेषण के उचित माध्यम उपलब्ध करवाकर संस्था के समस्त कर्मचारियों तथा अधिकारियों के मध्य उचित संबंध स्थापित करने का कार्य पर्यवेक्षण का है। सम्प्रेषण द्वारा वह कर्मचारियों तथा अधिकारियों के बीच उत्पन्न होने वाले द्वन्द्व तथा प्रतिकूल परिस्थितियों को रोककर सामन्जस्यपूर्ण कार्य वातावरण का निर्माण करता है तथा अनुभवों व विचारों के मुक्त आदान-प्रदान को सहज बनाता है।
4. समन्वय संस्था के कर्मचारियों के प्रयासों तथा कार्यों में समन्वय स्थापित करना भी पर्यवेक्षण का ही कार्य है जिसके द्वारा वह सभी को सहयोगी भाव से संस्थागत उद्देश्य प्राप्ति में संलग्न करवा पाता है।
5. मानव संसाधन विकास- शैक्षिक संस्थाओं में विद्यार्थी, शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों के विकास में पर्यवेक्षण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षकों को कुशल नेतृत्व प्रदान कर उनके कौशल एवं ज्ञान का समुचित उपयोग छात्र कल्याण में हो तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का उचित विकास हो इस हेतु पर्यवेक्षण सदा प्रयासरत रहता है।

6. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का विकास- शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सभी पक्षों जैसे- छात्र, शिक्षक, कक्षाकक्ष, पाठ्यक्रम, समयसारणी, शिक्षण विधियाँ, बिल संसाधन, उपकरण, मूल्यांकन आदि के विश्लेषण के साथ-साथ उपर्युक्त पक्षों के संभावित अधिकतम विकास से पर्यवेक्षण संबंधित है। शैक्षिक पर्यवेक्षण के द्वारा ही शिक्षकों के ज्ञान कौशल क्षमताओं तथा योग्यताओं में सुधार लाया जाता है जिससे विद्यार्थियों का उत्तरोत्तर विकास संभव हो सके।
7. वर्तमान रूप में शैक्षिक पर्यवेक्षण प्रजातांत्रिक सिद्धांतों तथा आदर्शों पर आधारित हो गया है जिसके द्वारा शिक्षकों एवं शिक्षणेत्र कर्मचारियों को रचनात्मक आलोचना तथा आवश्यक सुझावों के द्वारा सुधार किया जाता है। अब शैक्षिक पर्यवेक्षण पूर्व की भाँति भय, आशंका एवं आलोचना से त्रस्त न होकर सभी कर्मचारियों को लोकतंत्रात्मक तरीके से साथ लेकर संस्था के विकास में उचित मार्गदर्शक का काम करता है।
8. उपर्युक्त मानव-संबंधों का विकास-शैक्षिक पर्यवेक्षण का लोकतांत्रिक अवधारणा पर आधारित होने के कारण यह शिक्षकों के व्यक्तित्व, योग्यताओं, आवश्यकताओं आकांक्षाओं तथा अंतर्संबंधों पर ध्यान देता है। व्यक्ति विभिन्नताओं को उचित महत्व देते हुए शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के विकास में सहायता करता है। जिससे द्वन्द्व की परिस्थितियों को रोकते हुए वांछित उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके तथा संस्था में उपर्युक्त मानव संबंध बने रहे क्योंकि वास्तव में पर्यवेक्षण एक समूह गतिविधि है। अतः संस्था के विकास के लिए समूह को साथ कार्य करना आवश्यक है।
9. उचित अधिगम वातावरण का विकास- किसी शैक्षिक संस्था को अधिगम वातावरण का विकास करना शैक्षिक पर्यवेक्षण का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य है। संस्था के वातावरण में निहित विभिन्न सामाजिक, मनोवैज्ञानिक व संवेगात्मक विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों को निर्णय प्रक्रिया में उचित सहभागिता उपलब्ध करवाना, आवश्यक स्वायत्तता, सहयोग, निर्देशन तथा पुरस्कार की व्यवस्था करना शैक्षिक पर्यवेक्षण के कार्यक्षेत्र का मुख्य बिंदू है। जिसके द्वारा ही अधिगम वातावरण सहज, सरल व विस्तृत होना है।
10. शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति- शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का बहुमुखी विकास करना है एवं इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु शैक्षिक पर्यवेक्षण उत्तरदायी होता है। शिक्षण प्रक्रिया के समस्त पक्षों का विकास कर पर्यवेक्षण छात्र, शिक्षक, एवं समाज को लाभ पहुँचाता है। सामाजिक आकांक्षाओं पर आधारित पाठ्यक्रम, निर्माण, क्रिया प्रधान शिक्षण विधियों के प्रयोग, शिक्षकों की व्यवसायिक उन्नति, वस्तुनिष्ठ एवं वैद्य मूल्यांकन प्रक्रिया के विकास, संसाधन उपलब्धता, उचित संस्थागत वातावरण के विकास द्वारा पर्यवेक्षण राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने में प्रयासरत रहता है।

11. कार्यसंतुष्टि का विकास- उपयुक्त प्रशिक्षण देकर शैक्षिक पर्यवेक्षण कर्मचारियों की कार्यसंतुष्टि के भाव का विकास करने में सहायता करता है। यह समय-समय पर सही प्रयासों के लिए प्रशंसा तथा पुरस्कार देकर एवं कर्मचारियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं, समस्याओं एवं आकांक्षाओं पर ध्यान न देते हुए उन्हें विकास के समुचित अवसर उपलब्ध करने से उनमें संस्था के प्रति समर्पण भाव तथा कार्य संतुष्टि का विकास करता है।
12. समय एवं संसाधनों का समुचित उपयोग- सीमित समय एवं संसाधन में लक्ष्यप्राप्ति करने में पर्यवेक्षण अति सहायक है।
13. उचित प्रेरणा प्रदान करना- शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षकों को लक्ष्य प्राप्ति हेतु प्रेरित करता है। जिससे वे संस्था विकास हेतु अपनी क्षमताओं के समुचित प्रदर्शन में सफल हो सके।
14. कार्य के प्रतिसमर्पण भाव का विकास करना

9.5 पर्यवेक्षण के प्रकार

पर्यवेक्षण के प्रकारों को निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है-

(A) भूमिका और दृष्टिकोण के आधार पर- भूमिका और दृष्टिकोण के आधार पर पर्यवेक्षण के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं-

1. निरीक्षणात्मक पर्यवेक्षण (Observational Supervision): यह पर्यवेक्षण का वह स्वरूप है जिसमें पर्यवेक्षण अधिकारी सर्वज्ञाता होता है, उसका उद्देश्य केवल त्रुटियों का पता लगाना होता है। इसे अधिकारिक पर्यवेक्षण भी कहते हैं। इसमें आज्ञा, निर्देशों एवं नियमों पर विशेष बल दिया जाता है। इस प्रकार के पर्यवेक्षण में पूर्व निर्धारित मानदण्डों के अनुरूप उद्देश्यों की सफलता-असफलता का मूल्यांकन किया जाता है। साथ ही यह भी माना जाता है कि भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के निरीक्षण हेतु भिन्न-भिन्न मानदण्डों का निर्धारण आवश्यक है। एक ही मानदण्ड प्रत्येक परिस्थिति के निरीक्षण हेतु उपयुक्त नहीं हो सकता।

2. नियंत्रणात्मक पर्यवेक्षण (Controlled Supervision): यह पर्यवेक्षण निरीक्षणात्मक अथवा अधिकारिक पर्यवेक्षण के ही समान है। अन्तर केवल इतना होता है कि यह उचित क्रियाओं के लिए पुरस्कार एवं अनुचित क्रियाओं हेतु दण्ड आदि के प्रावधानों द्वारा आधिनस्थों की क्रियाओं को नियंत्रित करता है। इसके लिए आवश्यक तकनीको का उपयोग किया जाता है, जिनके माध्यम से आधिनस्थों की क्रियाओं का सही मूल्यांकन किया जा सके और कोई त्रुटि न होने पाये।

3. सहयोगी अथवा लोकतंत्रीय पर्यवेक्षण (Collaborative Or Democratic Supervision): इस प्रकार के पर्यवेक्षण में आधिनस्थों की समस्याओं का निदान एवं संगठन लक्ष्यों की प्राप्ति की जाँच जनतंत्रात्मक अथवा सहयोगी वातावरण में की जाती है। संगठन हितों की प्राप्ति में आने वाली समस्याओं के

निदान हेतु आधिनस्थों को आवश्यक सहायता एवं सहयोग प्रदान किया जाता है। पर्यवेक्षक प्रेरणा प्रदान करते हुए एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण करता है ताकि आधिनस्थों की समस्याओं का समाधान भी किया जा सके और संगठन हितों की प्राप्ति हेतु उनकी क्रियाओं को भी आवश्यक दिशा-निर्देश प्रदान किया जा सके।

4. वैज्ञानिक पर्यवेक्षण (Scientific Supervision): इस प्रकार का पर्यवेक्षण क्रमबद्ध, वैध एवं विश्वसनीय होता है। यह आधुनिक तकनीकों एवं पूर्णतः वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित मापक यंत्रों के माध्यम से आधिनस्थ क्रियाओं का मूल्यांकन करता है। इसमें पूर्णतया वस्तुनिष्ठता विद्यमान रहती है।

5. रचनात्मक पर्यवेक्षण (Constructive Supervision): इस प्रकार के पर्यवेक्षण में आधिनस्थों के गुणों का पता लगाकर, उनके विकास एवं विस्तार हेतु समुचित पर्यावरण, सुविधाएँ एवं प्रोत्साहन प्रदान किया जाता है। इस तकनीक के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ गुण अवश्य ही विद्यमान होते हैं। आवश्यकता केवल उन गुणों की पहचान कर उन्हें निखारने की होती है। ऐसी स्थिति में एक पर्यवेक्षक अपनी पैनी दृष्टि के माध्यम से आधिनस्थों के उन गुणों की पहचान करता है और संगठन हित में उनके विकास हेतु उचित अवसर प्रदान करता अथवा प्रबन्धन के माध्यम से करवाता है।

(B) व्यक्तियों की संख्या के आधार पर- इस प्रकार के पर्यवेक्षण के निम्नलिखित दो प्रकार होते हैं-

1. पैनल पर्यवेक्षण (Panel Supervision): पैनल पर्यवेक्षण के अन्तर्गत व्यक्तियों के समूह अथवा पैनल द्वारा पर्यवेक्षण क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। प्रायः ऐसे पैनलों में तीन या उनसे अधिक व्यक्ति पर्यवेक्षण के लिए नियुक्त किये जाते हैं। सामान्यतया व्यक्तियों की संख्या तीन ही होती है। जिसमें एक विषय विशेषज्ञ, दूसरा तकनीक विशेषज्ञ और तीसरा विभागीय अधिकारी होता है। पैनल पर्यवेक्षण संगठन के प्रत्येक विभागों, इकाईयों एवं क्रियाओं की सूक्ष्मता से जाँच अथवा मूल्यांकन कर अपनी रिपोर्ट देता है। शिक्षा जगत में इस प्रकार के पर्यवेक्षण को ही अपनाया जाता है।

2. वैयक्तिक पर्यवेक्षण (Individual Supervision): इस प्रकार के पर्यवेक्षण में प्रबन्धन द्वारा एक व्यक्ति पर्यवेक्षण के लिए नियुक्त किया जाता है और वह ही समय-समय पर संगठन लक्ष्यों एवं कर्मचारी क्रियाओं का मूल्यांकन करता रहता है। इस पर्यवेक्षण में किसी बाहरी व्यक्ति द्वारा मूल्यांकन कराने की कोई आवश्यकता नहीं होती।

परम्परागत बनाम आधुनिक पर्यवेक्षण (Traditional Vs. Modern Supervision): प्रारंभ में पर्यवेक्षण को निरीक्षण (Inspection) के रूप में जाना जाता था जिसके अंतर्गत विद्यार्थियों, शिक्षकों पुस्तकों व वित्त संबंधी सामान्य विद्यालयीन पक्षों का निरीक्षण किया जाता था। यह प्रक्रिया बहुत ही कठोर, नियंत्रित, एवं अव्यवस्थित होती थी जो शिक्षण संस्थानों में भय, आतंक तथा तानाशाही के वातावरण का प्रभाव छोड़ती थी। विद्यालय निरीक्षक केवल कमियाँ खोजने तथा दंडित करने का कार्य करते थे। यहाँ रचनात्मकता तथा सुधारात्मक आलोचना का अभाव था परंतु 20वीं सदी के प्रारंभ से ही इस अवधारणा में परिवर्तन की शुरुआत हुई तथा समय के साथ पर्यवेक्षण के आधुनिक रूप का गठन हुआ। परम्परागत व आधुनिक पर्यवेक्षण के मध्य अन्तर निम्नलिखित है-

परम्परागत एवं आधुनिक पर्यवेक्षण में अन्तर

परम्परागत पर्यवेक्षण (Traditional Supervision)	आधुनिक पर्यवेक्षण (Modern Supervision)
1. यह पर्यवेक्षण निरीक्षणात्मक होता है।	1. यह पर्यवेक्षण अध्ययन एवं विश्लेषण पर आधारित होता है।
2. इस पर्यवेक्षण में आकस्मिक निरीक्षण पर अधिक बल दिया जाता है।	2. इस पर्यवेक्षण में सुनिश्चित एवं औपचारिक योजनाओं पर बल दिया जाता है।
3. यह पर्यवेक्षण मुख्यतः आलोचना ही करता है, इसमें सुधारात्मक युक्तियों का कोई स्थान नहीं होता।	3. यह पर्यवेक्षण सुझावात्मक, सहयोगात्मक एवं प्रेरण प्रदान करने वाला होता है।
4. परम्परागत तकनीक अनियमित, आव्यवस्थित एवं योजना रहित होती है।	4. आधुनिक तकनीक निश्चित, व्यवस्थित एवं योजनाबद्ध होती है।
5. कर्मचारी समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता।	5. इसमें संगठन हित को ध्यान में रखते हुए कर्मचारी समस्याओं का पता लगाकर उसका समाधान ढूँढने का प्रयास किया जाता है।
6. अधिकारिक दृष्टिकोण पर आधारित होता है।	6. जनतंत्रात्मक दृष्टिकोण पर आधारित होता है।
7. प्राचीन एवं विकास शून्य कार्यक्रमों में विश्वास करने वाला दृष्टिकोण है।	7. नवीन आयामों, अनुसंधानों तथा प्रोत्साहनात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है।
8. आत्मनिष्ठ एवं पक्षपाती होने की सम्भावना बनी रहती है।	8. विश्वसनीय निष्पक्ष एवं वस्तुनिष्ठ क्रिया है।
9. अधिकारियों पर विश्वास एवं आधिनस्थों पर अविश्वास रखने वाला दृष्टिकोण है।	9. प्रबन्धकों सहित कर्मचारियों पर भी विश्वास रखने वाला दृष्टिकोण है।
10. केवल कार्य-समाप्ति पर ध्यान, कर्मचारी रूचि, रचनात्मकता आदि के बारे में विचार नहीं करता।	10. संगठन उद्देश्यों की प्राप्ति के साथ-साथ कर्मचारी रूचि, सृजनात्मकता, रचनात्मकता एवं मौलिकता को प्रभावी बनाने पर भी जोर देता है।

9.6 पर्यवेक्षक के गुण

प्रभावी शैक्षिक पर्यवेक्षक के गुण (Attributes of an effective educational supervisor):

अपनी भूमिकाओं के निर्वहन हेतु पर्यवेक्षक में कुछ महत्वपूर्ण कौशल अथवा गुण आवश्यक रूप से होने चाहिए। प्रो० राबर्ट काहन के अनुसार पर्यवेक्षक के गुणों को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है जो निम्नलिखित हैं-

1. मानवीय गुण (Human Attribute): लोगों के साथ कार्य करना और सहयोग स्थापित करना पर्यवेक्षक के समक्ष एक बड़ी चुनौती होती है। मानवीय गुण का सम्बन्ध अन्य लोगों के साथ कार्य करने एवं

उनके माध्यम से कार्य करवाने एवं समूह के सदस्य के रूप में प्रभावी व्यवहार करने से होता है। निम्नलिखित मानवीय सम्बन्धों के माध्यम से पर्यवेक्षक में उचित मानवीय गुणों का विकास किया जा सकता है-

1. प्रत्येक व्यक्ति का उसके गुणों के आधार पर मूल्यांकन करना।
2. आधिनस्थों के व्यवहारों से पहले प्रवरों के व्यवहारों का विश्लेषण करना।
3. कर्मचारियों का उत्तम प्राप्त करने हेतु समूह सदस्यों के साथ मधुर एवं सहयोगी सम्बन्ध स्थापित करना।
4. समूह सदस्यों को नीतियाँ निर्धारण में सहभागी बनाना।
5. समान लक्ष्य हेतु क्रिया करना एवं समूह क्रियाओं में सुधार लाना।
6. समस्या समाधान हेतु वस्तुनिष्ठ ढंग से सोचना।
7. आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करने के साथ-साथ स्पष्ट रूप से निर्देश देना।

2. तकनीकी गुण (Technical Attribute): किसी विशेष कार्य के प्रदर्शन हेतु आवश्यक समझ एवं दक्षता का होना तकनीकी गुण से सम्बन्धित होता है। इस गुण से सम्बन्धित कुछ दिशानिर्देश निम्नलिखित हैं-

1. पर्यवेक्षित की जाने वाली विषय-वस्तु से जुड़ी आवश्यक दक्षता का ज्ञान होना।
2. कर्मचारियों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर उन्हें स्पष्ट रूप से कार्यभार प्रदान करना।
3. व्यवस्था का ज्ञान, क्रियाविधियाँ, सामग्रियों, उपकरणों की विशेष जानकारी का होना।
4. लक्ष्यों की उचित दिशा में प्राप्ति हेतु आवश्यक सहयोग एवं सहभागी वातावरण निर्मित करना।

3. सम्प्रत्ययात्मक गुण (Conceptual Attribute): संगठन को एक सम्पूर्ण के रूप में देखना और सम्बन्धों को इसका एक भाग मानना सम्प्रत्ययात्मक गुण से सम्बन्धित होता है। इन गुणों के विकास हेतु आवश्यक दिशा निर्देश निम्नलिखित हैं-

1. सम्पूर्ण दशा को उसके वृहद आयामों के रूप में देखना।
2. संस्थान की विभिन्न क्रियाओं के सन्दर्भ में दूरदर्शिता अपनाना एवं एक भाग में होने वाला परिवर्तन किस प्रकार दूसरे भाग एवं सम्पूर्ण संस्थान को प्रभावित करता है उसकी भविष्यवाणी करना।
3. सम्पूर्ण परिदृश्य को देखने की योग्यता, वृहद दृष्टिकोण एवं मित्रतापूर्ण अभिवृत्ति पर्यवेक्षण को प्रभावी बनाती है।
4. प्रत्येक विभाग की विभिन्न छोटी से छोटी क्रिया का अवधारणात्मक ज्ञान सम्पूर्ण संगठन की क्रियाओं को निर्धारित करने में योगदान देता है।

उपरोक्त तीन मुख्य गुणों के अतिरिक्त एक प्रभावी पर्यवेक्षक हेतु कुछ अन्य गुणों का होना भी आवश्यक माना जाता है, जो अग्रलिखित हैं-

1. नेतृत्व प्रदान करना।
2. सम्बन्धित व्यक्तियों की कार्यक्षमता में वृद्धि के माध्यम से विभागीय क्रियाओं एवं संस्थान लक्ष्यों की प्राप्ति में सहयोग देना।
3. शिक्षण-अधिगम व्यवस्था का पूर्ण अध्ययन कर शिक्षण अधिगम व्यवस्था में आवश्यक सुधार लाना।

4. शैक्षिक उत्पादनों में वृद्धि करना।

5. प्रत्येक कर्मचारी एवं विभाग को उसकी क्रियाओं हेतु पृष्ठपोषण प्रदान करना।

अतः उपरोक्त गुणों के माध्यम से एक पर्यवेक्षक की क्रियाओं को दक्ष एवं प्रभावी बनाया जाता है। पर्यवेक्षण जो मुख्य रूप से संस्थान लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं का मूल्यांकन होता है और शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षा क्षेत्र एवं शैक्षिक संस्थानों के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षकों, विद्यार्थियों की क्रियाओं एवं सम्पूर्ण विद्यालयी क्रियाओं का मूल्यांकन होता है, जिसे प्रभावी बनाने की दिशा में शैक्षिक पर्यवेक्षक के गुणों का प्रभावी होना भी आवश्यक होता है।

9.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पर्यवेक्षण क्या है? इसके अर्थ को स्पष्ट कीजिए।
2. पर्यवेक्षण के कौन-कौन से कार्य हैं?
3. पर्यवेक्षण कितने प्रकार का होता है?
4. एक कुशल पर्यवेक्षक में कौन-कौन से गुण आवश्यक हैं? इन गुणों की सूची बनाइए।

9.8 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तके

1. Terry, G.R. (1954). Principles of Management, Illinois, Richard, D. Trwin. Inc., Homewood.
2. Koontz, Harold & O' Donnel, Cyril. Essentials of Management, New York, Tata Mc. Graw Hill.
3. Rao, V.S.P. & Krishna, V. Hari (2002) Management : Text and cases, New Delhi, Excel Books.
4. Hughes, Richard L., Gennett, R.C. & Curphy, Gordon J. Leadership, Enhancing the lessons of Experience (Sixth edition) New York, Tata Mc Graw Hill.
5. Bhatnagar, R.P. (2010). Educational Administration. Meruth, International Publishing House.
6. Verma, J.P. (2008). Educational Management (4th edition). Jaipur Rajasthan Hindi Granth Academy.

इकाई 10: शैक्षिक नियोजन, व्यवस्था तथा पर्यवेक्षण कार्यक्रम संरचना

-
- 10.1 प्रस्तावना
 - 10.2 उद्देश्य
 - 10.3 शैक्षिक नियोजन का अर्थ
 - 10.4 शैक्षिक नियोजन का महत्व
 - 10.5 शैक्षिक नियोजन के उद्देश्य
 - 10.6 नियोजन के महत्वपूर्ण घटक
 - 10.6.1 संस्थागत योजना में प्रधानाचार्य की भूमिका
 - 10.6.2 संस्थागत योजना में अध्यापक की भूमिका -
 - 10.6.3 संस्थागत योजना में छात्रों का योगदान
 - 10.6.4 संस्थागत योजना बनाने के आधारभूत सिद्धान्त
 - 10.7 शैक्षिक नियोजन के प्रकार
 - 10.7.1 भारतीय शिक्षा-नियोजन की विशेषताएँ
 - 10.8 शिक्षा नियोजन की प्रक्रिया
 - 10.9 शिक्षा व्यवस्था
 - 10.10 शिक्षा पर्यवेक्षण
 - 10.11 सारांश
 - 10.12 शब्दावली
 - 10.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
 - 10.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
 - 10.15 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
 - 10.16 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

संस्थागत योजना एक विस्तृत बहुमुखी कार्य-योजना है जो संस्था की कर्मियों और खराबियों पर प्रहार करती है। यह एक ऐसा कार्यक्रम प्रस्तुत करती है जो वांछित शैक्षिक उपलब्धियों को प्राप्त करने के उपायों को ढूँढने में सहायता देती है। इस कार्यक्रम में संस्था के वे समस्त क्रियाकलाप शामिल हैं, जिनसे संस्था का सर्वांगीण

विकास होता है। इस प्रकार की योजना को तैयार करने में प्रधानाध्यापक अपने सभी सहयोगियों की मदद लेता है, जिससे योजना का विस्तृत स्वरूप बन सके।

संस्थागत योजना का आधार है योजना किसी एक की नहीं, सभी की है, 'मानवी साधन भौतिक साधनों से बड़ा है', जो है उसका पूरा इस्तेमाल किया जाए', उन्नति की गुंजाइश हमेशा रहती है। 'किंचितमात्र ही सही, कल को आज से आगे बढ़ना है'।

प्रो० एम०बी० बुच ने संस्थागत नियोजन को इस प्रकार परिभाषित किया है- "संस्थागत योजना उन कार्यक्रमों का समुच्चय है जिनको संस्था द्वारा अपनी अनुभूत आवश्यकताओं तथा निज के उपलब्ध एवं भविष्य में उपलब्ध संसाधनों के आधार पर तैयार किया जाता है। संस्था इन कार्यक्रमों का निर्धारण विद्यालय के स्तरों तथा व्यवहारों को उन्नत बनाने तथा संस्था के भावी विकास के सन्दर्भ में करती है।"

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती है-

1. संस्थान योजना शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों को पूरा करने का एक साधन है।
2. संस्थान योजना के निर्माण के लिए माननीय तथा भौतिक संसाधनों का ज्ञान आवश्यक है।
3. उपलब्ध संसाधनों का, जो संस्था व समुदाय में उपलब्ध है, अधिकतम सीमा तक प्रयोग हो।
4. यह योजना दीर्घकालीन भी हो सकती है और अल्पकालीन भी।

शिक्षा में प्रगति तभी सम्भव है जब उपलब्ध साधनों, सामग्री तथा सुविधाओं के आधार पर शैक्षिक योजनाओं का निर्माण किया जाये तथा उन योजनाओं को कार्यरूप में परिणत कराने के लिए कुशल प्रशासन की व्यवस्था हो। शिक्षा-प्रशासन और शैक्षिक नियोजन के तालमेल से ही शैक्षिक प्रगति सम्भव है। दोनों के सन्तुलित समन्वय से कार्य-कुशलता तथा क्षमता में वृद्धि होती है। अतः इस दृष्टि से शैक्षिक नियोजन के विषय में अध्ययन करना आवश्यक है।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त

1. आप शैक्षिक नियोजन का अर्थ बता सकेंगे।
2. नियोजन के अर्थ को विभिन्न परिभाषाओं की सहायता से व्यक्त कर सकेंगे।
3. शैक्षिक नियोजन का महत्व विस्तार से समझा सकेंगे।
4. शिक्षा के अर्थ को विभिन्न परिभाषाओं की सहायता से व्यक्त कर सकेंगे।
5. शैक्षिक नियोजन के उद्देश्य जान सकेंगे।
6. संस्थागत योजना में प्रधानाचार्य, अध्यापक, तथा छात्रों महत्वपूर्ण भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।

7. शैक्षिक नियोजन के प्रकार की व्याख्या कर सकेंगे।
8. शिक्षा नियोजन की प्रक्रिया से अवगत हो सकेंगे।
9. नियोजन का शिक्षा के साथ निहित सम्बन्ध को स्पष्ट कर सकेंगे।
10. शिक्षा व्यवस्था और शिक्षा पर्यवेक्षण का अर्थ समझ सकेंगे।

10.3 शैक्षिक नियोजन का अर्थ

किसी भी देश के लिए यह परम आवश्यक है कि वह आगे आने वाली पीढ़ी की शिक्षा की उचित व्यवस्था करे तथा शैक्षिक योजना इस प्रकार तैयार करे कि उससे प्रत्येक स्तर पर शिक्षा का संख्यात्मक तथा गुणात्मक दोनों ही प्रकार का विकास सम्भव हो सके। शैक्षिक नियोजन द्वारा ही शिक्षा को विकास की ओर ले जाया जाता है। अतः इस दृष्टि से शैक्षिक नियोजन का अर्थ जानना आवश्यक है। शैक्षिक नियोजन का अर्थ है- किसी सत्ता द्वारा प्रमुख शैक्षिक निर्णय करने की ऐसी क्रिया जिनमें समस्त शैक्षिक एवं आर्थिक व्यवस्था के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर यह निर्णय लिया जाता है कि शिक्षा प्रत्येक स्तर पर कैसे, कौन-सी, कितनी तथा किस रूप में दी जाये एवं उसका प्रचार किन लोगों के बीच में किया जाये? शैक्षिक नियोजन राज्य की एक सुसंगठित एवं सुसम्बन्धित (कोऑर्डिनेटेड) प्रक्रिया है जो कुछ निश्चित उद्देश्यों को विशिष्ट समय में पूरा करने के लक्ष्य से स्थानीय स्वायत्त शास्त्र अथवा राज्य सरकार या केन्द्रीय शासन द्वारा नियन्त्रित होती है। शैक्षिक नियोजन का अर्थ शैक्षिक कार्य को ऐसी व्यवस्था देने से है जिसमें उपलब्ध साधनों एवं सामान का विशेष महत्व रहता है। साधन एवं सामग्री की दृष्टि से जब आर्थिक योजना में शिक्षा विकास का कार्यक्रम भी समन्वित कर लिया जाता है तो इसे शिक्षा का समग्र नियोजन (ओवर-ऑल प्लानिंग) कहा जाता है। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा का इसी प्रकार का नियोजन कर उसे सम्पूर्ण विकास योजना का एक महत्वपूर्ण अंग बना लिया गया है। स्पष्ट है कि शैक्षिक नियोजन का अर्थ शैक्षिक विकास हेतु उपलब्ध साधनों एवं सामग्री का अधिकतम उपयोग इस प्रकार से करना है कि एक निर्धारित समय में शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके। शिक्षा नियोजन देश में आर्थिक साधनों के द्वारा देश को शैक्षणिक सुविधाओं तथा अवसरों को प्रदान करने तथा इस दिशा में आर्थिक साधनों का अधिकतम उपयोग करने का माध्यम है।

10.4 शैक्षिक नियोजन का महत्व

शिक्षा के विकास की दृष्टि से शैक्षिक नियोजन का विशेष महत्व है वेबस्टर शब्दकोश के अनुसार-नियोजन वह कार्य या प्रक्रिया है जो योजनाओं का क्रियान्वयन करता है (Planning in an act or process of making or arranging our plans.) योजना पूर्व निश्चित कौशलों का निर्धारण है। उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यह गहन कार्यक्रमों का संयोजन है।

हैंगमैन तथा स्कार्टर्ज के शब्दों में - “नियोजन विकल्पों में से चयन करता है। यात्रा करने से पूर्व रास्ते का चयन करता है, कार्य के सम्भावित या होने वाले परिणामों की कल्पना करता है और इसका संगठन किसी भी व्यक्ति के प्रति वांछित होता है”।

(Planning selects among alternatives. explores routes before travel begins and identifies possible or probable outcomes of action before the executive and his organization.) - Hartan H.L Hagman and Alfred Schwartz

शिक्षा एक ऐसा तत्व है जिसके द्वारा राष्ट्र का विकास होता है। सभी प्रगतिशील राष्ट्रों का विकास का आधार वहाँ की शिक्षा-प्रणाली ही रही है। इस दृष्टि से शैक्षिक नियोजन का महत्व किसी से छिपा नहीं है। शैक्षिक नियोजन का महत्व निम्न बातों के आधार पर विचार करने से अधिक स्पष्ट होता है-

1. शिक्षा के विकास में मानवीय साधनों अथवा कर्मचारियों का उपयुक्त प्रयोग कर सकना जिससे शिक्षा विकास की ओर उन्मुख हो सके।
2. उपलब्ध आर्थिक सामाजिक तथा राजनीतिक साधनों तथा सामग्री का शिक्षा-विकास हेतु प्रयोग कर सकना जिससे उनका अपव्यय न हो।
3. शिक्षा के प्रत्येक स्तर में विकास की दृष्टि से सन्तुलन बनाये रखना जिससे सभी स्तरों पर शिक्षा अवसरों की समानता के आधार पर दी जा सके।
4. शिक्षा-विकास हेतु मानव की सृजनात्मक शक्ति, आलोचनात्मक, गुणग्राहित और सांस्कृतिक तथा अभिरुचियों का प्रयोग करके कला, साहित्य, विज्ञान एवं संस्कृति का विकास करना जिससे व्यक्ति और समाज दोनों ही एक साथ विकास के मार्ग पर आगे बढ़ सके।
5. शिक्षा में संख्यात्मक विकास के साथ ही गुणात्मक विकास करना जिससे सही व्यक्ति को सही शिक्षा मिल सके।
6. राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों के विकास के लिए शैक्षिक नियोजन पर गम्भीर रूप से विचार करना जिससे अधिकतम लोगों का अधिकतम विकास किया जा सके।
7. समाज की आकांक्षाओं, परम्पराओं और आदर्शों को संरक्षण मिलना जिससे भारतीय विकास की कल्पना को साकार रूप दिया जा सके।
8. आर्थिक, व्यवसायिक, तकनीकी, सांस्कृतिक एवं सामाजिक आदि क्षेत्रों में योग्य नेतृत्व प्रदान कर सकना, जिससे उपर्युक्त सभी क्षेत्रों में विकास किया जा सके।
9. शिक्षा-प्रणाली में सुधार लाना जिससे समूची शिक्षा-प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिक रूप दिया जा सके।
10. देश में व्याप्त समूची शिक्षा-प्रणाली को सुनिश्चित स्वरूप प्रदान करना जिससे उसमें क्रमबद्धता, व्यवस्था तथा तारतम्यता लायी जा सके।

आइये अब शैक्षिक नियोजन का महत्व जानने के उपरान्त हम जाने कि शैक्षिक नियोजन के उद्देश्य क्या हैं।

10.5 शैक्षिक नियोजन के उद्देश्य

शिक्षा नियोजन के अनेक रूपों में देखा जाता है, जैसे- सामान्य रूप में साधन जुटाना, भविष्य की आवश्यकताओं का आकलन, शिक्षण के कार्यों को प्रोत्साहन तथा नई पीढ़ी के निर्माण हेतु उद्देश्यों का निर्धारण करना, बढ़ती जनसंख्या, जन-शक्ति का उपयोग परिस्थितियाँ, बाधाएँ, वैज्ञानिक साधनों का उपयोग आदि का निर्धारण ही शैक्षिक योजना हैं। प्रशासनिक दृष्टि से शैक्षिक नियोजन के कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं

1. शिक्षा का विकास करने हेतु एक निश्चित दिशा निर्धारित करना तथा साधनों का जुटाना।
2. देश की राजनीतिक एवं सामाजिक प्रगति हेतु आवश्यकतानुसार शिक्षा का स्वरूप निर्धारित करना
3. देश की आर्थिक प्रगति होने तथा आत्मनिर्भर बनने की दृष्टि से शिक्षा का योगदान निश्चित करना।
4. देश की सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक प्रगति में शिक्षा की भूमिका तैयार करना तथा उस भूमिका को निभाने हेतु दिशा निर्धारित करना।
5. शिक्षा-प्रशासन में उपयोगी एवं आवश्यक परिवर्तन लाकर निर्धारित शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रयास करना।
6. शैक्षिक क्रियाओं, गतिविधियाँ, योजनाओं तथा प्रयासों को अधिक प्रभावी और गतिशील बनाना।

10.6 नियोजन के महत्वपूर्ण घटक-

नियोजन के अर्थ को विस्तारपूर्वक जानने के लिए अंग्रेजी भाषा में चसंददपदह के एक-एक अक्षर से जुड़े अर्थ को नीचे दिया जा रहा है -

P – Stands for Purpose (उद्देश्य)

Stands for Policies (नीतियाँ)

Stands for Private and Public Participation (निजी तथा सरकार की भागीदारी)

Stands for Perspective (दृश्यधार योजना)

L - Stands for Long and Short Term Plan (दीर्घकालीन तथा लघुकालीन)

Legislation (कानून अथवा नियम) बनाना

Liaism (समन्वय) स्थापित करना।

A- Stands for Administrative Structure (प्रबन्धात्मक ढाँचा)

- Stands for Advisory Bodies (सलाहकार संस्थाएं)
- Stands for Appraisal (समीक्षां)
- N- Stands for National Development (राष्ट्रीय विकास/शैक्षिक विकासं)
- Stands for National Income (राष्ट्रीय आय)
- Stands for Needs (आवश्यकताएं)
- Stands for Data (आँकड़े)
- I- Stands for Investment (निवेश)
- Stands for Indigenous resources (स्थानीय संसाधन)
- N- Stands for New Priorities (नई मांगे)
- Stands for Nomenclature of Structure (ढाँचे की आकृति)
- G- Stands for Gross Domestic Product (समग्र घरेलू उत्पादन)
- Stands for National Product (समग्र राष्ट्रीय उत्पादन)
- Stands for GNP per capita income (प्रति व्यक्ति समग्र आय)

संस्थागत योजना में प्रधानाचार्य, अध्यापक, छात्रों तथा समुदाय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आइये जाने -

10.6.1 संस्थागत योजना में प्रधानाचार्य की भूमिका -

प्रधानाचार्य अपने स्कूल की कमजोरियों तथा अच्छाइयों का पूरा जायजा ले। अध्यापकों को विद्यालय-सुधार के लिए प्रेरित करे और स्कूल-सुधार की सुनियोजित योजना तैयार करे। उसके लिए आवश्यक है कि वह निम्नलिखित बातों पर विशेष बल दे-

1. सबसे पूर्व वह अपने सहयोगी अध्यापकों के साथ व्यक्तिगत परामर्श करे और फिर सामूहिक रूप से परामर्श करे। अध्यापक सभा में उस संस्थागत योजना की आवश्यकता लाभ तथा कार्य-प्रणाली पर प्रकाश डाले। अध्यापकों द्वारा बताये गये सुझावों को ध्यान में रखे और उन पर उचित विचार करे।
2. स्कूल की आवश्यकताओं का सर्वेक्षण किया जाये। देखा जाये कि विद्यालय में किन-किन क्षेत्रों में सुधार होना चाहिए। अध्यापकों को इस प्रकार के सर्वेक्षण का कार्य बाँट दिया जाए ताकि वे भी अपने आपको उतना ही उत्तरदायी समझें।

3. स्कूल तथा स्थानीय साधनों का सर्वेक्षण किया जाये। विशेषकर यह देखा जाये कि स्कूल में कौन-कौन से साधन विद्यमान है।
4. स्कूल-सुधार कार्यक्रम को दो भागों में बांटा जाये, थोड़े समय के लिए तथा दीर्घकाल के लिए।
5. प्रत्येक अध्यापक को निश्चित कार्य दिया जाये।
6. स्कूल सुधार कार्यक्रम के पूरा होने पर उसका उचित मूल्यांकन किया जाये।
7. प्रधानाचार्य प्रत्येक अध्यापक से एक जैसे फल की आशा न रखे। वह भली-भांति समझ लें कि प्रत्येक अध्यापक की कार्य करने की क्षमता भिन्न होती है।
8. प्रधानाचार्य किसी अन्य स्कूल द्वारा बनाई गई स्कूल-सुधार योजना का अन्धाधुन्ध अनुकरण न करे। वह भली-भांति समझ लें कि प्रत्येक स्कूल की अपनी स्थिति होती है।
9. प्रधानाचार्य समस्त स्कूल समुदाय को इस कार्य में सम्मिलित करने का प्रयास करें।
10. स्कूल सत्र के आरम्भ होने से पूर्व स्कूल-योजना तैयार कर ली जाए।
11. स्कूल-योजना बनाते समय प्रधानाचार्य विभागीय अधिकारियों से विचार-विमर्श करें ताकि योजना विभागीय योजना का अंग बन सके।

10.6.2 संस्थागत योजना में अध्यापक की भूमिका -

संस्थागत योजना बनाने तथा कार्यरूप देने में अध्यापकों का विशेष स्थान है। अध्यापक ही इन ढाँचे के आधार-सतम्भ हैं। उन्हें ही छात्रों तथा उनके अभिभावकों का सहयोग प्राप्त करना है और स्कूल-सुधार आन्दोलन में उन्हें प्रेरित करके उनकी समस्त शक्तियों का अधिकतम लाभ उठाना है। उन्हें स्कूल के समस्याओं पर व्यक्तिगत तथा सामुहिक रूप से चिन्तन करना है। वे स्कूल की तथा अपनी खामियों से भली-भांति परिचित हैं। वे जानते हैं कि छात्रों की कमजोरियाँ कौन सी हैं और उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है। अध्यापकों को इस कार्य में उत्साह दिखाना चाहिए और मिलजुल कर कार्य करना चाहिए तथा अपना दृष्टिकोण विशाल रखना चाहिए।

10.6.3 संस्थागत योजना में छात्रों का योगदान -

संस्थागत योजना के अन्तर्गत कई ऐसे कार्य भी हैं जिनमें छात्रों का सहयोग अत्यन्त वांछनीय है। वास्तव में यदि देखा जाए तो प्रत्येक कार्य में छात्र हाथ बाँटा सकते हैं। अतः यह आवश्यक है कि छात्रों को स्कूल-सुधार आन्दोलन में प्रेरित किया जाए।

बोध प्रश्न - 1

- 1 स्कूल सुधार कार्यक्रम के पूरा होने पर उसका उचित किया जाये।

2 संस्थागत योजना में प्रधानाचार्य, अध्यापक, छात्रों तथा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

10.6.4 संस्थागत योजना बनाने के आधारभूत सिद्धान्त

1. प्रत्येक स्कूल को अपनी जरूरत, अपने रहन-सहन, अपने तौर-तरीके के अनुसार ही अपनी योजना बनानी चाहिए और उसे कार्यान्वित करना चाहिए।
2. प्रत्येक अध्यापक में यह क्षमता है कि वह किसी भी परिस्थिति में हो, अपनी बुद्धि और कुशलता से साधनों का सृजन कर सकता है और अपनी परिस्थिति में किंचित सुधार कर सकता है।
3. प्रत्येक कार्यकर्ता के मष्तिष्क में किसी भी कार्य को करने की एक योजना बनती है। जितना ही वह कार्यकर्ता प्रतिभावन होता है, उतनी ही वह योजना स्पष्ट होती है। जितनी ही योजना स्पष्ट होती है, उतना ही प्रबल उसका प्रबन्धन उस कार्यकर्ता पर होता है।
4. योजना का आधार स्थानीय सामग्री हो।

10.7 शैक्षिक नियोजन के प्रकार

शिक्षा-नियोजन विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। दूसरे कोई भी नियोजन हो वह एक विशिष्ट लक्ष्य को लेकर तैयार किया जाता है। शैक्षिक परिस्थितियों, लक्ष्यों एवं विभिन्न कार्यक्रमों के आधार पर शैक्षिक नियोजन भी कई प्रकार के होते हैं। नीचे शैक्षिक नियोजन के कुछ प्रमुख प्रकारों का आप अध्ययन करेंगे-

1. स्वतन्त्र नियोजन - प्रजातान्त्रिक ढंग से शैक्षिक योजना को स्वतन्त्र रूप से तैयार करना और फिर आवश्यकतानुसार परिस्थितियों के अनुकूल उसमें सुधार करना स्वतन्त्र नियोजन कहलाता है। इसके अनुसार योजना की विस्तृत भूमिका तैयार करके उसे जन-समूह, विशेषज्ञों तथा सम्बन्धित व्यक्तियों के सम्मुख विज्ञापन के विभिन्न स्रोतों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। जिससे उनके विचारों के आधार पर उसमें सुधार करके योजना को निश्चित रूप दिया जा सके और कार्यान्वित किया जा सके।

2. उद्देश्ययुक्त नियोजन- कोई भी योजना उद्देश्य विहीन नहीं होती किन्तु कुछ योजनाएँ ऐसी होती हैं जो किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति करने हेतु ही बनायी जाती हैं और लक्ष्य की पूर्ति होते ही उद्देश्यों में परिवर्तन होने पर योजना में भी परिवर्तन होता जाता है। ऐसी योजनाएँ उद्देश्यों में परिवर्तन होने पर योजना में भी परिवर्तन हो जाता है। ऐसी योजनाएँ उद्देश्य केन्द्रित कहलती हैं। इन योजनाओं का स्वरूप उद्देश्यों के आधार पर निर्धारित होता है, किन्तु उद्देश्यो में परिवर्तन होता रहता है। अतः ऐसी योजनाएँ परिवर्तनशील होती हैं। यदि उद्देश्य निश्चित होते हैं तो योजनाओं में भी निश्चितता रहती है। शिक्षा के उद्देश्य आवश्यकताओं, साधनों, सामर्थ्य तथा सुविधाओं के आधार पर निर्धारित होते हैं। अतः उद्देश्ययुक्त योजनाओं का आधार भी आवश्यकताएँ, उपलब्ध साधन एवं सुविधाएँ आदि ही हैं।

3. दीर्घकालीन नियोजन - जब अवधि के आधार पर योजना तैयार की जाती हैं तो समय के अनुसार नियोजन को रूप दिया जाता है। प्रायः पाँच वर्ष से अधिक या दस, पन्द्रह अथवा तीस वर्षों के लिए तैयार की गयी योजना को दीर्घकालीन नियोजन कहते हैं। दीर्घकालीन नियोजन का लक्ष्य अत्यन्त ही गहरा होता है और उस लक्ष्य तक पहुंचने में लगने वाला समय भी काफी लम्बा रहता है। दीर्घकालीन नियोजन में अधिक दक्षता, दूरदर्शिता और चतुराई की आवश्यकता होती है। इसकी कार्यान्वित एक लम्बे समय तक चला करती है। शिक्षा की नीतियों तथा कार्यक्रमों को लागू करने एवं शिक्षा का विकास करने हेतु दीर्घकालीन शैक्षिक नियोजन का निर्माण किया जाता है।

4. अल्पकालीन नियोजन - जब छोटी-सी अवधि के लिए योजना तैयार की जाती है तो उसे अल्पकालीन नियोजन कहते हैं। प्रायः एक से पाँच वर्ष के लिए निर्मित योजना को अल्पकालीन नियोजन कहते हैं। अल्पकालीन नियोजन में छोटी-छोटी शीघ्र पूर्ण होने वाली योजनाएँ रहती हैं। ऐसी योजनाओं का लक्ष्य कम समय में पूरा हो जाता है। विद्यालय की प्रगति हेतु अल्पकालीन नियोजन का निर्माण कराना आवश्यक है। जिसमें उसकी प्रगति प्रत्येक क्षेत्र में कम समय में हो सके।

5. गतिशील नियोजन - गतिशील नियोजन में परिस्थितियों, आवश्यकताओं तथा साधनों के अनुसार गति लाने की दृष्टि से परिवर्तन कर सकने वाली योजनाएँ सम्मिलित रहती हैं। इस प्रकार के नियोजन लचीले होते हैं और विकास एवं प्रगति की दृष्टि से अधिक उपयोगी होते हैं। शिक्षा के अनेक पहलू गतिशील नियोजन के आधार पर ही विकसित होते हैं। शिक्षा के छोटे स्तर से लेकर बड़े स्तर तक इस प्रकार के नियोजन निर्मित करके लाभ उठाया जा सकता है।

6. स्थिर नियोजन - शिक्षा की ऐसी योजनाएँ जिनका निर्माण करने के बाद परिवर्तन करना दुरूह हो, स्थिर नियोजन के अन्तर्गत आती हैं। ऐसी योजनाएँ स्वभाव से कठोर और शीघ्र लाभ देने वाली नहीं होती हैं। गतिशील नियोजन की तुलना में स्थिर नियोजन अधिक उपयोगी तथा लाभप्रद सिद्ध नहीं होते हैं।

7. शिक्षा की सभी शाखाओं के विकास हेतु नियोजन - जब शिक्षा की विभिन्न शाखाओं का एक साथ विकास करने की दृष्टि से योजना निर्मित होती है तो उसे शिक्षा की सभी शाखाओं का विकास हेतु नियोजन कहते हैं। इसके अन्तर्गत पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालय, टेक्नीकल शिक्षा और महिलाओं, अपंगों एवं समाज शिक्षा से सम्बन्धित पहले अलग-अलग योजनाएँ बनायी जाती हैं और तदुपरान्त सबको विकास की दृष्टि से एक साथ जोड़कर एक समन्वित विस्तृत योजना तैयार की जाती है। इस प्रकार की योजना से सबसे बड़ा लाभ यह है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शैक्षिक प्रगति की स्थिति तथा विकास की गति सरलता से ज्ञात हो जाती है।

8. आवश्यकता पर आधारित नियोजन- प्रत्येक देश की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। अतः शिक्षा-योजना भी प्रत्येक देश की अलग-अलग होती है। अनेक पिछड़े देश की शिक्षा-योजना को आधार बनाकर उसमें स्वयं की आवश्यकताओं, साधनों, सामग्री तथा सुविधाओं के अनुसार परिवर्तन करके प्रगति

हेतु योजनाएँ बनती हैं। ऐसी योजनाओं का प्रमुख आधार आवश्यकताएँ ही होती हैं जिससे उन्हें आवश्यकताओं पर आधारित नियोजन कहा जाता है।

9. साधन पर आधारित नियोजन - ऐसी योजनाएँ जो वित्तीय व्यवस्था, मानवीय साधनों एवं उपलब्ध सुविधाओं को आँकने के पश्चात् तैयार की जाती हैं, उन्हें साधन आधारित नियोजन कहते हैं। ऐसी योजनाओं को उपलब्ध साधनों के आधार पर प्राथमिकता देकर कार्यान्वित किया जाता है। इस प्रकार की योजनाओं में धन की पर्याप्त व्यवस्था करना आवश्यक है।

10. क्षेत्रीय नियोजन - जब क्षेत्रीय आधार पर शिक्षा नियोजन किया जाता है तो उसे क्षेत्रीय नियोजन कहते हैं। क्षेत्रीय नियोजन स्थानीय स्तर पर जिले स्तर पर, सम्भागीय स्तर पर, राज्य स्तर पर तथा केन्द्रीय स्तर पर निर्मित किये जाते हैं। क्षेत्रीय योजनाओं का निर्माण क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं, परिस्थितियों तथा साधनों के आधार पर किया जाता है। भारत एक ऐसा विशाल देश है जहाँ विभिन्न क्षेत्र की भाषाओं, आवश्यकताओं, नियमों एवं परिपाटियों, साधनों तथा उपकरणों में विभिन्नता पायी जाती है। अतः इस दृष्टि से शैक्षिक विकास हेतु क्षेत्रीय नियोजन करना उपयोगी सिद्ध होगा। भारत में क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय (रीजनल कॉलेज ऑफ एजुकेशन) तथा यान्त्रिक शिक्षा (टैक्नीकल एजुकेशन) की चार-चार संस्थाएँ क्षेत्रीय नियोजन के आधार पर कार्य कर रही हैं।

11. प्रशासकीय नियोजन - शिक्षा-प्रशासन का सम्बन्ध निरीक्षण, पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण से अधिक रहता है। अतः प्रशासनिक दृष्टि से निरीक्षण करने, पर्यवेक्षण करने तथा नियंत्रण रखने सम्बन्धी जो भी योजना तैयार की जाती है उसे प्रशासकीय नियोजन के अन्तर्गत ही माना जाता है। प्रशासनिक नियोजन के अन्तर्गत व्यवस्था सम्बन्धी शैक्षिक समस्याओं का निवारण करने सम्बन्धी तथा शैक्षिक विकास करने सम्बन्धी बात पर भी योजनाएँ तैयार की जाती हैं।

12. वित्त नियोजन - शैक्षिक नियोजनाओं में वित्त नियोजन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वगैर वित्त के कोई भी योजना सफल नहीं हो सकती है। शिक्षा की कोई भी योजना हो जब तक उस योजना को वित्तीय योजना के आधार पर तैयार न किया गया हो तो सारा श्रम व्यर्थ चला जायेगा और यथार्थ में उसे क्रियान्वित भी नहीं किया जा सकता है। शिक्षा के कार्यक्रमों, क्रियाओं, योजनाओं, शैक्षिक प्रयासों के लिए कितना धन चाहिए? शैक्षिक आय के कौन-कौन से साधन व स्रोत हैं? शैक्षिक व्यय की कौन सी मर्दे हैं? आदि प्रश्नों पर जब तक वित्त नियोजन के अन्तर्गत विचार न किया जायेगा तब तक किसी भी शिक्षा नियोजन की कल्पना करना व्यर्थ है।

13. सांख्यिकीय नियोजन - शिक्षा के गुणत्मक विकास करने के साथ ही संख्यात्मक विकास पर भी विचार करना आवश्यक है। इसके अन्तर्गत छात्रों, शिक्षकों, विद्यालयों, शिक्षा-प्रशासकों, निरीक्षकों, पर्यवेक्षकों तथा कर्मचारियों की संख्या आदि पर विचार करके योजनाएँ तैयार की जाती हैं। संख्यात्मक विकास के अन्तर्गत विद्यालय-भवन, प्रयोगशालाएँ, ग्रन्थालय, फर्नीचर, उपकरण एवं अन्य साधन भी आ जाते हैं जिनकी व्यवस्था

हेतु योजनाएँ तैयार की जाती हैं। देश की जनसंख्या के अनुपात में ही सम्पूर्ण शैक्षिक योजना तैयार की जाती है जिससे सभी को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर उपलब्ध हो सकें। शिक्षा में संख्यात्मक विकास की आवश्यकता के कारण ही गुणात्मक, प्रशासकीय एवं वित्त नियोजन के स्वरूप निर्धारित किये गये हैं। शिक्षा-नियोजन का कोई भी स्वरूप क्यों न हो, जब तक उनमें पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार करके सम्पूर्ण योजना तैयार नहीं की जाती हो तब तक निर्धारित लक्ष्यों की उपलब्धि नहीं की जा सकती है।

नियोजन के प्रकार जानने के बाद आइए अब हम भारतीय शिक्षा नियोजन की विशेषताओं का अध्ययन करें।

10.7.1 भारतीय शिक्षा-नियोजन की विशेषताएँ

प्रत्येक देश की अपनी शैक्षिक नियोजन की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं। भारतीय शिक्षा-नियोजन की भी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर भारत में शैक्षिक प्रगति होने की सम्भावना बनी हुई है। भारतीय शिक्षा-नियोजन की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. आर्थिक नियोजन के रूप में शिक्षा नियोजन - भारत में शिक्षा नियोजन, आर्थिक नियोजन के एक अंग के रूप में कार्य करता है। शैक्षिक नियोजन भारत की अर्थव्यवस्था पर अधिक आश्रित है। धनाभाव के कारण भारत में श्रेष्ठ शैक्षिक योजनाएँ भी फलीभूत नहीं हो पा रही हैं।
2. व्यक्ति व समाज दोनों का अधिकतम विकास होना - शैक्षिक नियोजन का स्वरूप भारत में इस प्रकार से निर्धारित करने का प्रयास किया जाता है कि उससे व्यक्ति और समाज दोनों का सन्तुलित विकास हो सके। देश में विभिन्न आर्थिक क्रियाओं का एकीकरण व्यक्ति एवं समाज दोनों के अधिकतम विकास को ध्यान में रखकर किया जाता है। शैक्षिक क्रियाओं एवं योजनाओं का भी लक्ष्य व्यक्ति एवं समाज दोनों का सन्तुलित विकास करना है।
3. देश में सांस्कृतिक प्रगति लाना - भारतीय शिक्षा नियोजन के अन्तर्गत देश की सांस्कृतिक प्रगति होने का लक्ष्य छिपा हुआ है। शैक्षिक नियोजन भारतीय संस्कृति को संरक्षण प्रदान करता है और आवश्यकता पड़ने पर उसका पुनर्निर्माण भी करता है।
4. सामाजिक परिवर्तन लाना - भारत में अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता तथा अज्ञानता छापी हुई है जिसे शैक्षिक नियोजन द्वारा दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। ताकि नवीन चेतना जाग्रत हो सके और समाज विकास की ओर उन्मुख हो सके।
5. देश में आर्थिक प्रगति लाना - भारतीय शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत भविष्य में आर्थिक प्रगति हो सकने की बात पर भी विचार किया जाता है। भारतीय समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करना तथा मानवीय साधनों को उपयोगी बनाना शैक्षिक योजनाओं का अनेक लक्ष्यों में से एक प्रमुख लक्ष्य है।

6. केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा समान रूप से रूचि लेना - भारत एक संघात्मक राज्य होते हुए भी एकात्मक है। अतः इस दृष्टि से शैक्षिक नियोजन में केवल राज्य सरकारें ही रूचि नहीं लेती वरन् केन्द्रीय सरकार भी समान रूप से रूचि ले रही है। शैक्षिक नियोजन में किसी क्षेत्र विशेष को महत्व न देकर सम्पूर्ण राष्ट्र को महत्व दिया जाता है।

7. स्थानीय आवश्यकताओं को प्रमुखता - भारतीय शैक्षिक नियोजन में यदि राष्ट्रीय स्तर की बातों को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है तो दूसरी ओर स्थानीय आवश्यकताओं की उपेक्षा भी नहीं की जाती है। शैक्षिक नियोजन में स्थानीय आवश्यकताओं, रूचियों तथा हितों पर विशेष रूप से विचार किया जाता है और स्थानीय शैक्षिक प्रगति हेतु प्रयास भी किये जाते हैं। यह उल्लेखनीय है कि स्थानीय प्रगति से लेकर राष्ट्रीय प्रगति हेतु केन्द्र व राज्य तथा स्थानीय सरकारों सहयोगी के रूप में कार्य करती हैं।

8. अल्पकालीन योजनाओं का निर्माण - भारत में शिक्षा का पर्याप्त विकास होना है। इस दृष्टि से पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत अनेक शैक्षिक अल्पकालीन योजनाएं कार्य कर रही हैं जिनके माध्यम से भारत में शैक्षिक प्रगति होना सम्भव प्रतीत होता है।

9. दीर्घकालीन योजनाओं का निर्माण - भारतीय शिक्षा नियोजन के अन्तर्गत अल्पकालीन योजनाओं के साथ ही दीर्घकालीन योजनाएं भी निर्मित हो रही हैं। दीर्घ एवं अल्पकालीन योजनाओं का एक साथ समावेश होना भारतीय शैक्षिक नियोजन की प्रमुख विशेषता है।

10. भारतीय अकांक्षाओं तथा आदर्शों का संरक्षण - भारतीय शैक्षिक नियोजन में भारतीय अकांक्षाओं आदर्शों एवं मान्यताओं को विशेष महत्व दिया जाता है जिससे भारतीय को किसी प्रकार की ठेस नहीं पहुंचती है।

10.8 शिक्षा नियोजन की प्रक्रिया

शिक्षा नियोजन की प्रक्रिया में उत्तम सिद्धान्तों का पालन किया जाना आवश्यक है 'इलिग्रट एवं मोजर, जे.बी'. सीयर्स ने सामान्य पक्ष, अनुसंधान, सतत, निश्चित, यथार्थ एवं व्यवहारिक सहभागिता तथा संशोधन जैसे पक्षों पर बल दिया है।

भारत में योजनाएं बनाने हेतु योजना आयोग की स्थापना सन् 1950 ई0 में की गयी थी जिसमें आठ सदस्य (मन्त्रिमण्डल के सदस्य, परामर्शदाता, विशेषज्ञ, प्रशासक आदि) सम्मिलित रहते हैं। आयोग का अध्यक्ष प्रधानमंत्री नीतियों का निर्धारण करना, विकास हेतु नवीन कार्यक्रम तैयार करना, धन की व्यवस्था कराना एवं उसे प्रत्येक मद पर व्यय करने हेतु वितरित करना तथा योजना क्रियान्वित होने पर उसका मूल्यांकन करके प्रगति हेतु सुझाव देना आदि है। योजना बनाने की प्रक्रिया का अध्ययन हम नीचे छः चरणों के अन्तर्गत करेंगे -

1. नियोजन तैयार करना - नियोजना का प्रारूप भावी आवश्यकताओं को आधार बनाकर उपलब्ध साधनों एवं सुविधाओं के आधार पर तैयार किया जाता है। नियोजना तैयार करते समय प्रारूप को लचीला बनाया जाता है जिससे उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सके। नियोजन का प्रारूप तैयार करके विचार-विमर्ष के उपरान्त प्रतिवेदन से सम्बन्धित निर्देशन देने के बाद विशेषज्ञों की बैठकों में उस पर गूढ़ विचार किया जाता है। विशेषज्ञों के अतिरिक्त शिक्षाविदों के पैनल नियुक्ति होते हैं जो शिक्षा की नीतियों को ध्यान में रखकर नियोजना के प्रत्येक पहलू पर कार्य दल (वर्किंग गुप्स) के रूप में शैक्षिक प्रगति को ध्यान में रखकर विचार करते हैं। कार्य दलों की सहायता हेतु केन्द्र एवं राज्य स्तर के शिक्षाधिकारी भी अपने कार्यक्रम और योजनाओं को विचारार्थ प्रस्तुत करते हैं जिसके आधार पर सम्पूर्ण देश अथवा राज्य विशेष की शिक्षा-प्रगति हेतु योजना तैयार की जाती है।

2. स्मरण-पत्र - विभिन्न कार्यदलों एवं कार्यक्रमों के आधार पर योजना आयोग एक स्मरण-पत्र (मेमोरेण्डम) तैयार करता है। जिसे राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष पुनः रखा जाता है। परिषद अपने मूल सुझावों के साथ उसे पुनः आयोग के पास विचारार्थ भेज देती है।

3. विधानसभा अथवा संसद की स्वीकृति - नियोजन के प्रारूप पर गहन विचार होने के बाद अन्तिम स्वरूप प्रदान किया जाता है। इसके उपरान्त उसे विधानसभा अथवा संसद की आवश्यक स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। राज्यों में विधानसभा तथा केन्द्र में संसद की स्वीकृति मिल जाने पर योजना को क्रमशः राज्यों एवं सम्पूर्ण देश में क्रियान्वित किया जाता है।

4. क्रियान्वयन - स्वीकृति योजना को केन्द्र में केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारें क्रियान्वित करती हैं। शिक्षा विभाग के अधिकारी एवं कर्मचारियों को आवश्यक निर्देश के साथ क्रियान्वयन के आदेश प्रसारित किये जाते हैं जिसके आधार पर योजनानुसार कार्य प्रारम्भ होता है।

5. मूल्यांकन - योजना की क्रियान्विति के पश्चात् उसका मूल्यांकन करना आवश्यक है। क्रियान्विति के समय उसके प्रत्येक पहलू पर कड़ी नजर रखी जाती है और प्राप्त अनुभवों एवं परिणामों के आधार पर योजना का समय-समय पर मूल्यांकन किया जाता है। मूल्यांकन के आधार पर यदि आवश्यक हो तो थोड़ा-सा परिवर्तन करके योजना को सफलतापूर्वक लागू करने का प्रयास किया जाता है। मूल्यांकन द्वारा योजना कितनी लाभप्रद है? उसमें कौन-कौन से संशोधन आवश्यक है? उसे लागू करने में कौन-कौन सी कठिनाइयाँ आ रही हैं? उन कठिनाइयों का निवारण किस प्रकार किया जा सकता है तथा उसे पूर्णरूपेण लागू करने में कितना समय लग सकता है? आदि बातों का पता हमें चला जाता है। मूल्यांकन का प्रमुख लक्ष्य योजना को सफलतापूर्वक लागू करना ही है।

10.9 शिक्षा व्यवस्था

“प्रशासन एक संगठन है और किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य एवं सामग्री का प्रयोग है। यह उन प्रबन्धकों का विशेष कार्य है जिनको संगठन में योग्यता प्राप्त है और जो मनुष्यों और सामग्री का उसी निपुणता

से प्रयोग करते हैं, जिसका इंजीनियर भवन-निर्माण में तथा डॉक्टर मनुष्य के रोग को निदान करने में प्रयोग करते हैं।”

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा प्रशासन, संचालन एवं संगठन का विशेष महत्व है। शैक्षिक प्रशासन के अभाव में शिक्षा प्रक्रिया का उचित संचालन करना संभव नहीं है। शैक्षिक प्रशासन का प्रत्यय नवीन होते हुए भी प्रारम्भ से ही इसका क्षेत्र निरन्तर विस्तृत होता जा रहा है। शिक्षा के अंगों में समन्वय स्थापित करने, राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्धारण करने के अतिरिक्त विद्यालय वातावरण में मानवीय सम्बन्धों का सार्थक उपयोग करने की दृष्टि से भी विद्यालय प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। इसके अभाव में शैक्षिक प्रक्रिया का सफलतापूर्वक सम्पन्न हो पाना नितान्त असम्भव ही है। यही कारण है कि प्रायः प्रत्येक देश की शैक्षिक व्यवस्था के अन्तर्गत शैक्षिक प्रशासन को विशिष्ट महत्व प्रदान किया जा रहा है।

व्यवस्था का अर्थ - मानव जीवन को अच्छा बनाने के लिये संघर्ष करता आया है, उसने अपनी कठिनाइयों को हल करने के लिये साधनों और स्रोतों का अधिकतम प्रयोग करने का प्रयास किया है साधनों तथा स्रोतों को समुचित रूप में प्रयोग करने को ‘व्यवस्था’ कहते हैं। परम्परागत विचारधारा के अनुसार ‘व्यवस्था’ का अर्थ होता है साधनों एवं स्रोतों को निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये प्रयोग करने के स्वरूप को ‘व्यवस्था’ कहते हैं। व्यवस्था के अन्तर्गत प्रमुख तीन युक्तियों को प्रयुक्त किया जाता है-

- 1 प्रयासों तथा स्रोतों में समन्वय स्थापित किया जाता है।
- 2 कार्य एवं क्रियाओं का विभाजन किया जाता है।
- 3 अधिकार एवं उत्तरदायित्व को आरोह क्रम में निर्धारित किया जाता है।

स्काट ने भी ‘व्यवस्था’ की व्याख्या की है। उनके अनुसार व्यवस्था का अंतिम उद्देश्य ‘विवाद को कम करना’ है। व्यवस्था के द्वारा उस वस्तु तथा व्यक्ति के महत्व को कम किया जाता है। जिससे नियोजन की सफलता में बाधा होती है। इस प्रकार व्यवस्था के द्वारा अनिश्चितता को कम करके निश्चितता तथा स्थायित्व में वृद्धि की जाती है। व्यवस्था के आधार पर वास्तविक उपलब्धियों के सम्बन्ध में पूर्व कथन दिया जाता है उदाहरण के लिये पाठ्य पुस्तकों, पाठ्य-योजनाओं तथा अभिक्रमित-अनुदेशन की व्यवस्था की जाती है, जिससे सीखने के विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है, परन्तु इसके द्वारा पाठ्यवस्तु के आन्तरिक स्वरूप तथा छात्रों के सीखने के व्यवहार स्वरूपों के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी होती है। शैक्षिक तकनीकी में इन्हीं स्वरूपों को समझने पर विशेष बल दिया जाता है।

व्यवस्था के प्रत्यय में स्थायित्व, पूर्व-कथन तथा स्वरूपों को अधिक महत्व देने से उद्योग तथा प्रबन्ध अधिक प्रभावित हुए हैं। यह विचारधारा ‘शैक्षिक तकनीकी’ के अर्थ के लिये भी अधिक उपयोगी तथा सार्थक है। शैक्षिक उपलब्धियों के सम्बन्ध में पूर्व-कथन किया जाता है और सीखने के स्वरूपों के लिये साधनों एवं युक्तियों को निर्धारित किया जाता है इस प्रकार शैक्षिक-तकनीकी शिक्षा-व्यवस्था में स्थायित्व लाती है। व्यवस्था का सीधा सम्बन्ध मानव से रहा है, इसलिये मानव प्रकृति की धारणायें इस प्रत्यय को प्रभावित करती रही हैं।

शिक्षा व्यवस्था की परिभाषा - जब हम शैक्षिक प्रशासन की चर्चा करते हैं तो वह स्वाभाविक हो जाता है कि व्यवस्था के रूप में विवेचना किया जाये। आरम्भिक काल में समाज सरल थे, शिक्षा की व्यवस्था शिक्षक,

छात्र तथा स्थान तक सीमित रहता था। कालान्तर में समाज के जटिल काम विकसित होने पर काल के अन्य संगठनों की भांति शिक्षा के संगठन में भी परिवर्तन आया है। संगठन व्यवस्थित रूप का विकास होता है। मानव शक्ति का सही उपयोग होता है।

10.10 शिक्षा पर्यवेक्षण

शिक्षा पर्यवेक्षण का अर्थ - 'पर्यवेक्षण' शब्द अंग्रेजी भाषा के Supervision शब्द का पर्याय है। पर्यवेक्षण दो शब्दों पर (Super) + अवेक्षण (Vision) से मिलकर बना है। Super का अर्थ 'असाधारण' 'अलौकिक' अथवा, 'दिव्य' होता है तथा Vision का अर्थ 'दृष्टि' अर्थात् ऐसी दृष्टि जो दिव्य अथवा अत्यन्त सूक्ष्म हो, यह पर्यवेक्षण के अन्तर्गत आती है। कुछ विद्वानों ने इसको 'पर्यवेक्षण' भी कहा है जिसका अर्थ चारों ओर देखना है। किसी संस्था के चहुंमुखी दिशा का ध्यानपूर्वक अवलोकन करना तथा विकास के लिये सुझाव देना ही पर्यवेक्षण कहा जाता है।

अतएव पर्यवेक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा दूसरे के कार्यों का अवलोकन करके उन्हें उचित निर्देशन भी प्रदान करना है।

जॉन ए. बार्टकी के अनुसार - 'उत्तम पर्यवेक्षण का सैदव शिक्षकों के विकास, छात्रों की उन्नति तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सुधार से सम्बन्ध होता है।

ऐसा पर्यवेक्षण जो शिक्षा के क्षेत्र में किया जाता है, शैक्षिक पर्यवेक्षण कहलाता है। शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक, प्राचार्य एवं छात्र तथा अन्य कर्मचारी सम्मिलित होते हैं।

'शिक्षकों की उत्तम विधि, पुस्तकालय तथा प्रयोगशाला की सुविधा, क्रीड़ा क्षेत्र की सुव्यवस्था, प्राचार्य का निरीक्षण' आदि सभी कार्यों का उद्देश्य शिक्षण संस्था में पढ़ने वाले छात्रों की सर्वांगीण उन्नति में सहायता करना होता है।

“प्रधानाचार्य वरिष्ठ अध्यापक एवं शिक्षाधिकारी जब अपने सुक्ष्मों द्वारा शिक्षण सामग्री, शिक्षण विधि, मूल्यांकन आदि का स्तर उन्नत करने के लिये कार्य करते हैं तब ये पर्यवेक्षण की भूमिका निभाते हैं।”

अतएव शैक्षिक पर्यवेक्षण का शिक्षकों, सीखने की परिस्थितियों तथा छात्रों की उन्नति से गहरा सम्बन्ध होता है। छात्र अध्ययन की क्रिया में किस प्रकार प्रगतिशील हों, शिक्षक नवीनतम शिक्षण सामग्री का किस प्रकार प्रयोग जुटाया जायें, आदि अनेक लाभकारी कार्यों की शैक्षिक पर्यवेक्षण के अन्तर्गत योजना बनाई जाती है एवं इनकी सफलता-असफलता का मूल्यांकन किया जाता है। सारांश यह है कि, शैक्षिक पर्यवेक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जो शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में, शिक्षण संस्था की निरतन्त उन्नति तथा छात्रों की सर्वांगीण उन्नति में पूर्ण सहायक होती है।

अमरीका के राष्ट्रीय शिक्षा संगठन के प्राथमिक स्कूल के प्राचार्यों ने शैक्षिक पर्यवेक्षण के अर्थ निम्न प्रकार स्पष्ट किये हैं-

1. शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षकों के शिक्षण में सुधार, छात्रों को समझने, शिक्षण सामग्री का विकास करने में सहायक होता है।
2. इसके द्वारा पाठ्यक्रम में सुधार तथा निर्माण के लिये शोध पर बल दिया जाता है। क्रियात्मक अनुसन्धान को बढ़ावा देते हैं।

3. शैक्षिक पर्यवेक्षण के द्वारा शिक्षण की कुशलता तथा छात्रों की आवश्यकता के ज्ञान हेतु सीखने की परिस्थितियों का मूल्यांकन किया जाता है।

4. इसके द्वारा शिक्षकों को व्यावसायिक नेतृत्व एवं सहायता प्रदान की जाती है।

शिक्षा कोष - के अनुसार शैक्षिक पर्यवेक्षण का अर्थ विद्यालय सम्बन्धी इस प्रकार है-

1. शिक्षण उद्देश्यों, विधियों एवं सामग्री का चयन करना,
2. पर्यवेक्षकों, शिक्षकों तथा कार्यकर्त्ताओं को नेतृत्व प्रदान करना।
3. इसके विकास तथा व्यावसायिक उन्नति के लिये प्रेरणा देना तथा
4. सभी क्रियाओं में सुधार हेतु मूल्यांकन करना है।

शिक्षा पर्यवेक्षण की परिभाषाएं - शिक्षा पर्यवेक्षण के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये विभिन्न विद्वानों एवं शिक्षाविदों द्वारा दी गई परिभाषायें निम्नलिखित हैं-

एडेम्स तथा डिस्के के अनुसार - “शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षण को सुधारने का एक सुनियोजित कार्यक्रम है।”

बार0 बर्टन तथा ब्रेकनर के अनुसार - “पर्यवेक्षण एक कुशल तकनीकी सेवा है जो उन अवस्थाओं का अध्ययन करने तथा उनमें उन्नति करने से सम्बन्धित होती है जो सीखने तथा छात्र विकास के चारों ओर व्याप्त होती है।”

डब्लू0 किम्बाल के अनुसार - “पर्यवेक्षण एक अच्छे शिक्षण एवं सीखने की परिस्थितियों के विकास में सहायक होता है।”

चेस्टर टी. मैकनव के अनुसार - “पर्यवेक्षण शिक्षण प्रक्रिया का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने तथा निर्देशन देने की एक विधि है। पर्यवेक्षण का अन्तिम उद्देश्य छात्रों को उत्तम शिक्षण सेवा द्वारा सभी स्तरों पर योग्य बनाना होना चाहिये।”

फ्रेड सी0 अय्यर के अनुसार - “पर्यवेक्षण समस्त शैक्षिक प्रयासों में सर्वश्रेष्ठ तथा गत्यात्मक हैं। यह अत्यन्त श्रेष्ठ इसलिये है क्योंकि यह सर्वाधिक सृजनात्मक हैं।”

माध्यमिक शिक्षा आयोग - “हमारी दृष्टि में निरीक्षक की वास्तविक भूमिका (जिसे हम शैक्षिक परामर्शदाता कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं) प्रत्येक विद्यालय की समस्याओं का अध्ययन करना है तथा इसके समस्त कार्यों के विषय में विस्तृत दृष्टिकोण अपनाना है। इसके अतिरिक्त शिक्षकों की सहायता भी इस प्रकार करना है जिससे वे परामर्शदाता के परामर्श तथा संस्तुतियों का मान सकें।

शैक्षिक पर्यवेक्षण की उपर्युक्त सभी परिभाषाओं में शिक्षण प्रक्रिया में सुधार-करना शिक्षकों की क्षमताओं को विकसित करना, सीखने की दशाओं का मूल्यांकन करना, पाठ्यक्रम में सुधार करना, छात्रों की योग्यताओं में वृद्धि करना आदि का समावेश है। वास्तव में शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये एक महत्वपूर्ण साधन है। उत्तम शैक्षिक पर्यवेक्षण वहीं है जो शिक्षकों, छात्रों तथा विद्यालय की समस्त परिस्थितियों को उन्नत करता है। सारांश रूप में शैक्षिक पर्यवेक्षण को निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है-

“शैक्षिक पर्यवेक्षण ऐसी विशिष्ट सेवा है जो शिक्षकों को कार्य-कुशलता तथा व्यावसायिक नेतृत्व प्रदान करती है, पाठ्यक्रम में सुधार करके शिक्षण स्तर को ऊँची करती है तथा छात्रों को समाज में उपयुक्त आचरण करने का प्रशिक्षण देती हैं।

बोध प्रश्न - 2

शिक्षा कोष - के अनुसार शैक्षिक पर्यवेक्षण का विद्यालय सम्बन्धी अर्थ है-

1. शिक्षण उद्देश्यों, विधियों एवं सामग्री का चयन करना,
2. पर्यवेक्षकों, शिक्षकों तथा कार्यकर्ताओं को नेतृत्व प्रदान करना।
3. इसके विकास तथा व्यावसायिक उन्नति के लिये प्रेरणा देना तथा
4. सभी क्रियाओं में सुधार हेतु मूल्यांकन करना है।
5. उपरोक्त सभी

10.11 सारांश

शिक्षा में प्रगति तभी सम्भव है जब उपलब्ध साधनों, सामग्री तथा सुविधाओं के आधार पर शैक्षिक योजनाओं का निर्माण किया जाये तथा उन योजनाओं को कार्यरूप में परिणत कराने के लिए कुशल प्रशासन की व्यवस्था हो। शिक्षा-प्रशासन और शैक्षिक नियोजन के तालमेल से ही शैक्षिक प्रगति सम्भव है। दोनों के सन्तुलित समन्वय से कार्य-कुशलता तथा क्षमता में वृद्धि होती है। संस्थागत योजना में प्रधानाचार्य, अध्यापक, छात्रों तथा समुदाय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारतीय शिक्षा-नियोजन की भी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर भारत में शैक्षिक प्रगति होने की सम्भावना बनी हुई है। शिक्षा नियोजन की प्रक्रिया में उत्तम सिद्धान्तों का पालन किया जाना आवश्यक है 'इलिग्रट एवं मोजर, जे.बी.' सीयर्स ने सामान्य पक्ष, अनुसन्धान, सतत्, निश्चित, यथार्थ एवं व्यवहारिक सहभागिता तथा संशोधन जैसे पक्षों पर बल दिया है। व्यवस्था के द्वारा अनिश्चितता को कम करके निश्चितता तथा स्थायित्व में वृद्धि की जाती है तथा शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये एक महत्वपूर्ण साधन है। उत्तम शैक्षिक पर्यवेक्षण वहीं है जो शिक्षकों, छात्रों तथा विद्यालय की समस्त परिस्थितियों को उन्नत करता है।

10.12 शब्दावली

सांख्यिकी - ऐसी विधियों व प्रविधियों का समावेश है, जिनके उपयोग से अथाह व अपार आँकड़ों के विशाल रूप को भी सरलापूर्वक व्यवस्थित किया जा सकता है। व उनके वास्तविक स्वरूप व पारस्परिक सम्बन्धों का स्पष्ट रूप से पता लगाया जा सकता है।

सामाजिक परिवर्तन - व्यक्तियों की क्रियाओं और विचारों में होने वाले परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

मूल्यांकन - मूल्यांकन के द्वारा शिक्षा-जगत में बालक ने जो प्रगति की है, उसका ज्ञान प्राप्त होता है।

10.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1 मूल्यांकन

2 समुदाय

बोध प्रश्न - 2

 1 उपरोक्त सभी

10.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1 माध्यमिक शिक्षा एवं विद्यालय प्रबन्धन (2009) अवधेश किशोर, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- 2 शैक्षिक प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा (2013) सविता सिंह, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- 3 स्कूल प्रबन्धन सूचना तथा सम्प्रेषण तकनीकी (2010) जे0पी0 अग्रवाल, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- 4 शैक्षिक प्रबन्धन के मूल तत्व (2009) देवदत्त शर्मा, अग्रवाल पब्लिकेशन

10.15 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

- शिक्षा प्रशासन (2010) उमेश चन्द्र कुदेसिया , अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- विद्यालय प्रबन्धन, (2008), आर0ए0शर्मा, आर लाल बुक डिपो, मेरठा
- विद्यालय प्रबन्धन (2008) जे0पी0 वर्मा, आर लाल बुक डिपो, मेरठा ।
- शैक्षिक प्रबन्धन के मूल तत्व (2009) देवदत्त शर्मा, अग्रवाल पब्लिकेशन (181)
- शैक्षिक संगठन, स्वास्थ्य शिक्षा एवं शिक्षण तकनीकी, डी0पी0 मिश्रा, अग्रवाल पब्लिकेशन
- शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्धन डा0 कर्ण सिंह, गोविन्द प्रकाशन, लखीमपुर खीरी। विद्यालय प्रशासन, संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा (2009) एव0पी0 सुखिया, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

10.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शैक्षिक नियोजन का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके उद्देश्यों का सविस्तार वर्णन कीजिए।

इकाई 11 पर्यवेक्षण: सेवा, प्रक्रिया तथा नेतृत्व

- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 उद्देश्य
- 11.3. शिक्षा-पर्यवेक्षण का अर्थ
 - 11.3.1. पर्यवेक्षण की आवश्यकता
 - 11.3.2. पर्यवेक्षण के सिद्धान्त
 - 11.3.3. शिक्षा-पर्यवेक्षण के उद्देश्य
 - 11.3.4. शिक्षा पर्यवेक्षण की विशेषताएँ
- 11.4. शिक्षा पर्यवेक्षण का उद्गम एवं विकास
 - 11.4.1 भारतवर्ष में पर्यवेक्षण का प्रादुर्भाव
- 11.5 शिक्षा पर्यवेक्षण का परम्परागत प्रत्यय
 - 11.5.1 व्यापक दृष्टिकोण का प्रारम्भ
 - 11.5.2 शिक्षा पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय
 - 11.5.3 आधुनिक पर्यवेक्षण की विशेषताएँ
- 11.6 शिक्षा पर्यवेक्षण का महत्व
 - 11.6.1 शिक्षा पर्यवेक्षण की प्रकृति
 - 11.6.2 शिक्षा पर्यवेक्षण: शैक्षिक नेतृत्व
- 11.7 सारांश
- 11.8 शब्दावली
- 11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 11.10 निबन्धात्मक प्रश्न
- 11.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

11.1 प्रस्तावना

शिक्षा समाज के प्रतिनिधि के रूप में समाज की आवश्यकताओं की परिपूर्ति करती है। आज का समाज क्रमशः भौतिक होता जा रहा है। विज्ञान तथा तकनीकी विकास ने भौतिकता की दिशा को और भी अधिक तीव्रता प्रदान की है। इससे शिक्षा पर नये-नये दायित्व आ पड़े हैं। इन दायित्वों के कारण विद्यालयों पर

अतिरिक्त भार पड़ा है। आज यह निश्चित करना कठिन हो रहा है कि क्या और कैसे पढ़ाया जाये? इन कारणों के उत्तर के लिए नई-नई पाठ्य-वस्तुएँ शिक्षण पद्धतियों, विधियों तथा उपकरणों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ है। इससे शिक्षण-प्रक्रिया बड़ी ही जटिल एवं क्लिष्ट हो गई हैं शिक्षा-प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने हेतु इन सभी का समुचित समायोजन, संगठन एवं प्रयोग आवश्यक है। इसके लिए शिक्षा-पर्यवेक्षण की आवश्यकता पड़ती है। शिक्षा-पर्यवेक्षण का प्रमुख उद्देश्य अनेक शिक्षा-प्रक्रियाओं का समुचित समन्वय कर अधिकतमक प्रतिफल प्राप्त करना है। पर्यवेक्षण के द्वारा शैक्षिक क्रियाओं की आवश्यक आवृत्तियाँ रोकी जा सकती हैं, अनेक शैक्षिक क्रियाओं का अपव्यय कम किया जा सकता है तथा शिक्षा को अधिकाधिक मानव-कल्याण का साधन बनाया जा सकता है।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त

- आप शैक्षिक पर्यवेक्षण का अर्थ बता सकेंगे
- पर्यवेक्षण की आवश्यकता को व्यक्त कर सकेंगे।
- शैक्षिक पर्यवेक्षण का महत्व विस्तार से समझा सकेंगे।
- शिक्षा पर्यवेक्षण की विशेषताएँ जान सकेंगे।
- शैक्षिक नियोजन पर्यवेक्षण के उद्देश्य जान सकेंगे।
- शिक्षा पर्यवेक्षण का उद्गम एवं विकास से अवगत हो सकेंगे।
- शिक्षा पर्यवेक्षण का परम्परागत और आधुनिक प्रत्ययकी व्याख्या कर सकेंगे।
- शिक्षा पर्यवेक्षण की प्रकृति की व्याख्या कर सकेंगे।
- शिक्षा पर्यवेक्षण के प्रमुख कार्य बता सकेंगे।

11.3. शिक्षा-पर्यवेक्षण का अर्थ

शिक्षा प्रशासन के क्षेत्र में कभी-कभी निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण को एक ही अर्थ में लिया जाता है, जबकि इन दोनों में मूलभूत अन्तर हैं शाब्दिक अर्थ में निरीक्षण का अर्थ किसी चीज की बारीकी के साथ जाँच एवं देखरेख करना है जबकि पर्यवेक्षण का अर्थ दूर ऊँचे स्थान से नीचे के स्थानों का अवलोकन करना है। तकनीकी अर्थ में शिक्षा-पर्यवेक्षण से हमारा तात्पर्य एक ऐसे सुनियोजित कार्यक्रम से है जिसका प्रमुख उद्देश्य शिक्षण-प्रक्रियाओं में उन्नति तथा प्रभावशाली लाना है। फ्रान्सेथ जाम के अनुसार - 'उत्तम शिक्षा-पर्यवेक्षण व्यक्तिगत तथा सामान्य समस्याओं के समाधान हेतु व्यक्तियों की ऊर्जा को रचानात्मक विधियों में संलग्न करने की प्रक्रिया है।' मलौ एवं मलैया ने अपनी पुस्तक 'शिक्षा प्रशासन एवं पर्यवेक्षण में शिक्षा-पर्यवेक्षण' की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है-

‘शिक्षा-पर्यवेक्षण यह प्राविधिक सेवा है जो शिक्षकों को अपनी व्यावसायिक कुशलता वृद्धि के लिए उचित व्यावसायिक नेतृत्व तथा सहयोग प्रदान करती है, शिक्षण स्तर को उच्च बनाने हेतु उन्हें पाठ्यक्रम सुधार से परिचित कराती है एवं अपने छात्रों को और अच्छी तरह समझने, शिक्षण-सामग्री निर्माण करने, शिक्षण विधियों का विकास करने, उचित मूल्यांकन-विधियों का उपयोग करने आदि के कौशल-विकास में सहायक होती हैं। इस दृष्टि से शिक्षा-पर्यवेक्षण एक लोकतंत्रीय तथा सहयोगी प्रक्रिया है जिसमें शिक्षण-स्तर को उच्च बनाने हेतु शिक्षक, पर्यवेक्षक तथा बालक सभी हिल-मिल कर कार्य करते हैं।’

इस प्रकार से निरीक्षक एक आलोचक, गलतियाँ निकालने वाला तथा दण्डाधिकारी होता है, किन्तु पर्यवेक्षक एक मित्र, परामर्शदाता, निर्देशनकर्ता तथा शुभचिन्तक होता है। पर्यवेक्षक जहाँ कमियों तथा गलतियों की ओर इशारा करता है, वहीं पर वह उनके निराकरण हेतु उपयोगी परामर्श भी देता है। उसका व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण होता है।

11.3.1. पर्यवेक्षण की आवश्यकता - शिक्षा-पर्यवेक्षण शिक्षा की उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसकी आवश्यकता निम्न कारणों से और भी अधिक बढ़ गई है -

1. सामाजिक आवश्यकता के कारण - आज प्रत्येक समाज क्रमशः भौतिकवादी होता जा रहा है। उसकी आवश्यकताएँ, मान्यताएँ, मूल्य तथा प्रकृति में तीव्र गति से उल्लेखनीय परिवर्तन हो रहा है। इसका स्पष्ट प्रभाव शिक्षा के स्वभाव एवं प्रकृति पर पड़ रहा है। इससे शिक्षा के क्षेत्र में नई-नई समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। विश्व में लोकतंत्रीय जीवन दर्शन व्यापक रूप से अपनाया जा रहा है। इसमें जाति, रंग आदि का भेदभाव न रखते हुए सभी को समान शैक्षिक अवसर प्रदान करने की आवश्यकता है। इसके लिए बड़े पैमाने पर विद्यालयों की व्यवस्था करने की आवश्यकता है, साथ ही साथ कक्षाओं में छात्रों की संख्या भी आशा से अधिक बढ़ानी है। यह वास्तव में हो भी रहा है। इसके अलावा शिक्षा का भौतिकीकरण भी हो रहा है। इस नये परिवेश में शिक्षा को नई-नई समस्याओं, जैसे-अनुशासनहीनता, व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास करना, कक्षाओं में अधिक व्यक्तिगत विभिन्नताओं का होना, लोकतंत्रात्मक दृष्टिकोण का विकास करना आदि का सामना करना पड़ रहा है। इन समस्याओं के समाधान के लिए शिक्षा का समुचित पर्यवेक्षण करने की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है।

2. अध्यापक पर अधिभार - आज के अध्यापक को पहले की अपेक्षा अधिक कार्य करना पड़ता है। आज का अध्यापक केवल एक अध्यापक ही नहीं है, वरन् वह मित्र, निर्देशक तथा दार्शनिक के रूप में छात्र के समक्ष प्रस्तुत होता है। इस स्थिति में अध्यापक को अनेक कार्य करने पड़ते हैं। वह शिक्षण करता है, व्यक्तिगत विभिन्नताओं का पता लगाता है, संचयी आलेख पत्र तथा छात्र से सम्बन्धित उपयोगी सूचनाएँ एकत्रित करता है, उसका पथ-प्रदर्शक बनता है, परिणाम-पत्र बनाता है तथा अन्य अनेक कार्य करता है। इन सहगामी कार्यों के बढ़ने के साथ ही उसके मूल कार्य शिक्षण में भी तीव्रता के साथ वृद्धि हुई है। उसे अब कालांशों में से कभी-कभी तो सभी और सामान्यतया छः व सात कालांश शिक्षण करना पड़ता है। अब उसे कक्षा में दस-पन्द्रह छात्रों के स्थान पर पचास-पचास और इनसे भी अधिक छात्रों को पढ़ाना पड़ता है। अध्यापक अपने इस

अधिभार को सफलता एवं सुविधापूर्वक वहन कर सके, इसके लिए समुचित शिक्षा-पर्यवेक्षण की आवश्यकता है। शिक्षा-पर्यवेक्षण के द्वारा उसकी अनेक समस्याएँ सुलझाई जा सकती हैं।

3.नवीन शिक्षण विधियों का विकास - लोकतांत्रिक शिक्षा के अन्तर्गत आजकल अनेक आधुनिक शिक्षण विधियों का विकास हो चुका है। इस नवीन विधियों का कक्षा शिक्षण में व्यावहारिक प्रयोग बिना पूर्व प्रशिक्षण के सम्भव नहीं है। साथ ही साथ नवीन शिक्षण पद्धतियों के प्रयोग, सफलता, असफलता तथा सुधारों पर प्रकाश डाला जा सकता है।

4.अप्रशिक्षित अध्यापक - तीव्र गति से बढ़ती हुई शैक्षिक सुविधाओं की पूर्ति के लिए बड़ी मात्रा में अप्रशिक्षित अध्यापकों की सेवाओं की आवश्यकता पड़ी है। अप्रशिक्षित अध्यापकों को शिक्षण के आधारभूत सिद्धान्तों तथा प्रयोगों का ज्ञान तथा कौशल प्रदान किया जा सकता है।

5.प्रशिक्षित अध्यापकों का अभिनवीकरण - शिक्षण प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षित का काल छोटा होता है वहाँ शिक्षण कौशल का पूर्ण विकास नहीं किया जा सकता है। सेवारत स्थिति में सामयिक शिक्षा पर्यवेक्षण के द्वारा इन प्रशिक्षित शिक्षकों में वांछनीय शिक्षण कौशल विकसित किया जा सकता है।

6.विद्यालय कार्यों में वृद्धि - आज विद्यालय का कार्य केवल विषयगत शिक्षा प्रदान करना मात्र ही नहीं रह गया है, वरन् आज के विद्यालय से यह आशा की जाती है कि वह छात्र के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करे। इस कार्य हेतु विद्यालय के शिक्षा के अलावा और अनेक कार्य सम्पादित करने पड़ते हैं। उसे अनेक पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था एवं संचालन करना पड़ता है छात्रों में लोकतांत्रिक भावनाओं का विकास करने हेतु आवश्यक कदम उठाने पड़ते हैं तथा व्यावहारिक शिक्षा की व्यवस्था करनी पड़ती है। इन कार्यों की सफलता भी उपयुक्त शिक्षा पर्यवेक्षण पर निर्भर है।

11.3.2. पर्यवेक्षण के सिद्धान्त - पर्यवेक्षण के सिद्धान्तों की विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग चर्चा की है। कुछ विद्वानों ने पर्यवेक्षण के सिद्धान्तों की एक लम्बी सूची गिना दी है तो कुछ विद्वानों ने इनकी संख्या बड़ी ही कम रखी है। आर. बर्टन, तथा बुकनर ने पर्यवेक्षण के चार सिद्धान्त बताये हैं -

1. पर्यवेक्षण सैद्धान्तिक रूप से ठोस हो
2. पर्यवेक्षण लोकतांत्रिक हो,
3. पर्यवेक्षण वैज्ञानिक हो,
4. पर्यवेक्षण रचनात्मक हो।

11.3.3. शिक्षा-पर्यवेक्षण के उद्देश्य - शिक्षा-पर्यवेक्षण के द्वारा अग्रांकित उद्देश्यों की प्राप्ति के प्रयास किये जाते हैं-

1. शिक्षकों के सम्मुख शिक्षा के उद्देश्य, मूल्य तथा उपलब्धियों को सुनिश्चित तथा स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करना।

2. शिक्षकों की व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि कर उनके शिक्षण को प्रभावकारी बनाना।
3. शिक्षकों को छात्रों तथा समाज की आवश्यकताओं से परिचित कराकर उनकी परिपूर्ति करने हेतु अध्यापकों को प्रोत्साहित करना।
4. शिक्षकों को उनकी योग्यता, शिक्षा तथा क्षमताओं के अनुसार कार्य विभाजन करना।
5. शिक्षकों को समुचित समायोजन करने में सहायता देना।
6. अप्रशिक्षित शिक्षकों को शिक्षण के आधारभूत सिद्धान्तों तथा प्रयोगों से परिचित करना।
7. शिक्षकों के व्यापक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विद्यालय में आवश्यक वातावरण तथा शिक्षण सुविधाएँ प्रदान करना।

11.3.4. शिक्षा पर्यवेक्षण की विशेषताएँ

आधुनिक पर्यवेक्षण द्वारा छात्रों एवं अध्यापकों के व्यक्तित्व का सर्वाधिक विकास किया जा सकता है। आधुनिक पर्यवेक्षण की विशेषतायें जनतान्त्रिक प्रणाली के अनुकूल हैं। इनकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. **शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय शिक्षा विकास की प्रक्रिया है-** आधुनिक प्रत्यय के द्वारा शिक्षा का पूर्ण विकास पर्यवेक्षण द्वारा ही सम्भव है। इसकी नवीन विधियों, प्रविधियों, उपकरणों एवं आयामों द्वारा शिक्षा की सभी क्रियाओं को विकसित किया जाता है।
2. **शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय प्रजातान्त्रिक -** पर्यवेक्षण के आधुनिक प्रत्यय के अन्तर्गत पर्यवेक्षण एक सहयोगी, निर्देशक, परामर्शदाता तथा मैत्रीपूर्ण रूप से अपने सुझाव शिक्षकों को दिये जाते हैं। अतएव पर्यवेक्षण का आधार प्रजातान्त्रिक है।
3. **शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय एक तकनीकी सेवा है -** शैक्षिक पर्यवेक्षण के द्वारा मौलिक, रचनात्मक एवं वस्तुनिष्ठ शैक्षिक क्रियाओं को पूरा किया जाता है। अतएव इसको एक तकनीकी सेवा द्वारा सम्बोधित किया गया है।
4. **शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय एक परामर्शदाता के रूप में कार्य करता है -** शैक्षिक पर्यवेक्षण के आधुनिक प्रत्यय के अन्तर्गत पर्यवेक्षक का प्रत्येक कार्य एक सहयोगी एवं मैत्रीपूर्ण परामर्शदाता के रूप में होता है। उसके सुझाव उपयोगी होते हैं।
5. **इसके द्वारा वस्तुनिष्ठ तथा विश्वसनीय पर्यवेक्षा पर बल दिया जाता है -** शैक्षिक पर्यवेक्षण की प्रत्येक क्रिया वस्तुनिष्ठ तथा विश्वसनीय रूप में सम्पन्न की जाती है। पर्यवेक्षण के द्वारा दिये गये सुझाव एवं विधियाँ पूर्णतः विश्वसनीय होते हैं।

6. शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय विद्यालय अन्तःक्रिया का गत्यात्मक रूप है- इसके द्वारा विद्यालय की सभी अन्तः क्रियाओं को निरन्तर आगे बढ़ाया जाता है। तथा समाज के अनुरूप परिवर्तित किया जाता है।

7. शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय योजनाबद्ध पर्यवेक्षण पर बल देता है-पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय शिक्षा के सभी कार्यों को नियोजित रूप प्रदान करता है तथा इसकी रूपरेखा को सुनिश्चित करता है।

8. शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय वैज्ञानिक विधि प्रदान करता है - आधुनिक पर्यवेक्षण प्राचीन तथा परम्परागत विधियों में विश्वास नहीं रखता। इसके द्वारा जो विधि अथवा नवीन पद्धति अपनाई जाती हैं वह पूर्णतया परीक्षित एवं विश्वसनीय होती है। आधुनिक पर्यवेक्षण में वैज्ञानिक विधि को अपनाया जाता है। इस पर्यवेक्षण में विभिन्न कार्यक्रमों में समस्या का चयन, तथ्यों का संकलन तथा वर्गीकरण, परिकल्पना का निर्माण, व्याख्या एवं सामान्यीकरण, सम्भावित विधियों का चयन आदि वैज्ञानिक विधियों के सोपानों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इसके द्वारा प्रत्येक कार्य का गहन परीक्षण तथा गम्भीर विचार करके किया जाता है।

11.4 शिक्षा पर्यवेक्षण का उद्गम एवं विकास

शिक्षा पर्यवेक्षण का प्रत्यय अधिक प्राचीन नहीं है। सन् (1909) ई0 से पूर्व इसका अस्तित्व ही नहीं था। सर्व प्रथम इंग्लैंड के बोस्टन नामक नगर में इस शब्द का प्रयोग किया गया। वहाँ विद्यालयों का निरीक्षण कार्य करने के लिये सन् (1909) ई0 में एक विशेष समिति की स्थापना की गयी जिसमें कुछ चुने हुए धर्माधिकारी, कुछ धनिक व्यक्ति सम्मिलित किये गये। इस समिति का कार्य सामान्य रूप से भवन की देखभाल करना, विद्यालय के लिये धन जुटाना तथा शिक्षकों की नियुक्ति पर ध्यान देना था। इस समिति के अधिकांश सदस्य अशिक्षित एवं अप्रशिक्षित होते थे उनमें कार्यक्षमता अधिक नहीं होती थी, इसीलिये वे निरीक्षण कार्य को भी अपर्याप्त एवं अनियन्त्रित ढंग से करते थे, कुछ समय पश्चात् निरीक्षण की आवश्यकता पर और अधिक बल दिया जाने लगा। सन् (1914) ई0 से निरीक्षकों के लिये शैक्षिक योग्यता को अनिवार्य माना जाने लगा। सन् (1921) ई0 से निरीक्षण के क्षेत्र में शिक्षित कार्य, शिक्षण विधि एवं शिक्षण के उद्देश्यों के सम्बन्ध में अपने सुझाव दिये। सन् 1922 ई0 में बर्टन ने निरीक्षण के महत्व पर अधिकाधिक ध्यान आकृष्ट किया। बर्टन ने शिक्षा के सुधार कार्यक्रमों के निरीक्षण के कार्य को सर्पोपरि माना। बर्टन का मत था कि शिक्षण कार्य में सुधार तथा उन्नति के लिये, शिक्षक कार्य में सुधार करने के लिये, विषय एवं पाठ्यवस्तु का चयन करने के लिये, परीक्षण तथा मापन के लिये तथा शिक्षकों की योग्यताओं के आधार पर उनका श्रेणीकरण करने के लिये निरीक्षण का अत्यधिक महत्व है। इस प्रकार निरीक्षण के प्रत्यय का उद्भव इंग्लैंड में हुआ जो आगे चलकर पर्यवेक्षण के स्वरूप में परिवर्तित होता चला गया।

11.4.1 भारवर्ष में पर्यवेक्षण का प्रादुर्भाव

भारतवर्ष में पर्यवेक्षण का प्रारम्भ पाश्चात्य शिक्षण-प्रणाली का अनुकरण करने के फलस्वरूप ही हुआ। भारतवर्ष में वुड डिस्पैच की संस्तुतियों के फलस्वरूप प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा मण्डलों तथा निरीक्षण मण्डलों की स्थापना की गयी। पर्यवेक्षण के सन्दर्भ में वुड डिस्पैच की संस्तुति अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह संस्तुति इस प्रकार थी -

“हमारी शिक्षा-प्रणाली का भविष्य में अत्यावश्यक अंग निरीक्षण प्रणाली का उचित स्वरूप होगा। हमारी इच्छा है कि सरकार द्वारा चलाये गये विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में निरीक्षकों की पर्याप्त संख्या में नियुक्ति की जाय जो समय-समय पर इन विद्यालयों की गतिविधियों की आख्या भी प्रस्तुत कर सकेंगे। ये निरीक्षक इन विद्यालयों में परीक्षा सम्बन्धी कार्यों में भी सहायता करेंगे।”

इन सुझावों का परिणाम यह हुआ कि शिक्षण कार्य की गुणात्मकता को परखने के लिये तथा विद्यालयों को दिये गये अनुदानों का उचित प्रयोग परखने के लिये निरीक्षकों की नियुक्ति की गयी। निरीक्षकों के अधिकारों में भी कुछ वृद्धि की गयी जिसके फलस्वरूप निरीक्षक शिक्षण संस्थाओं में आतंक भी उत्पन्न करने लगे। वास्तव में यह समय भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का था और निरीक्षकों को अधिक शक्ति एवं अधिकारों को देने का आशय तत्कालीन राष्ट्रीय भावनाओं को कुचलना था। सन् 1921 ई० में महात्मा गाँधी जी के नेतृत्व में आन्दोलन हुए और पर्याप्त संख्या में राष्ट्रीय संस्थाएं खोली गयी। सन् (1919) ई० में सैडलर-कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया था।

“अधिकांश रूप में निरीक्षण द्रुत गति से किया जाता है, उसमें सौहार्दपूर्ण सुझावों का अभाव है। शिक्षण-पद्धति तथा संगठन सम्बन्धी सुधार की ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता जो विद्यालयों के लिये अत्यावश्यक है”।

वास्तव में इन आयोगों तथा समय-समय पर नियुक्त समितियों के प्रतिवेदनों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भारत में सुयोग्य एवं प्रशिक्षित निरीक्षकों का सर्वथा अभाव है जिसके कारण यहाँ की शिक्षा-व्यवस्था दूषित तथा प्रभाव शून्य है। इस प्रतिवेदना का एक प्रभाव यह भी हुआ कि निरीक्षण के स्थान पर पर्यवेक्षण के महत्व को समझा जाने लगा। निरीक्षक के कार्यों में सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार को सम्मिलित किया जाने लगा। सन् 1934 ई० में अंग्रेजी सरकार द्वारा दो परामार्शदाता वुड तथा अबोट को भारतवर्ष के विद्यालयों में निरीक्षण करने के लिये भेजा गया। उनके कथन का सारांश निरीक्षण के कार्य में सुधार के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। उनका कथन इस प्रकार था-

“The chief duty of the inspector is to inspect the schools. He must do this sympathetically and give advice based on his own knowledge and experience, which will help the teacher to make their schools enlightened and humanized institutions. He should feel free and, of course, be qualified to praise or to criticize. But his criticism should be calculated to encourage and not to intimidate.”

आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा प्रतिवेदन में निरीक्षकों के कार्यों को अत्यधिक परम्परागत तथा मशीनवत् बताया गया तथा उसमें पर्याप्त सुधार करने के लिये सुझाव भी दिये गये। इसी क्रम में सन् (1952) ई0 में ए0एल0 मुदालियर, माध्यमिक शिक्षा आयोग के अध्यक्ष थे। उन्होंने भी अपनी रिपोर्ट में निरीक्षण की तत्कालीन स्थिति को सोचनीय बताते हुए इस प्रकार कहा -

“It was pointed out by several witnesses that inspections were perfunctory, that the time spent by the inspector at any particular place was insufficient, that the greater part of his time was taken up with routine administration. – Narendra Dev.

“माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफारिशों के आधार पर पर्यवेक्षक के महत्व को और अधिक स्वीकार किया गया। यह धारणा बनी कि शिक्षा-संस्थाओं का उचित निर्देशन पर्यवेक्षक द्वारा ही दिया जा सकता है। पर्यवेक्षकों की गुणात्मकता एवं शक्ति में वृद्धि करने के प्रयास किये गये। निरीक्षक को विद्यालयों के प्रशासनिक कार्यों के प्रति पूर्णरूप से उत्तरदायी स्वीकार किया गया। माध्यमिक शिक्षा आयोग की प्रमुख संस्तुतियां इस प्रकार थी-

1. कम से कम दस वर्षों के अनुभवी अध्यापकों, प्रधानाचार्यों तथा प्रशिक्षण महाविद्यालयों, सुप्रशिक्षित प्रवक्ताओं को निरीक्षण करने के लिये भेजा जाना चाहिए।
2. जो निरीक्षक नियुक्त हों, उन्हें शैक्षिक तथा प्रशासनिक दोनों प्रकार के कार्यों का निरीक्षण करने के अतिरिक्त विद्यालयों के हिसाब-किताब तथा कार्यलय से सम्बन्धित सभी मामलों का निरीक्षण करना चाहिए।
3. निरीक्षकों के साथ प्रशासनिक कर्तव्यों की देख-भाल के लिये क्षमतायुक्त व्यक्तियों की नियुक्ति होनी चाहिए।
4. मुख्य निरीक्षक के साथ विशिष्ट योग्यता प्राप्त टोली निरीक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिए जिससे विद्यालय के शिक्षण कार्य का गहराई से निरीक्षण किया जा सके।
5. निरीक्षकों का कर्तव्य विद्यालयों की उन्नति में सहयोग देना होना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा-आयोग की संस्तुतियों को भारतीय सरकार द्वारा स्वीकार किया गया। इसके साथ ही पर्यवेक्षण के महत्व पर दृष्टि रखते हुए भारतीय सरकार ने पर्यवेक्षण का गहन अध्ययन करने के लिये इस आयोग को पुनः प्रेरित किया। इसी उद्देश्य से सरकार द्वारा See Education Project Team की नियुक्ति की गयी। इस टीम में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के व्यक्तियों को भी सम्मिलित किया गया जिनकी प्रमुख संस्तुतियाँ निम्नलिखित थी -

1. प्रशासन की भावना में शीघ्र परिवर्तन किया जाना चाहिए। निरीक्षकों के कर्तव्यों में नियमों तथा कानूनों तथा मशीनवत् कार्य प्रणाली की अपेक्षा मानवीय सम्बन्धों की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।
2. निरीक्षक का कर्तव्य निर्णय देने की अपेक्षा परामर्श देने का अधिक होना चाहिए।

3. निरीक्षण कार्य की क्षमता में वृद्धि करने के लिये निरीक्षकों को विशिष्ट प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए।
4. निरीक्षक के लिये प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिए।
5. निरीक्षक के दैनिक प्रशासनिक कार्यों को किसी अन्य सहायक निरीक्षक को सौंप दिया जाना चाहिए।
6. विद्यालय को स्वतंत्रता अधिक दी जानी चाहिए जिससे प्रत्येक विद्यालय ऐसी उचित योजनाओं की व्यवस्था कर सके जिसमें अध्यापक भाग ले सकें और विद्यालय के कार्यों में सहायता देने की योग्यता प्राप्त कर सकें।

उपर्युक्त सभी संस्तुतियों का प्रभाव हुआ कि विद्यालयों में निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण की प्रक्रिया पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाने लगा। 'निरीक्षण' शब्द में व्याप्त भय तथा आशंका को दूर कर के परामर्श तथा सुझाव को अधिक महत्व दिया जाने लगा।

बोध प्रश्न - 1

1. सन् (1914) ई0 से निरीक्षकों के लिये को अनिवार्य माना जाने लगा।
2. किस कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया था।

“अधिकांश रूप में निरीक्षण द्रुत गति से किया जाता है, उसमें सौहार्दपूर्ण सुझावों का अभाव है। शिक्षण-पद्धति तथा संगठन सम्बन्धी सुधार की ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता जो विद्यालयों के लिये अत्यावश्यक है”।

11.5 शिक्षा पर्यवेक्षण का परम्परागत प्रत्यय

शिक्षा-प्रशासन का स्वरूप सदैव से एक ही स्थिति में नहीं रह सका। आज तो पर्यवेक्षण का प्रत्यय पर्याप्त आधुनिक, परिष्कृत एवं महत्वपूर्ण दिखाई पड़ता है। परन्तु पूर्व समय में पर्यवेक्षण का परम्परागत रूप अत्यन्त संकीर्ण, सुझाव रहित तथा आधिकारिक था। इस प्रकार के प्रत्यय से सम्बन्धित कुछ बातों का उल्लेख आवश्यक है।

परम्परागत प्रत्यय - शिक्षा पर्यवेक्षण के प्राचीन रूप को ही परम्परागत प्रत्यय के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है। वास्तव में यह “पर्यवेक्षण” निरीक्षण ही था। सरकार द्वारा नियुक्त निरीक्षक एक साधारण व्यक्ति होता था जिसका मुख्य कर्तव्य सरकार द्वारा दिये गये अनुदानों का निरीक्षण करना था। निरीक्षक के प्राचीन तथा परम्परागत विचारों के अनुसार ही शिक्षा का कार्य संचालित होता था। निरीक्षण कार्य में शासक तथा शासित भावना प्रबल होती थी। निरीक्षक का ध्यान शिक्षक की त्रुटियों को खोजने की ओर होता था, छात्रों के विकास कार्य के प्रति उसका लगाव नहीं होता था। वास्तव में यह स्थिति केवल भारतवर्ष में ही नहीं अपितु विश्व के सभी देशों में व्याप्त थी। आई तथा नेटजर ने इस परम्परागत निरीक्षक के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि-

“निरीक्षण का मुख्य सम्बन्ध विद्यालय प्रशासन तथा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सभाएं करने से अधिक होता हथा। शिक्षण सामग्री की उन्नति से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था।”

परम्परागत शिक्षा पर्यवेक्षण के दोष - परम्परागत पर्यवेक्षण में केवल दोष अधिक थे। इसके अन्तर्गत निरीक्षक अपनी तानाशाही प्रवृत्ति को अपनाकर शिक्षण संस्थाओं में दूरत गति से कार्य करते थे तथा अपने मिथ्या अहं की सन्तुष्टि करके ही निरीक्षक के उत्तरदायित्व को पूरा करना समझते थे। इस प्रकार के निरीक्षण के दोषों का संक्षेप में इस प्रकार उल्लेख किया जा सकता है -

1. परम्परागत पर्यवेक्षण में जनतान्त्रिक सिद्धान्तों का उल्लंघन किया जाता था।
2. शिक्षाधिकारियों का ध्यान शासन भावना की ओर अधिक तथा छात्रों की सीखने की प्रवृत्ति में वृद्धि करने की ओर कम ध्यान होता था।
3. प्राचीन विचारों से पोषित निरीक्षकों के रूढिगत विचारों से शिक्षा प्रक्रिया प्रभावित होती थी जिसमें विकास की प्रक्रिया लुप्त ही रहती थी।
4. शिक्षकों को परम्परागत शिक्षा-प्रणाली को अपनाने के लिये विवश किया जाता था तथा उन्हें नवीन सुझावों तथा सुधारों से वंचित ही रखा जाता था।
5. परम्परागत निरीक्षण का कुप्रभाव शिक्षकों की सम्मान भावना पर आघात करने वाला था।
6. शिक्षकों को शैक्षिक कार्यों में पहल करने के लिये किसी प्रकार की प्रेरणा नहीं दी जाती थी।
7. परम्परागत निरीक्षण की व्यवस्था मानवीय सम्बन्धों की श्रेष्ठता में बाधक होती थी।
8. इस प्रकार के परम्परागत निरीक्षण में सर्वत्र अपर्याप्त, असुरक्षा, निराशा, तथा आशंका व्याप्त होती है।
वस्तुतः यह दशा मानसिक स्वास्थ्य के सिद्धान्तों के प्रतिकूल थी।
9. परम्परागत पर्यवेक्षण के अन्तर्गत शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिशु मनोविज्ञान आदि कि पूर्ण अवहेलना की जाती थी।
10. इस प्रकार के पर्यवेक्षण में निरीक्षकों द्वारा शिक्षकों के छिद्रान्वेषण कार्य को ही अधिक महत्व दिया जाता था।
11. परम्परागत शैक्षिक पर्यवेक्षण में स्वतन्त्रता, अग्रदर्शिता तथा मौलिकता के सिद्धान्तों का हनन करके अनेक स्थान पर दमन, नियन्त्रण तथा मानसिक दासता की नीतियों का अधिक रूप में अपनाया जाता था।

11.5.1 व्यापक दृष्टिकोण का प्रारम्भ - परम्परागत पर्यवेक्षण के दोषों की ओर धीरे-धीरे जनता तथा शिक्षाविदों का ध्यान आकर्षित होता गया। शैक्षिक सुधार, छात्र व्यक्तित्व-विकास, शिक्षक तथा शिक्षण कार्यों में सुधार करने के लिये योजनाएं बनाई जाने लगीं। पर्यवेक्षण को शिक्षा का विकास करने वाली प्रक्रिया समझा

जाने लगा तथा शिक्षकों को शिक्षण कला में दक्ष बनाने के सम्बन्ध में विचार किया जाने लगा। इस सम्बन्ध में जॉन ए बर्की ने सुझाव दिया -

“क्योंकि सम्पूर्ण पर्यवेक्षण ही प्रकृतिवश शिक्षण प्रक्रिया से सम्बन्धित है, अतएव विद्यालय पर्यवेक्षक को भी शिक्षकों का शिक्षक समझा जाने चाहिए।”

इन सभी सुधारों तथा सुझावों का स्वागत करने के उपरान्त भी अभी तक शैक्षिक पर्यवेक्षण का क्षेत्र उन्नत नहीं हो पाया था। इसका मुख्य कारण चिकित्सिक साधनों का अभाव था। पर्यवेक्षण के अभावों की खोज तो हो चुकी थी अर्थात् इस ओर ध्यान नहीं दिया गया था। विश्व के सभी देशों में पर्यवेक्षण के रूप में नवीनता तथा आधुनिकता लाने के लिये भरपूर प्रयास किया जाने लगा। नीचे की पंक्तियों में आधुनिक विशेषताओं से युक्त शैक्षिक पर्यवेक्षण के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा रहा है -

11.5.2 शिक्षा पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय

शैक्षिक पर्यवेक्षण के आधुनिक प्रत्यय में सहयोग की भावना तथा सामुहिक प्रयास को अधिक महत्व दिया जाता है। केवल भारतवर्ष में ही नहीं अपितु ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमरीका आदि देशों में शिक्षा के क्षेत्र में अनेक सुधार हुए। इन सुधारों में पर्यवेक्षण के क्षेत्र में भी आशाजनक सुधार करने पर ध्यान आकर्षित किया गया। इन सुधारों की आवश्यकता भी परिस्थितिबश ही प्रतीत हुई तथा भारतवर्ष की स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ-साथ शैक्षिक सुविधाओं में भी विस्तार किया गया। छात्र संख्या में भी वृद्धि हुई तथा शिक्षा के प्रति जन-जागरण भी अधिक होने लगा। सरकारी सहायता से विद्यालय भवनों का निर्माण किया गया तथा शिक्षकों की नियुक्ति में भी वृद्धि की गयी। शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्यक्रम, शिक्षा के उद्देश्य तथा शिक्षक-प्रशिक्षण को भी विकसित किया गया। इन सभी बातों का प्रभाव यह हुआ कि वर्तमान युग में शैक्षिक प्रशासन तथा पर्यवेक्षण को एक ऐसी प्रक्रिया समझा जाने लगा जो विद्यालयों की दशा को उत्तम बनाने में सहायक हो सकती है।

शिक्षा के प्रमुख आधारों में समाजशास्त्रीय आधार को प्रमुख रूप में स्वीकार किया जाता है। इसी विचार के अनुसार शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का साधन भी माना गया है। बालकों के सर्वांगीण विकास में अध्यापक, प्रधानाचार्य तथा विद्यालय का प्रमुख हाथ होता है। अनेक विचार गोष्ठियों के परिणाम स्वरूप पर्यवेक्षण का कार्य विद्यालय की उन्नति में निश्चित रूप से सहायक होता है। शिक्षा-शास्त्रियों तथा उच्च कोटि के विचारकों ने पर्यवेक्षण के सम्बन्ध में नये ढंग से विचार करना आरम्भ किया। पर्यवेक्षण को प्रधानाचार्य तथा अध्यापकों के मिले-जुले प्रयास का परिणाम ही अधिक समझा जाने लगा। सन् 1956 में मद्रास में प्रधानाचार्या की एक प्रमुख गोष्ठी में पर्यावरण पर गम्भीर विचार करते हुए यह मत स्पष्ट किया गया कि प्रभावशाली पर्यवेक्षण के अन्तर्गत आलोचना की अपेक्षा निर्देशन देना अधिक होता है, उसमें रचनात्मक सुझावों को अधिक महत्व दिया जाता है, प्रधानाचार्य का आदर्श एवं अनुकरणीय चरित्र ही अध्यापकों को प्रभावित करने में अत्यधिक सक्षम सिद्ध हो सकता है।

शैक्षिक पर्यवेक्षण के आधुनिक प्रत्यय का मूल उद्देश्य शिक्षक की सहायता करना ही है। इसके अतिरिक्त कक्षा भवन का पर्यवेक्षण, पाठ्यक्रम विस्तार, मूल्यांकन एवं परीक्षा, बालक का मनोवैज्ञानिक अध्ययन आदि कार्यों में सुधार करना भी वर्तमान पर्यवेक्षण का मुख्य कार्य है। आधुनिक प्रत्यय की सर्वाधिक विशेषता सहयोग की भावना है। इस सम्बन्ध में एन0ई0आर0टी0 दिल्ली (1966) की एक रिपोर्ट में भी संकेत किया गया।

“पर्यवेक्षण शिक्षकों की वैयक्तिक योग्यताओं की अभिवृद्धि में सहायक होता है। यह ऐसी विशिष्ट सेवा है जो छात्रों को समझने तथा छात्रों का चहंमुखी विकास करने में सहायक सिद्ध होती है।”

वास्तव में शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय शिक्षण सामग्री की उन्नति करने की प्रक्रिया से ही प्रारम्भ होता है। तथा इसके अन्तर्गत शिक्षकों की कार्यक्षमता की अभिवृद्धि की ओर अधिकाधिक ध्यान आकर्षित किया जाता है। आधुनिक शैक्षिक पर्यवेक्षण की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिन्हें स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है।

11.5.3 आधुनिक पर्यवेक्षण की विशेषताएँ- आधुनिक पर्यवेक्षण की विशेषताएँ जनतान्त्रिक प्रणाली के अनुकूल है। इस प्रकार के पर्यवेक्षण द्वारा छात्रों की तथा अध्यापकों के व्यक्तित्व का अधिक विकास किया जा सकता है। कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. सहयोग की भावना- आधुनिक पर्यवेक्षण में सहयोग की भावना पर बल दिया जाता है। इसके अन्तर्गत शिक्षक एवं प्रधानाचार्य तथा अनय पर्यवेक्षक मिल-जुल कर समस्या का समाधान करते हैं। इस प्रक्रिया से कार्यकर्त्ताओं में आत्म-विश्वास में वृद्धि होती है। पर्यवेक्षण द्वारा शिक्षकों को सहयोग देने के लिये उत्साहित किया जाता है।

2. अधिक जनतान्त्रिक तथा अभिवृत्यात्मक- जनतन्त्र के मुख्य सिद्धान्त “समानता, स्वतन्त्रता, भ्रातृभाव” आदि हैं। आधुनिक पर्यवेक्षण में समानता तथा स्वतन्त्रता के अवसर प्रदान किये जाते हैं। वास्तव में यह पर्यवेक्षण भयमुक्त तथा आशंकामुक्त होता है। इसके अन्तर्गत पर्यवेक्षक का रूप भयावह तथा आंतककारी न होकर सौहार्दपूर्ण होता है। यह पर्यवेक्षण आधुनिक प्रवृत्तियों पर आधारीत हैं। विद्यालय को आजकल एक “लघु समाज” कहा जाता है। विद्यालय रूपी समाज में जनतन्त्रात्मक प्रणाली के अनुरूप पर्यवेक्षण सजग रहता है। आधुनिक पर्यवेक्षण में सहयोगात्मक भावना व्याप्त होने के कारण छात्रों तथा शिक्षकों की विभिन्न प्रवृत्तियों का अधिकाधिक विकास करना, पर्यवेक्षण के स्वस्थ दृष्टिकोण के अनुकूल शिक्षण विधि में परिवर्तन करना, आदि की ओर आधुनिक पर्यवेक्षण सजग रहता है। आधुनिक पर्यवेक्षण में सहयोगात्मक भावना व्याप्त होने के कारण छात्रों तथा शिक्षकों की विभिन्न प्रवृत्तियों को उचित रूप में विकसित करने के पर्याप्त अवसर प्रदान किये जाते हैं।

3. वैज्ञानिक विधि- आधुनिक पर्यवेक्षण प्राचीन तथा परम्परागत विधियों में विश्वास नहीं रखता। इसके अन्तर्गत जो विधि अथवा नवीन पद्धति अपनाई जाती है वह पूर्णतया परीक्षित तथा विश्वसनीय होती है। आधुनिक पर्यवेक्षण में वैज्ञानिक विधि को अपनाया जाता है। पर्यवेक्षण के विभिन्न कार्यक्रमों में “समस्या का

चयन, तथ्यों का संकलन तथा वर्गीकरण, सम्भावित विधियों का चयन, परिकल्पना का निर्माण, व्याख्या तथा सामान्यीकरण” आदि वैज्ञानिक विधि के सोपानों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

4. रचनात्मक- आधुनिक पर्यवेक्षण का किसी एक ही व्यक्ति के आदेश पर संचालन नहीं किया जाता है। इस प्रकार के पर्यवेक्षण में सुधार पर ध्यान दिया जाता है जिसके लिये सभी सम्बन्धित व्यक्तियों का परामर्श लिया जाता है, उनकी मौलिकता तथा रचनात्मकता को विकसित करने के लिये स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। शिक्षण विधि तथा शिक्षण सामग्री में नवीन प्रयोगों को करने के लिये शिक्षकों को उत्साहित किया जाता है। शिक्षकों की अन्तर्निहित क्षमताओं का विकास करने के लिये आधुनिक पर्यवेक्षण पूर्ण सहयोग प्रदान करता है।

5. नेतृत्व की क्षमताओं के विकास में सहायक- आधुनिक पर्यवेक्षण दमन नीति से दूर होता है। इसीलिये यह पर्यवेक्षण शिक्षकों तथा छात्रों की नेतृत्व शक्ति के विकास में सहायक होता है। मुख्य पर्यवेक्षण अपनी सहायता के लिये अन्य पर्यवेक्षण की नियुक्ति करता है। जिससे अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व का भी विकास होता है। विद्यालयों में उप प्रधानाचार्य, क्रीडाध्यक्ष, पुस्तकालयाध्यक्षक, पाठ्येतर विभिन्न कार्यक्रमों “वाद-विवाद, संगीत, नाटक” आदि के अध्यक्ष नियुक्त किये जाते हैं। इन कार्यक्रमों का संचालन सभी व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुकूल स्वतन्त्र वातावरण में करते हैं जिससे उन्हें नेतृत्व शक्ति को विकसित करने का प्रशिक्षण भी मिलता है। छात्रों को भी अनेक कार्यों के प्रति उत्तरदायी बना कर उन्हें नेतृत्व का प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रकार आधुनिक पर्यवेक्षण शक्ति के विकास में पूर्णरूपेण सहायक होता है।

6. वस्तुनिष्ठ तथा अधिक प्रभावशाली- आधुनिक पर्यवेक्षण के समस्त कार्यक्रमों में वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया जाता है। इसलिये इस पर्यवेक्षण के कार्यक्रमों में अधिक वस्तुनिष्ठता एवं विश्वनीयता होती है। सभी व्यक्तियों का आधुनिक पर्यवेक्षण के प्रति आधिक लगाव तथा अपनापन होता है। यह पर्यवेक्षण छात्रों तथा शिक्षकों के हृदय पर शीघ्र तथा स्थायी प्रभाव डालता है। विचार स्वतन्त्रता, सहयोग, समन्वय, रचनात्मक आदि गुणों के कारण भी आधुनिक पर्यवेक्षण अधिक प्रभावकारी होता है।

7. नवीन विधि, अनुसन्धान एवं आयाम हेतु सहायक- आधुनिक पर्यवेक्षण की विधियाँ परम्परागत पर्यवेक्षण की विधियों से सर्वथा पृथक हैं। इसमें आकस्मिक निरीक्षण, छिद्रान्वेषण, व्यक्तित्व प्रदर्शन के स्थान पर अनौपचारिक निरीक्षण, परामर्श तथा शिक्षक-सम्मान को अधिक उतसाहित किया जाता है। पर्यवेक्षण आज “चोर-सिपाही” के खेल जैसा न होकर सहयोगी, आशंका रहित तथा सीखने वाला अधिक होता है, उन्हें प्रोत्साहन दिया जाता है तथा उनके निष्कर्षों को अपनापन का प्रयास किया जाता है। विज्ञान तथा तकनीकी द्वारा आविष्कृत नवीन आयामों को भी आधुनिक पर्यवेक्षण में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इन सभी नवीन प्रयोगों तथा आयामों को अपनाकर आधुनिक पर्यवेक्षण के शिक्षा स्तर को ऊपर उठाने के लिये अधिकाधिक उपयोगी बनाया जाता है। वस्तुतः इस पर्यवेक्षण को अधिक प्रविधि युक्त कहा जा सकता है। शिक्षण कौशल की वृद्धि में विभिन्न तकनीकियों के निरन्तर प्रयोग में आधुनिक पर्यवेक्षण विश्वास रखता है। आधुनिक पर्यवेक्षण यह मानकर ही अधिक परिश्रम करता है कि शिक्षण कार्य इतना सुलभ नहीं है जिसे साधारण योग्यता वाले व्यक्ति

भी सफलता पूर्वक कर सकते हैं। योग्यतम तथा प्रभावशाली शिक्षक बनाने में आधुनिक पर्यवेक्षण सहायक होता है।

8. “शिक्षण सेवा” पर आधारित- आधुनिक पर्यवेक्षण का मुख्य उद्देश्य शिक्षकों का केवल मूल्यांकन करना नहीं अपितु शिक्षकों की सेवा करना है। इस पर्यवेक्षण में सेवा भावना तथा भ्रातृ भावना पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार आधुनिक पर्यवेक्षण को शिक्षण-सेवा के लिये महत्वपूर्ण समझा जाता है।

9. अधिकाधिक एकीकृत तथा समन्वयकारी- आधुनिक पर्यवेक्षण अकेला होकर कार्य करने की प्रणाली में विश्वास नहीं है। शैक्षिक उन्नति के लिये सभी व्यक्तियों तथा सभी स्थानों से सहायता प्राप्त करने, कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करने तथा उपयोगी व्यक्तियों को एक साथ जोड़ने के लिये आधुनिक पर्यवेक्षण अद्भुत प्रयास करता है। एक विद्यालय की गतिविधियों से दूसरे विद्यालय का सम्बन्ध जोड़ने तथा सामूहिक रूप में कार्यक्रमों का आयोजन करने का भी प्रयास किया जाता है। शिक्षक एवं छात्र एक दूसरे के गुणों से प्रभावित होकर अपना शैक्षिक स्तर ऊँचा उठा सकें इसके लिये आधुनिक पर्यवेक्षण अधिक जागरूक तथा प्रयत्नशील रहता है।

10. समस्या समाधान हेतु अधिक जागरूक- आधुनिक पर्यवेक्षण से समस्या समाधान के प्रति सुप्त कदापि नहीं होता। “शिक्षण-प्रक्रिया, शिक्षा सुविधा, छात्र विकास” के मार्ग में उपस्थित कठिनाइयों का शीघ्र निवारण करने के लिये आधुनिक पर्यवेक्षण सदैव तत्पर रहता है। समस्या समाधान के लिये सभी सम्बन्धित व्यक्तियों का परामर्श लेकर आधुनिक पर्यवेक्षण में जनतात्रिक प्रणाली से कार्य किया जाता है। पर्यवेक्षण जानबूझकर भी कुछ प्रमुख समस्याओं को शिक्षकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। जिससे उनकी रचनात्मक योग्यताओं का अधिकाधिक लाभ उठाया जा सकता है। सारांश यह है कि समस्त शैक्षिक कार्यक्रमों में उत्तम दशा उत्पन्न करने के प्रमुख उत्तदायित्व का आधुनिक-पर्यवेक्षण द्वारा कुशलता पूर्वक निर्वाह किया जाता है।

शैक्षिक पर्यवेक्षण का लक्ष्य कार्य संचालन और उसका सुधार करना ही नहीं होता है अपितु समस्यायें कार्य संचालन में ही उत्पन्न होती हैं इसलिए पर्यवेक्षण से समस्याओं की पहचान करके समाधान भी किया जाता है।

वस्तुतः परम्परागत तथा आधुनिक पर्यवेक्षण में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह भी है कि परम्परागत पर्यवेक्षण का व्यक्तित्व ही प्रधान होता है। अन्य कर्मचारी उसी के आदेशों की प्रतीक्षा करते हैं परन्तु आधुनिक पर्यवेक्षण में शिक्षक प्रत्येक कार्य को करने के लिये आगे आते हैं तथा पर्यवेक्षण का व्यक्तित्व परामर्शदाता के रूप में पीछे होता है।

परम्परागत तथा आधुनिक पर्यवेक्षण के सम्बन्ध में पूर्व पृष्ठों में पर्याप्त उल्लेख किया जा चुका है। जिसके आधार पर दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध को और भी अधिक स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है।

11.6 शिक्षा पर्यवेक्षण का महत्व

स्वतन्त्र भारतवर्ष में विद्यालय शिक्षा का अत्यधिक महत्व है। विद्यालय के कक्षा-भवनों में कल के नागरिकों का निर्माण किया जाता है। देश की सामाजिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी आदि परिस्थितियों का प्रभाव विद्यालय की शिक्षा पर ही होता है। विद्यालयों के पाठ्यक्रम में आज विधि विषयों को अपनाया जाता है। इनके असीमित एवं अतुलित भण्डार को विद्यालयों में अपनाने का अधिकाधिक प्रयास किया जाता है। विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की शिक्षा में आज जितनी विविधता, व्यापकता तथा परिणात्मकता है वह पहले कभी नहीं थी। अनेक प्राविधिक, कृषि सम्बन्धी, व्यावसायिक आदि क्षेत्रों से सम्बन्धित संस्थाओं को स्थापित किया गया है। वास्तव में शिक्षण संस्थाओं तथा शिक्षार्थियों की संख्या में वृद्धि करने से कोई विशेष लाभ तब तक नहीं होता जब तक उसका उचित रूप में निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण न किया जाता हो। विज्ञान एवं तकनीकी के कारण आज शिक्षण सामग्री तथा शिक्षक उपकरणों के क्षेत्र में अधिकाधिक विकास हुआ है। अतएव इनका समुचित लाभ उठाने के लिये शैक्षिक पर्यवेक्षण के महत्व को स्वीकार किया जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण विधियों, शिक्षक की समस्याओं, उचित पाठ्यक्रम निर्धारण, पाठ्येतर क्रिया-कलापों को विद्यालयों में किस प्रकार सुनियोजित किया जाये और शिक्षा स्तर को गुणात्मकता की ओर किसी प्रकार अग्रसर किया जाय, वास्तव में इसके लिये शैक्षिक पर्यवेक्षण अधिक मूल्यवान एवं लाभकारी है। अन्य व्यय करके उत्तम शिक्षा ग्रहण करने तथा मानवीय साधनों की अधिकतम उपलब्धि करने में शैक्षिक पर्यवेक्षण की विधियां महत्वपूर्ण समझी जाती हैं। इसके अतिरिक्त भौतिक साधनों को उचित रूप में जुटाने के कार्य में शैक्षिक प्रशासन सहायक होता है। विद्यालय समुदायिक स्रोतों को अपनाकर किस प्रकार उन्नति करें तथा सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप विद्यालयों की शिक्षा में किस प्रकार का परिवर्तन किया जाय, इसके लिये दिशा निर्देश शैक्षिक प्रशासन ही कर सकता है। शैक्षिक योजनाओं का निर्माण करने, विद्यालयों के समस्त कार्यक्रमों का उचित मूल्यांकन करने तथा शिक्षा कार्य को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने में शैक्षिक पर्यवेक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है।

11.6.1 शिक्षा पर्यवेक्षण की प्रकृति

शिक्षा पर्यवेक्षण शिक्षा के क्षेत्र में एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे शिक्षा की उत्तम व्यवस्था की जाती है। शैक्षिक पर्यवेक्षण की प्रकृति अत्यन्त गत्यात्मक होती है। जो शैक्षिक स्तर को ऊँचा करने में सदैव सहायक होती है। शैक्षिक पर्यवेक्षण की प्रकृति की कुछ विशेषताओं का निम्नलिखित पंक्तियों में उल्लेख किया जा सकता है।

1. शिक्षा पर्यवेक्षण शिक्षण प्रक्रिया की उन्नति में सहायक होता है - शैक्षिक पर्यवेक्षण वास्तव में शिक्षण कार्य की दशाओं में सदैव उन्नति प्रदान करता है। शिक्षण यदि उत्तम ढंग से होता है तो सीखने की स्थिति में भी सुधार हो जाता है। अतएव शैक्षिक पर्यवेक्षण के अन्तर्गत जितनी नवीन विधियां अपनाई जाती हैं, उनका उद्देश्य शिक्षण प्रक्रिया को उन्नत करना ही होता है।

2.व्यवसायिक नेतृत्व हेतु प्रोत्साहनकारी - शैक्षिक पर्यवेक्षण के अन्तर्गत शिक्षकों को शिक्षण कार्य सिखाने का प्रयास किया जाता है। शैक्षिक पर्यवेक्षकों की सहानुभूति शिक्षकों को शिक्षण कार्य सिखाने के प्रयास में रूचि लेने के लिये प्रोत्साहन देती है। शिक्षकों को व्यक्तित्व का विकास करने के पर्याप्त अवसर प्रदान किये जाते हैं, इस प्रकार शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षकों को व्यावसायिक नेतृत्व की योग्यता प्रदान करने में सहायक होता है।

3. शैक्षिक पर्यवेक्षण एक शैक्षिक सेवा - शिक्षा पर्यवेक्षण शैक्षिक सेवा के रूप में कार्य करता है। आधुनिक पर्यवेक्षण की भावना प्रशासन की नहीं अपितु सेवा की होती है। इस सम्बन्ध में “जेनेवा में हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का मत उल्लेखनीय है।

“Inspection should be considered as a service to interpret to teachers and the public the educational policies of the authorities and modern educational ideas and methods and also to interpret to the competent authorities the experience, needs and aspirations of teachers and local communities.”

4. शैक्षिक पर्यवेक्षण में सहयोग की भावना - शैक्षिक पर्यवेक्षण की प्रवृत्ति में संयोगात्मक भावना की प्रमुखता होती है। शिक्षकों के विकास के लिये शैक्षिक पर्यवेक्षण की नीति समन्यवयकारी तथा सहयोगात्मक होती है। शिक्षकों को इस प्रकार प्रोत्साहित किया जाता है कि वे व्यक्तिगत तथा सामुहिक रूप में अपने कार्यों का सम्पादन प्रभावशाली ढंग से करते हैं।

11.6.2 शिक्षा पर्यवेक्षण : शैक्षिक नेतृत्व

कार्य की उचित गति ही उद्देशों की पूर्ति में सहायक होती है। शैक्षिक पर्यवेक्षण के कार्य भी ही होते हैं जो शैक्षिक उन्नति के लिये सहायक होते हैं। अतएव कार्यों के अभाव में अथवा कार्यों की गति रूक जाने से छोटा या बड़ा किसी प्रकार का संगठन या प्रशासन असफल ही हो जाता है।

1. नेतृत्व प्रदान करना - शिक्षा पर्यवेक्षण का मुख्य कार्य नेतृत्व का प्रशिक्षण समझा जाता है। जनतन्त्रात्मक देश में तो नेतृत्व की नितान्त आवश्यकता होती है। कोई भी पर्यवेक्षण सम्पूर्ण उत्तरदायित्व का वहन स्वयं अकेला होकर नहीं करता। वह अपनी सहायतार्थ अन्य सहनेताओं का भी चयन करता है जिससे उसके कार्य में सुविधा होती है तथा अन्य व्यक्तियों को भी नेतृत्व करने के अवसर मिलते हैं। वर्तमान युग में प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों का सर्वत्र व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रजातान्त्रिक पद्धित का विश्वास समान अवसरों को प्रदान करने तथा सभी व्यक्तियों को सम्मानित समझने में होता है। शैक्षिक पर्यवेक्षण का मुख्य कार्य भी अपने समूह के सभी व्यक्तियों को आदर करना तथा इस प्रकार उन्हें प्रोत्साहन देना है जिससे वे कार्यों में पूरा सहयोग प्रदान करें। इस भावना के अन्तर्गत पर्यवेक्षण केवल परामर्शदाता तथा संकलनकर्ता के रूप में होता है अन्य सभी व्यक्ति स्वयं को नेता मानकर समय तथा परिस्थिति के अनुसार उत्तम कार्य करने के लिये अभ्यस्त हो

जाते हैं। जिस समूह के कार्य केवल एक ही नेता (पर्यवेक्षक) की प्रतीक्षा में अधूरे पड़े न रहकर अन्य व्यक्तियों के सहयोग से सम्पन्न होते हैं, वह समूह नेतृत्व-शक्ति का उत्तम प्रशिक्षण देने वाला समझा जाता है।

शैक्षिक कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिये विभिन्न मतों को प्रकट करने वाले तथा विभिन्न स्वभावों के व्यक्तियों को एक साँचे में ढालने का कार्य महत्वपूर्ण समझा जाता है।

वास्तव में “नेतृत्व” के अभाव में व्यक्तियों की अन्तःनिर्हित क्षमताओं का विकास सम्भव नहीं होता। “कैम्पबैल तथा ग्रेग” ने अपनी पुस्तक में “नेतृत्व” को ऐसी सम्पूर्ण प्रक्रिया माना है जिसके द्वारा मानवीय तथा भौतिक स्रोतों को उपलब्ध किया जा सकता है तथा उन स्रोतों को किसी भी कार्य के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये प्रभावकारी बनाया जा सकता है।

निःसन्देह कहा जा सकता है कि सामूहिक भावना तथा प्रयास को बढ़ावा देने के लिए शैक्षिक पर्यवेक्षण का “नेतृत्व प्रदान” करने का कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसी भावना के फलस्वरूप एक समूह के व्यक्ति आपस में घनिष्ठ बनते हैं तथा अपनी योग्यताओं का ठीक प्रकार परिचय देते हैं।

2. नीतियों का निर्धारण करना - शिक्षा के क्षेत्र में उचित नीतियों का निर्धारण करना शैक्षिक पर्यवेक्षण का महत्वपूर्ण कार्य है। नीति-निर्धारण में यद्यपि जनता में मत को प्रमुख श्रेय दिया जाना चाहिए, परन्तु भारतवर्ष जैसे विकासशील देश में जहाँ की जनता को अभी जनतात्रिक पद्धति के लिये अभ्यस्त कराया जा रहा हो, शैक्षिक नीति निर्धारण का कार्य नहीं सौंपा जा सकता। इसीलिये शैक्षिक पर्यवेक्षण का यह कार्य और भी अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण है। शिक्षा वास्तव में एक उद्देश्य पूर्ण प्रक्रिया है। व्यक्तियों की शक्तियों तथा योग्यताओं को उचित विकास तथा समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल ही शिक्षा-प्रणाली की व्यवस्था करना शिक्षा का महान उद्देश्य हुआ करता है। शिक्षा के उद्देश्यों तथा लक्ष्यों का निर्माण करने तथा शिक्षा की योजना में सामाजिक आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता है। समाज के व्यक्तियों द्वारा अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की जाती है राज्य सरकारें भी शिक्षा पर अतुलित धनराशि व्यय करती है तथा शिक्षण संस्थाओं में अध्यापक एवं प्रशासक शैक्षिक उन्नति के लिये पूर्ण प्रयास करते हैं, परन्तु इन सभी व्यक्तियों का प्रयास निष्फल तथा प्रभावहीन हो जायेगा, यदि शिक्षा के क्षेत्र में उचित एवं लाभकारी नीतियों को निर्धारित नहीं किया जाता। पर्यवेक्षण का “नीति निर्धारण” करने का कार्य इतना सुनिश्चित होना चाहिए जो किसी भी संस्था अथवा संगठन के लिये उचित निर्देशन दे सके। उचित निर्माण करने के अभाव में न तो सदृढ़ योजना को बनाया जा सकता है और न ही कार्यों का संचालन ठीक प्रकार से हो पाता है। योजना निर्माण कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन का उत्तरदायित्व वस्तुतः शैक्षिक पर्यवेक्षण का ही होता है। अतः उपयोगी नीतियों को निर्धारित करने के उपरान्त ही शैक्षिक पर्यवेक्षण को अन्य कार्यों में सफलता मिल सकती है। शैक्षिक पर्यवेक्षण का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए कि वह सामुदायिक आवश्यकताओं पर ध्यान रखते हुए ही नीतियों का निर्धारण करे। वस्तुतः नीति तथा योजना का सामुदायिक आवश्यकताओं से अविच्छिन्न सम्बन्ध होता है। जैसे “बार, बर्टन तथा बुकर” ने लिखा है।

“Policy and plan are thus kept closer to the needs of the total community”

नीति निर्धारण के लिये देश की जनता को जागरूक बनाने की परमावश्यकता है। शिक्षा के नवीन पहलुओं तथा नवीन आयामों पर जनता द्वारा किया गया गहन चिन्तन शिक्षा विशारदों, शिक्षा मन्त्रियों तथा शैक्षिक पर्यवेक्षकों को उत्साहित अवश्य करेगा। जिस जनता के लिये शैक्षिक नीतियों को निर्धारित किया जाता है वह यदि शैक्षिक प्रक्रिया के महत्वपूर्ण कार्यों में भाग न ले तो यह हास्यास्पद एवं दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जा सकता है। शैक्षिक पर्यवेक्षण के “नीति निर्धारण” कार्य के अन्तर्गत जनता को शिक्षा के प्रति चिन्तनशील बनाना भी प्रमुख कार्य समझा जाता है।

3. व्यक्तियों की कार्य क्षमता में वृद्धि - शैक्षिक पर्यवेक्षण की सम्पूर्ण गतिविधि शिक्षकों के शिक्षण कार्य को उन्नत बनाती है। शिक्षण संस्थाओं में यद्यपि शिक्षकों के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति भी कार्य में लगे रहते हैं तथापि शैक्षिक पर्यवेक्षण का मुख्य कार्य शिक्षकों को परामर्श देना, शिक्षण अवस्थाओं में सुधार करना तथा शिक्षण सामग्री को उन्नत बनाना ही समझा जाता है। आधुनिक पर्यवेक्षण के अनुसार शैक्षिक पर्यवेक्षक का मुख्य उत्तरदायित्व शिक्षकों की योग्यताओं का विकास करना माना जाता है। शिक्षक के लिये उनकी अधिकाधिक उपयोगिता क्या और किस प्रकार सम्भव हो सकती है? इसका सही निर्देशन शैक्षिक पर्यवेक्षण ही दे सकता है। शैक्षिक पर्यवेक्षण अध्यापकों को इस प्रकार की नेतृत्व शक्ति प्रदान करता है जिससे वे व्यावसायिक कुशलता को प्राप्त करते हैं और शिक्षण संस्थाओं की दशाओं में सुधार करते हैं। फिर भी अध्यापकों में यह व्यावसायिक कुशलता तथा शिक्षण योग्यता तब तक अंकुरित नहीं होती जब तक उसमें आत्म बोध की भावना और जिज्ञासा उत्पन्न न हो। वास्तविक आवश्यकता तथा जिज्ञासा के कारण व्यक्ति कुछ करने या सीखने के लिये विवश होता है। शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षकों में जिज्ञासा को अंकुरित करने का महत्वपूर्ण कार्य करता इस प्रकार उत्तम शिक्षा पर्यवेक्षण वही होता है जिसमें अध्यापक अधिकाधिक कार्य करते हैं अथवा जिसमें शिक्षक आलसी एवं सुस्त न होकर अधिक जागरूक रहते हैं। इस प्रकार शिक्षकों को शिक्षण कार्य के प्रति अधिकाधिक जागरूक बनाना शैक्षिक पर्यवेक्षण का कार्य ही समझा जाता है।

शिक्षकों की व्यावसायिक उन्नति में शैक्षिक पर्यवेक्षण कई प्रकार से सहायक हो सकता है। तथा सेवाकाली प्रशिक्षण के द्वारा शिक्षकों की सहायता की जा सकती है, अनुभवी शिक्षकों के शिक्षण अनुभवों का लाभ उठाते हुये कोई रचनात्मक कार्य अवश्य किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यदि शिक्षकों तथा शैक्षिक पर्यवेक्षकों के बीच सद्भावना होती है तथा शिक्षकों को कार्य करने की स्वतन्त्रता रहती है तो उत्तम शिक्षण प्राप्त करने का उद्देश्य सरलता पूर्वक प्राप्त हो जाता है। शैक्षिक पर्यवेक्षण के क्षेत्र में पर्यवेक्षक तथा शिक्षक दोनों ही एक दूसरे से सीखने का प्रयास करते हैं। पर्यवेक्षण के अन्तर्गत सर्जनात्मक तथा प्रभावशाली शिक्षण कार्यों को अपना ही शिक्षकों को सही दिशा प्रदान करना है। पर्यवेक्षण को शिक्षकों के साथ छात्रों के व्यवहार का अध्ययन करना होता है, छात्रों की आवश्यकताओं को समझना पड़ता है। पर्यवेक्षण गम्भीर अध्ययन होता है, छात्रों की आवश्यकताओं को समझना पड़ता है। पर्यवेक्षण गम्भीर अध्ययन करने के उपरान्त ही किसी निष्कर्ष

पर पहुंचते हैं सारांश में यह कहा जा सकता है कि सहयोग, सद्भावना, समायोजन तथा स्वतन्त्रता की भावना को अपनाकर ही शैक्षिक पर्यवेक्षक शिक्षकों की व्यवसायिक उन्नति के कार्य में सफल हो सकता है।

4.मानवीय सम्बन्धों में सुधार - किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास उस पर्यावरण पर अधिक आश्रित होता है जहाँ उसे जीवन व्यतीत करना होता है। परिवार के 'प्रेम' सहानुभूति, उदारता परोपकार आदि मानवीय गुणों को जिस व्यक्ति ने समीपता से देखा है वे गुण उस व्यक्ति में स्वयमेव आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त परिवार एवं समाज में व्याप्त परिस्थितियाँ व्यक्ति को निराशा, उदास एवं शिथिल बनाती हैं। जिससे व्यक्ति समाज के प्रति कुण्ठाग्रस्त हो जाता है किसी संस्था या समाज में रहकर व्यक्ति प्रेम, सम्मान तथा सहानुभूति की भावना को प्राप्त करता है तो उसके व्यक्तित्व में सुरक्षा और आत्मविश्वास जागृत हो जाता है। समूह के प्रत्येक व्यक्तित्व में सुरक्षा और आत्मविश्वास जागृत हो जाता है। समूह के प्रत्येक व्यक्ति का सही उपचार किया जा सकता है तथा समूह के सभी कार्यों को उन्नत किया जा सकता है।

शिक्षा पर्यवेक्षण का मुख्य कार्य शैक्षिक क्षेत्र में लगे हुये सभी व्यक्तियों के प्रति उत्तम मानवीय सम्बन्ध की भावना को प्रदर्शित करना है।

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि एक समूह के अन्तर्गत कुछ व्यक्तियों को एकत्रित करना मात्र ही मानवीय सम्बन्धों की स्थापना नहीं कहा जा सकता। इस विषय में "किमबाल विल्स" ने कहा है -

“प्रार्थना करने से ही उत्तम मानवीय सम्बन्धों का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता, जब व्यक्ति साथ रहते हैं तथा अपने सहयोगियों के साथ कार्य करते हैं तो उनमें अनुकरण करने में स्वयं ही उत्तम मानवीय गुण विकसित हो जाते हैं।”

शिक्षा पर्यवेक्षण को मानवीय सम्बन्धों की स्थापना करने के लिये अथक प्रयास करना पड़ता है। इसके लिये पर्यवेक्षण को कुछ बातों की ओर अवश्य ही ध्यान आकर्षित करना चाहिये। इन बातों का संक्षेप में इस प्रकार उल्लेख किया जा सकता है-

क) शिक्षा पर्यवेक्षक के मस्तिष्क में स्वयं को बड़ा समझने की भावना नहीं रहनी चाहिये। उसे अपने समस्त सहयोगियों को समान स्तर वाला ही समझना चाहिये। पर्यवेक्षक द्वारा किसी भी कार्य में शासन कार्य में सेवा भावना को ही प्रमुख समझें। पर्यवेक्षक की यह भावना उसके सहयोगियों में सुरक्षा तथा आत्म विश्वास की भावना को उत्पन्न करेगी।

ख) शिक्षा पर्यवेक्षक को अपने सहयोगियों की योग्यता एवं ईमानदारी के प्रति पूर्ण आस्था एवं विश्वास होना चाहिये। पर्यवेक्षक को यह पूर्ण विश्वास होना चाहिये कि समूह की क्रियाओं को करने के लिये समूह का प्रत्येक व्यक्ति योग्यता रखता है अतएव पर्यवेक्षक द्वारा समूह के सभी व्यक्तियों को कार्य करने के लिये समान अवसर प्रदान किये जाने चाहियें जिससे सभी व्यक्ति उत्साह पूर्वक कार्यों में भाग ले सकें तथा समस्याओं का निराकरण करने में भागीदार बन सकें।

ग) योग्य शिक्षा पर्यवेक्षक को कार्य की सफलता का श्रेय स्वयं न लेकर समूह के व्यक्तियों को ही देना चाहिये। अपनी त्रुटियों को स्वीकार करने में भी पर्यवेक्षक को संकोच नहीं करना चाहिये। अन्य सहयोगियों की त्रुटियों के कारण यदि कार्य में विघ्न पड़े अथवा असफलता मिले तो इसके लिये सहयोगियों को दोषी कभी नहीं ठहराना चाहिये। वास्तव में किसी भी कार्य की योजना तथा कार्यान्वयन आदि के लिये शैक्षिक पर्यवेक्षक ही

पूर्ण रूप से उत्तरदायी होता है। इस उत्तरदायित्व का वहन पर्यवेक्षक को प्रसन्नतापूर्वक करना चाहिये। शैक्षिक पर्यवेक्षक का गुण अत्यन्त आकर्षक, असाधारण एवं महत्वपूर्ण होता है।

घ) शिक्षा पर्यवेक्षण द्वारा ऐसे उत्साह जनक तथा प्रेरणायुक्त वातावरण की रचना की जानी चाहिये जिसमें पर्यवेक्षक के साथ अन्य सहयोगी विचारों का खुलकर आदान-प्रदान कर सकें, जिसमें सहयोगियों की सहयोगात्मक भावना का पूरा लाभ उठाया जा सकें, इसके अतिरिक्त यदि नवीन प्रयोगों में शैक्षिक पर्यवेक्षक तथा शिक्षक एकजुट होकर कार्य करते हैं तो सम्बन्धों में पर्याप्त सुधार होता है।

ड) शिक्षा पर्यवेक्षक का शिक्षकों के प्रति व्यवहार अत्यन्त मधुर तथा मानवीय होना चाहिये क्योंकि पर्यवेक्षक शिक्षकों का शिक्षक या सहायक नहीं होता है, अपितु उनमें से एक व्यक्ति ही होता है। एक समूह में एक साथ रहते हुये तथा सहयोगियों पर सद्भावनापूर्ण विश्वास रखकर ही मानवीय सम्बन्धों की वृद्धि की जा सकती है। वास्तव में यह कार्य किसी भी संस्था का प्राण होता है। संस्था की उन्नति, सफलता तथा प्रसिद्ध मानवीय सम्बन्धों की मधुरता में ही व्याप्त होती है।

5. शिक्षा-अधिगम व्यवस्था का अध्ययन - शिक्षा पर्यवेक्षण का क्षेत्र आधुनिक युग में अत्यन्त उत्तम है। पूर्व समय में कक्षाओं का निरीक्षण, शिक्षकों का छिद्रान्वेषण, आर्थिक अनुदानों की आय-व्यय का निरीक्षण, शिक्षा के सम्बन्ध में सामान्य निर्देशन देना ही पर्यवेक्षण का कार्य समझा जाता था, परन्तु आधुनिक पर्यवेक्षण की दृष्टि “छात्र, शिक्षक, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक, शिक्षण सामग्री, मूल्यांकन, पाठ्य सहगामी तथा पाठ्येतर क्रियाओं की ओर रहती है। सीखने वाले छात्र तथा सिखाने वाले शिक्षक को विभिन्न अवस्थाओं में सुधार करने का उत्तरदायित्व भी पर्यवेक्षक का ही होता है। सारांश में कहा जा सकता है कि शिक्षा की सम्पूर्ण क्रिया में वाछनीय परिवर्तन करना शैक्षिक पर्यवेक्षण का मुख्य कार्य है। शैक्षिक पर्यवेक्षण का मुख्य उद्देश्य सीखने की परिस्थितियों में आवश्यक सुधार करना है। इसके लिये पर्यवेक्षक को अधिकाधिक गहन अध्ययन करने की आवश्यकता है। पर्यवेक्षक का इस सम्बन्ध में दृष्टिकोण तथा सर्वेक्षण अत्यन्त व्यापक होना चाहिए। उसे संस्था या विभाग के समस्त छात्रों तथा शिक्षकों की संख्या का ठीक ज्ञान होना चाहिए। छात्र इस समय किस प्रकार के पाठ्यक्रम का अध्ययन कर रहे हैं तथा कक्षा भवनों में शिक्षक किस प्रकार शिक्षण सामग्री का प्रयोग कर रहे हैं, इस सम्बन्ध में शैक्षिक पर्यवेक्षक को स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। इसके अतिरिक्त नवीनतम आयामों, नवीन शिक्षण विधियों, नई तकनीकी तथा नवीन अनुसन्धानों के विषय में भी पर्यवेक्षक को सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। शैक्षिक पर्यवेक्षक का उत्तरदायित्व केवल शैक्षिक कार्यक्रमों का निरीक्षण करना ही नहीं है, जिस सामाजिक वातावरण में संस्था स्थापित है, उसके प्रति भी पर्यवेक्षक को समन्वयात्मक दृष्टि रखनी पड़ती है। शिक्षण संस्था को समुदाय के निकट किस प्रकार रखा जा सकता है, इसका पर्यवेक्षक को विशिष्ट अध्ययन करना परमावश्यक है। शिक्षा के उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक पर्यवेक्षक कितना सही कार्य कर रहा है इसका भी पर्यवेक्षक को अध्ययन करना चाहिए। इतना स्वीकार करने योग्य है कि शैक्षिक पर्यवेक्षक जितना अध्ययनशील, समस्याओं के प्रति सजग तथा नवीन ज्ञान के प्रति जिज्ञासू होता है, शैक्षिक पर्यवेक्षण उसी अनुपात में प्रभावशाली होता है।

6. शिक्षण अधिगम व्यवस्थाओं में सुधार - शिक्षण-अधिगम की समस्त अवस्थाओं का अध्ययन करने के उपरान्त शैक्षिक पर्यवेक्षक इस दिशा में आवश्यक सुधार करने योग्य बनता है। अपने सभी सहयोगियों का

सहयोग प्राप्त करके शैक्षिक पर्यवेक्षक, शिक्षण-अधिगम की अवस्थाओं में पर्याप्त सुधार कर सकता है। वर्तमान युग में शिक्षण तथा अधिगम के तीन स्तरों को निरन्तर दृष्टि में रखा जाता है। ये स्तर हैं - (1) स्मृति स्तर (2) बोध स्तर तथा (3) चिन्तन स्तर। आज केवल छात्रों को कुछ सामग्री कण्ठस्थ कराना ही पर्याप्त नहीं है अपितु उनकी बुद्धि में इस प्रकार वृद्धि करना आवश्यक समझा जाता है जिससे वे अधिक चिन्तशील तथा सर्जनात्मक बनाने के लिये परम्परागत पाठ्यक्रम पर ही आश्रित नहीं रहा जा सकता। इसके लिये पाठ्यक्रम के नवीन सिद्धान्तों की ओर ध्यान आकर्षित करना पड़ता है। पाठ्यक्रम बाल केन्द्रित तथा अनुभव केन्द्रित होना चाहिए जिससे बालकों की निरन्तर उन्नति हो सके। वास्तव में जो बातें छात्रों के पूर्व अनुभवों में व्याप्त हैं, उन्हीं के आधार पर नवीन ज्ञान देना श्रेयस्कर होता है। पाठ्यक्रम में भी इसी बात का भी अवश्य ध्यान रखना चाहिए। “बार, बर्टन तथा ब्रूकर” का भी यही मत है-

“Effective guidance of the learning activity depends upon knowledge by the teachers of the characteristic and background of each pupil. – Barr, Burton & Brukner “

7.शैक्षिक उत्पादन में वृद्धि - किसी भी देश के महान उद्देश्यों की प्राप्ति शिक्षा के माध्यम से ही की जाती है। शिक्षा के उद्देश्य राष्ट्र के उद्देश्यों से पृथक नहीं समझे जाते। उदाहरण के लिये कोई भी राष्ट्र अपने नागरिकों की स्वांगीण उन्नति में विश्वास रखता है, शिक्षा का उद्देश्य भी छात्रों की शक्तियों तथा योग्यताओं को विकसित करना समझा जाता है। शिक्षा ही भावी नागरिकों को इस योग्य बनाती है जिससे वे समाज के कार्यों में कुशलता पूर्वक भाग ले सकें। शैक्षिक पर्यवेक्षण के सभी उद्देश्यों में यही बात मूल रूप से निहित होती है। शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षण-प्रक्रिया का निरन्तर मूल्यांकन करता रहता है। पर्यवेक्षक को निम्नलिखित बातों की ओर सदैव जागरूक रहना पड़ता है-

क) क्या विद्यालयी में दी जाने वाली शिक्षा राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक है?

ख) क्या शिक्षा की प्रक्रिया शिक्षा को पूंजी मानने के लक्ष्य में सहायता कर रही है?

ग) क्या विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा उत्पादन कार्यों में सहायक सिद्ध हो सकती है?

घ) शिक्षक का प्रभावशाली शिक्षण छात्रों के ज्ञानार्जन में कहा तक सहायक है?

ड) शैक्षिक प्रक्रिया में नवीन आयाम किसी सीमा तक शिक्षा की गुणात्मकता वृद्धि में सहायक है।

वास्तव में यह सभी ऐसे कार्य हैं जो शैक्षिक उत्पादन प्रक्रिया में सहायक हैं। शिक्षा का उत्पादन वास्तव में देश के नवयुवकों की योग्यता से सम्बन्धित होता है। शिक्षक के द्वारा यदि किसी देश में कुशल, डाक्टर, इन्जीनियर, वैज्ञानिक, तकनीकी विशेषज्ञ, कलाकार शिक्षक तथा कुशल नेताओं का निर्माण किया जाता है तो वह शिक्षा का श्रेष्ठ उत्पादन ही कहा जाता है, परन्तु इन सभी योग्य व्यक्तियों का निर्माण कक्षा-भवनों में ही किया जाता है। उत्तम व्यक्ति होने के बीज शैक्षिक संस्थाओं में ही अंकुरित किये जाते हैं। प्रारम्भ में ही हमें यह देखना होता है कि हम अपने छात्रों को किस प्रकार की और किस ढंग से शिक्षा दे रहे हैं। आज के युग में होनहार व्यक्तियों की योग्यताओं को प्राथमिकता दी जाती है यह स्वीकार किया जाता है कि भौतिक साधनों की अपेक्षा मानव अधिक महत्वपूर्ण है, पाठ्यक्रम निर्माण की अपेक्षा शिक्षक का व्यक्तित्व अधिक प्रभावशाली है तथा शिक्षण की अपेक्षा अधिगम अधिक आवश्यक है।

11.7 सारांश

सभी प्रकार की कुशलताओं के मूल में मानवीय योग्यता ही प्रधान है। छात्रों के नैतिक आध्यत्मिक शैक्षिक तथा नेतृत्व-शक्ति के विकास में प्रभावशाली शिक्षक का योगदान सर्वाधिक होता है। अतएव यदि शिक्षा प्रक्रिया की उत्पादकता में वृद्धि करनी है तो शिक्षक के व्यक्तित्व को तथा उसके आस-पास के वातावरण को शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों के अनुकूल बनाना होगा।

शिक्षा के विस्तृत कार्यभार को अकेला शैक्षिक पर्यवेक्षक ही नहीं संभाल सकता। शिक्षा को उत्पादन कार्यों में किस प्रकार उपयोगी बनाया जाय, इसके लिये शिक्षण-संस्था के सभी सहयोगियों से विचार-विमर्श करने के उपरान्त शैक्षिक पर्यवेक्षक को कोई निर्णय लेना चाहिए। शैक्षिक पर्यवेक्षक को निरन्तर सावधान रहना चाहिए कि विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक बनी रहे यदि शिक्षित नवयुवक धनोपार्जन करने के लिये योग्य नहीं बन रहे हैं, यदि शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया विद्यालय की शैक्षिक उन्नति के स्तर में वृद्धि नहीं कर रही है तो शैक्षिक पर्यवेक्षक को मूल्यांकन-प्रक्रिया नैदानिक तथा उपचारी दोनों ही पक्ष विद्यमान होते हैं। उत्तम शिक्षा की व्यवस्था के लिये कुशल शैक्षिक-पर्यवेक्षण को चिकित्सक साधन तत्काल अपनाने चाहिये। जिस समय और जहाँ कहीं भी उत्तम शैक्षिक सामग्री, प्रभावशाली शिक्षक, सुव्यवस्थित पाठ्यक्रम तथा उत्तम शिक्षण विधि की आवश्यकता हो उसका प्रबन्ध शीघ्र किया जाना चाहिये।

11.8 शब्दावली

निर्देशन - ऐसी प्रक्रिया जिसके आधार पर किसी एक अथवा अनेक व्यक्तियों को किसी न किसी प्रकार की सहायता प्रदान की जाती है।

प्रशिक्षण महाविद्यालय - ऐसा स्थान जहाँ किसी विशेष व्यवसाय से सम्बंधित कौशलों का विकास किया जाता है।

चहुमुखी - बालक के व्यक्तित्व के सभी आयामों का विकास करना।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

- 1 शैक्षिक योग्यता
- 2 सैडलर-कमीशन

11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. “पर्यवेक्षण एक विशिष्ट सेवा है।” इस कथन पर प्रकाश डालिए। (1000 शब्द)

11.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1 माध्यमिक शिक्षा एवं विद्यालय प्रबन्धन (2009), अवधेश किशोर, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- 2 शैक्षिक प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा (2013) सविता सिंह, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- 3 स्कूल प्रबन्धन सूचना तथा सम्प्रेषण तकनीकी (2010) जे0पी0 अग्रवाल, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

- विद्यालय प्रशासन, संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा (2009) एव0पी0 सुखिया, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- शिक्षा प्रशासन (2010) उमेश चन्द्र कुदेसिया, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- विद्यालय प्रबन्धन, (2008), आर0ए0शर्मा, आर लाल बुक डिपो, मेरठ।
- विद्यालय प्रबन्धन (2008) जे0पी0 वर्मा, आर लाल बुक डिपो, मेरठ।
- शैक्षिक प्रबन्धन के मूल तत्व (2009) देवदत्त शर्मा, अग्रवाल पब्लिकेशन (181)
- शैक्षिक संगठन, स्वास्थ्य शिक्षा एवं शिक्षण तकनीकी, डी0पी0 मिश्रा, अग्रवाल पब्लिकेशन
- शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्धन डा0 कर्ण सिंह, गोविन्द प्रकाशन, लखीमपुर खीरी।

इकाई 12 शिक्षा निरीक्षण का अर्थ तथा कार्य

- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 उद्देश्य
- 12.3 निरीक्षण का अर्थ
 - 12.3.1 शिक्षा निरीक्षण का उद्गम एवं विकास
 - 12.3.2 भारत में निरीक्षण का विकास
- 12.4 विद्यालय निरीक्षण की विशेषताएँ
 - 12.4.1 निरीक्षण के उद्देश्य
- 12.5 निरीक्षक के कार्य
- 12.6 निरीक्षण-पद्धति के दोष
- 12.7 भारत में विद्यालय निरीक्षण की वर्तमान स्थिति
 - 12.7.1 निरीक्षण प्रणाली में सुधार हेतु सुझाव
 - 12.7.2 भारत में निरीक्षण सुधार का प्रयास
- 12.8 पर्यवेक्षण की त्रुटियाँ
 - 12.8.1 पर्यवेक्षण में सुधार के उपाय
- 12.9 शैक्षिक प्रशासन में निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण के अभिकरण
- 12.10 सारांश
- 12.11 शब्दावली
- 12.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 12.13 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 12.14 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
- 12.15 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

ऐतिहासिक सन्दर्भ में विचार किया जाए तो आधुनिक पर्यवेक्षण ही निरीक्षण का परिष्कृत स्वरूप है। प्रारम्भिक दर्शन के अनुरूप निरीक्षण का मुख्य उद्देश्य विद्यालयों में उपस्थित विद्यार्थी, शिक्षक और प्रशासकों का विकास है। इसमें विद्यालय और समाज का विकास भी सम्मिलित है। साधारणतः विद्यालय पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण एक ही अर्थ में प्रयुक्त किये जाते हैं। परन्तु दोनों में अन्तर है। इसकी विवेचना इस अध्याय में की गयी है।

पर्यवेक्षण का कार्य रचनात्मक अधिक है, यह शिक्षा प्रशासन की सहायक प्रणाली के रूप में कार्य करता है। इसके अन्तर्गत जिला विद्यालय निरीक्षक, विद्यालयों हेतु निरीक्षकों की नियुक्ति करता है। और विद्यालय की निरीक्षण की तिथियाँ निर्धारित करते हैं। विद्यालय निरीक्षण की तैयारी करते हैं। उसके बाद वे रिपोर्ट तैयार करते हैं। रिपोर्ट की प्रतिलिपियाँ जिला विद्यालयों में सफाई, पुताई आदि निरीक्षण के समस्त ही की जाती है। निरीक्षण परिस्थितियाँ औपचारिकता होती है। बढ़ा-चढ़ा कर निरीक्षकों का लक्ष्य व्यवस्था को सुव्यवस्थित करना तथा अनियमिततओं को उजागर करना होता है, परन्तु आज के निरीक्षण कार्य केवल खानापूरी होती है, कोई परिणाम नहीं निकलता है।

12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त

- आप शैक्षिक निरीक्षण का अर्थ बता सकेंगे।
- शिक्षा निरीक्षण का उद्गम एवं विकास जान सकेंगे।
- भारत में निरीक्षण का विकास जान सकेंगे।
- विद्यालय निरीक्षण की विशेषताएँ समझा सकेंगे।
- निरीक्षण के उद्देश्य और कार्य से अवगत हो सकेंगे।
- निरीक्षण और पर्यवेक्षण पद्धति के दोष जान सकेंगे।
- निरीक्षण प्रणाली में सुधार हेतु सुझाव दे सकेंगे।
- शैक्षिक प्रशासन में निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण के अभिकरण की व्याख्या कर सकेंगे।

12.3 निरीक्षण का अर्थ

वैबिस्टर अंग्रेजी शब्द कोश के अनुसार निरीक्षण का अर्थ किसी व्यक्ति की जाँच करना है। शाब्दिक अर्थ के अनुसार विद्यालय के कार्यों का निरीक्षण विद्यालय-निरीक्षण कहा जा सकता है। डॉ० मुकर्जी के अनुसार-वरिष्ठ अध्यापक अथवा प्रधानाध्यापक द्वारा किए गए मूल्यांकन को निरीक्षण कहा जाता है।

वास्तव में निरीक्षण एवं निरीक्षक की भूमिका देश, समय और परिस्थिति के अनुसार बदली रही है। निरीक्षण के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं। बर्टन महोदय का विचार है कि “शिक्षा निरीक्षण का उद्देश्य शिक्षण में उन्नति करना है। बार और बर्टन के अनुसार निरीक्षण एक आधार है। शिक्षण में उन्नति के सभी कार्यक्रम बनाये जाने चाहिए।

उपर्युक्त परिभाषाओं में उत्प्रेरक विकास, शिक्षकों की सहायक प्रक्रिया, शिक्षण सुधार तथा विकास, शिक्षण में सहायता, शिक्षकों की शक्ति को विकसित करना, शिक्षकों की समस्याओं को हल करना, सीखने की स्थितियों का मूल्यांकन आदि के रूप तथा अर्थ में ही शिक्षा निरीक्षण को मान्य किया गया है।

12.3.1 शिक्षा निरीक्षण का उद्गम एवं विकास

शिक्षा निरीक्षण का प्रत्यय अधिक प्राचीन नहीं है सन् 1909 ई0 से पूर्व इसका अस्तित्व ही नहीं था। सर्वप्रथम इंग्लैंड के बोस्टन नामक नगर में इस शब्द का प्रयोग किया गया। वहाँ विद्यालयों का निरीक्षण कार्य करने के लिये सन् 1909 ई0 में एक विशेष समिति की स्थापना की गयी जिसमें कुछ चुने हुये धर्माधिकारी कुछ धनिक व्यक्ति और कुछ न्यासी सम्मिलित किये गये। इस समिति का कार्य सामान्य रूप से भवन की देखभाल करना, विद्यालय के लिये धन जुटाना तथा शिक्षकों की नियुक्ति पर ध्यान देना था। इस विद्यालय के अधिकांश सदस्य अशिक्षित एवं अप्रशिक्षित होते थे उनमें कार्यक्षमता अधिक नहीं होती थी इसलिये वे निरीक्षण कार्य को भी अपर्याप्त एवं अनियन्त्रित ढंग से करते थे। कुछ समय पश्चात् निरीक्षण की आवश्यकता पर और अधिक बल दिया जाने लगा। सन् (1914) ई0 से निरीक्षकों के क्षेत्र में शिक्षित व्यक्तियों का हस्तक्षेप प्रारम्भ हुआ। सुप्रसिद्ध विद्वान इलियट ने शिक्षण कार्य, शिक्षण कार्य, शिक्षण विधि एवं शिक्षण के उद्देश्यों के सम्बन्ध में अपने सुझाव दिये। सन् (1922) ई0 में बर्टन ने निरीक्षण क महत्वपर अधिकाधिक ध्यान आकृष्ट किया। बर्टन का मत था कि शिक्षण कार्य में सुधार तथा उन्नति के लिये, शिक्षक कार्य में सुधार करने के लिये, विषय एवं पाठ्यवस्तु का चयन करने के लिये, परीक्षण तथा मापन के लिये तथा शिक्षकों की योग्यताओं के आधार पर उनका श्रेणीकरण करने के लिये निरीक्षण का अत्यधिक महत्व है। इस प्रकार निरीक्षण के प्रत्यय का उद्भव इंग्लैंड में हुआ जो आगे चलकर पर्यवेक्षण के स्वरूप में परिवर्तित होता गया।

12.3.2 भारत में निरीक्षण का विकास

भारत में निरीक्षण के इतिहास का आरम्भ बूड के घोषणा पत्र (1954) की संस्तुति के बाद होती है, जिसके अनुसार प्रत्येक राज्य में एक डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक निरीक्षक की नियुक्ति हुई थी। पुनः इन डाइरेक्टरों के लिए शिक्षा की स्थिति का सही चित्र प्रस्तुत करने के लिए योग्य “इन्सपेक्टर” की आवश्यकता सुझायी गई। इस इन्सपेक्टर का कार्य सामयिक रूप से स्कूल और कॉलेजों की स्थिति का विवरण सरकार को भेजना होता था। इनका कार्य परीक्षण कराना व उनमें सहयोग देना भी था। अतः प्रारम्भ से इन्सपेक्टर का कार्य एक प्रकार से नियमों को लागू करने तथा त्रुटियों का निर्धारण करने के लिए ही हुआ।

सन् 1858 में स्कूलों को डाइरेक्टर की ओर से अनुदान की शर्तें प्रस्तुत की गई, जिसके अनुसार इन्सपेक्टर को स्कूलों को निरीक्षण एवं अनुदान राशि की मात्रा निश्चित करने का भी अधिकार दिया गया। इस प्रकार इन्सपेक्टर शिक्षा प्रशासन की एक उच्च अधिकृत के रूप में सामने आया।

सन् 1882 में ‘हन्टर कमीश्र’ की सिफारिश पर इन्सपेक्टर का कार्य शिक्षण की प्रभावशीलता को इस प्रकार देखना था कि जो अनुदान सरकार की ओर से दिया जा रहा है, उसका उपयोग किस सीमा तक समुचित रूप से हो रहा है। बाद में इन्सपेक्टरों को अनुशासन सम्बन्धी अधिकार भी दिए गए।

सन् 1908 में बंगाल के स्कूलों में राष्ट्रीय आन्दोलनों को हतोत्साहित करने के लिए और भी अधिकार दिए गए। सन् (1919) में सेडलर कमीशन निरीक्षण की आलोचना करते हुए लिखा है कि निरीक्षण अधिकांश जल्दबाजी में होता है तथा पाठन विधियों और व्यवस्था के सम्बन्ध में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों से रहित होता है, जोकि स्कूल निरीक्षण के लिए महत्वपूर्ण है।

सन् 1928 में साइमन कमीशन की स्थापना हुई। उसने तत्कालीन विद्यालय निरीक्षण की कमियों की ओर ध्यान दिया। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने भी जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि जो समय इन्सपेक्टर, इन्सपेक्शन पर बिताते हैं, वह कम है, कमियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जो इस प्रकार है -

- i. निरीक्षक शाला में प्रभुत्व, सर्वेसर्वा बनकर आते हैं, जो केवल दोष ही ढूँढते हैं तथा आलोचना करते हैं।
- ii. अधिकतर निरीक्षक औपचारिकता निभाने के लिए आते हैं। वे न तो शैक्षिक विकास पर न ही स्कूल के विकास पर जोर देते हैं।
- iii. निरीक्षक का दृष्टिकोण रचनात्मक न होकर विध्वंसात्मक होता है।
- iv. स्कूलों की संख्या के अनुपात में निरीक्षकों की संख्या कम होती है,

अतः वे पूरे स्कूलों को नियमित रूप से नहीं देख सकते।

फोर्ड फाउंडेशन के तत्वावधान में एक अध्ययन दल ने भारतीय माध्यमिक विद्यालयों में प्रयुक्त निरीक्षण प्रक्रिया का अध्ययन किया तथा सुधार हेतु निम्नांकित सुझाव प्रस्तुत किए।

- i. निरीक्षक को मानवीय सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए अपना कार्य पूरा करना चाहिए और प्रशासक की भावना दूर होनी चाहिए।
- ii. इन्सपेक्टर का कार्य बजाय निर्णय के, सुझाव देना है।
- iii. इन्सपेक्टरों के लिए विशेष प्रशिक्षण की जरूरत है।
- iv. निरीक्षक को कई विधियों का ज्ञान होना चाहिए तथा उसको कई भाषाएँ आनी चाहिए।

भारतवर्ष में निरीक्षक का प्रारम्भ पाश्चात्य शिक्षण-प्रणाली का अनुकरण करने के फलस्वरूप ही हुआ। भारतवर्ष में वुड डिस्पैच की संस्तुतियों के फलस्वरूप प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा मण्डलों तथा निरीक्षण-मण्डलों की स्थापना की गयी। पर्यवेक्षण के सन्दर्भ में वुड डिस्पैच की संस्तुति अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह संस्तुति इस प्रकार थी-

“हमारी शिक्षा-प्रणाली का भविष्य में अत्यावश्यक अंग निरीक्षण प्रणाली का उचित स्वरूप होगा। हमारी इच्छा है कि सरकार द्वारा चलाये गये विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में निरीक्षकों की पर्याप्त संख्या में नियुक्ति की जाय जो समय-समय पर इन विद्यालयों की गतिविधियों की आख्या भी प्रस्तुत कर सकेंगे। ये निरीक्षक इन विद्यालयों में परीक्षा सम्बन्धी कार्यों में भी सहायता करेंगे।

इन सुझावों का परिणाम यह हुआ कि शिक्षण कार्य गुणात्मकता को परखने के लिये तथा विद्यालयों को दिये गये अनुदानों का उचित प्रयोग परखने के लिये निरीक्षकों की नियुक्ति की गयी। निरीक्षकों के अधिकारों में भी

कुछ वृद्धि की गयी। जिसके फलस्वरूप निरीक्षक शिक्षण संस्थाओं में आतंक भी उत्पन्न करने लगे। वास्तव में यह समय भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का था और निरीक्षकों को अधिक शक्ति एवं अधिकारों को देने का आशय तत्कालीन राष्ट्रीय भावनाओं को कुचलना था। सन् (1919) ई० में सैडलर कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया था-

“अधिकांश रूप में निरीक्षण तीव्र गति से किया जाता है, उसमें सौहार्दपूर्ण सुझावों का अभाव है। शिक्षण-पद्धति तथा संगठन सम्बन्धी सुधार की ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता जो विद्यालयों के लिये अत्यावश्यक है।”

वास्तव में इन आयोगों तथा समय-समय पर नियुक्त समितियों के प्रतिवेदनों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भारत में सुयोग्य एवं प्रशिक्षित निरीक्षकों का सर्वथा अभाव है जिसके कारण यहाँ की शिक्षा-व्यवस्था दूषित तथा प्रभाव शून्य है। इन प्रतिवेदनों का एक प्रभाव यह भी हुआ कि निरीक्षण के स्थान पर पर्यवेक्षण के महत्व को समझा जाने लगा। निरीक्षक के कार्यों में सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार को सम्मिलित किया जाने लगा। सन् (1934) ई० में अंग्रेजी सरकार द्वारा दो परामार्शदाताओं वुड तथा अबोट को भारतवर्ष के विद्यालयों में निरीक्षण करने के लिये भेजा गया। उनके कथन का सारांश निरीक्षण के कार्य में सुधार रूप में स्वीकार किया जा सकता है। उनका कथन इस प्रकार था-

आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा प्रतिवेदन में निरीक्षकों के कार्यों को अत्यधिक परम्परागत तथा मशीनवत् बताया गया तथा उसमें पर्याप्त सुधार करने के लिये सुझाव भी दिये गये। इसी क्रम से सन् (1952) ई० में ए० एल० मुदालियर माध्यमिक शिक्षा आयोग के अध्यक्ष थे। उन्होंने भी अपनी रिपोर्ट में निरीक्षण की तत्कालिन स्थिति को सोचनीय बतलाते हुए इस प्रकार कहा-

“माध्यमिक शिक्षा-आयोग” की सिफारिशों के आधार पर पर्यवेक्षक के महत्व को और अधिक स्वीकार किया गया। यह धारणा बनी कि शिक्षा-संस्थाओं का उचित निर्देशन पर्यवेक्षक द्वारा ही दिया जा सकता है। पर्यवेक्षकों की गुणात्मकता एवं शक्ति में वृद्धि करने के प्रयास किये गये। निरीक्षक को विद्यालयों के प्रशासनिक कार्यों के प्रति पूर्णरूप से उत्तरदायी स्वीकार किया गया। माध्यमिक शिक्षा आयोग की कुछ प्रमुख संस्तुतियाँ थी जिसे भारतीय सरकार द्वारा स्वीकार किया गया। इसके साथ ही पर्यवेक्षण के महत्व पर दृष्टि रखते हुए भारतीय सरकार ने पर्यवेक्षण का गहन अध्ययन करने के लिये इस आयोग को पुनः प्रेरित किया जिसके बारे में विस्तार से आप पहली ईकाई में जान चूके हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. सर्वप्रथम के बोस्टन नामक नगर में निरीक्षण शब्द का प्रयोग किया गया।

2. किसका मत था कि शिक्षण कार्य में सुधार तथा उन्नति के लिये, शिक्षक कार्य में सुधार करने के लिये, विषय एवं पाठ्यवस्तु का चयन करने के लिये, परीक्षण तथा मापन के लिये तथा शिक्षकों की योग्यताओं के आधार पर उनका श्रेणीकरण करने के लिये निरीक्षण का अत्यधिक महत्व है।
3. किस कमीश्र' की सिफारिश पर इन्स्पेक्टरों को अनुशासन सम्बन्धी अधिकार भी दिए गए।

12.4 विद्यालय निरीक्षण की विशेषताएँ

विद्यालय निरीक्षण ब्रिटिश शासन की देन है जिसे हम आज भी प्रयुक्त करते हैं। इसकी प्रमुख विशेषतायें अधोलिखित है।

1. निरीक्षण का उद्देश्य विद्यालय व्यवस्था तथा कार्य संचालन की जाँच करना है और निहित कमियों को उजागर करना है।
2. विद्यालय निरीक्षण औपचारिक तथा समयबद्ध क्रिया है। निरीक्षक जिला अधिकारियों द्वारा नियुक्त किये जाते है।
3. निरीक्षण के परामर्श, सुझाव तथा नेतृत्व को कम महत्व दिया जाता है। आलोचना पर विशेष बल दिया जाता है।
4. निरीक्षण कृत्रिम वातावरण में होता है। विद्यालय की वास्तविक संचालन व्यवस्था की जाँच नहीं होती है।
5. निरीक्षण का कार्यक्षेत्र व्यापक होता है। इसमें विद्यालय की लगभग सभी विद्यालयों की समीक्षा की जाती है।

(अ) विद्यालय के भवन तथा सफाई व्यवस्था,

(ब) विद्यालय की शिक्षण क्रियाओं का निरीक्षण,

(स) विद्यालय में पुस्तकालय तथा वाचनालय की सुविधायें,

(द) विद्यालय के खेल-कूद सामग्री तथा खेल का मैदान,

(य) विद्यालय के प्रयोगशाला तथा शिक्षण सामग्री,

(ट) शिक्षकगण तथा कर्मचारी वर्ग,

(ल) वित्तीय व्यवस्था तथा अनुदान का सदुपयोग,

(श) छात्रों की संख्या तथा विभागों की व्यवस्था आदि,

6. निरीक्षणगण सभी पक्षों पर रिपोर्ट तैयार करते हैं जिसमें वस्तुस्थिति की समीक्षा तथा कमियों व अनियमितताओं का भी उल्लेख करते हैं।

7. निरीक्षण काल में तथा उससे पूर्व प्राचार्य, शिक्षक तथा अन्य कर्मचारी अधिक सजग तथा क्रियाशील रहते हैं। निरीक्षण के कारण विद्यालय में सफाई तथा पुताई हो जाती है।

12.4.1 निरीक्षण के उद्देश्य

विद्यालय निरीक्षण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं-

- निरीक्षण का प्रयोजन शिक्षकों को अच्छा बनाना है। निरीक्षण के माध्यम से शिक्षकों की कमियों को दूर करते हुए गुणों का विकास करके अच्छे शिक्षक तैयार किए जा सकते हैं।
- अध्यापक को मार्गदर्शन देने का कार्य भी निरीक्षक का है। कोई भी मार्गदर्शक तब तक मार्गदर्शन नहीं दे सकता, जब तक वह अपने अधीन व्यक्ति की क्षमताओं को नहीं पहचानता। इन क्षमताओं को निरीक्षण से ही समझा जा सकता है।
- निरीक्षण द्वारा उनके सीखने की स्थितियों का मूल्यांकन करना होता है। इसमें यह ज्ञात हो जाता है कि विद्यार्थी किन परिस्थितियों में अधिक सीखते हैं। इस आधार पर पाठन विधियों में भी सुधार किया जा सकता है।
- निरीक्षण का कार्य शिक्षकों के विद्यार्थियों की समस्याओं का निदान करने तथा उनकी योग्यता का मूल्यांकन करने में सहायता देना है।
- निरीक्षण का कार्य शिक्षकों को पाठ्यक्रम निर्माण करने का ज्ञान प्रदान करना तथा पाठ्यक्रम निर्माण के मुख्य उद्देश्य से अवगत कराना है।
- निरीक्षण से शिक्षकों को अधिक अध्ययन की प्रेरणा मिलती है। क्योंकि निरीक्षक निरन्तर शिक्षक के विकास के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह शिक्षक के चहुँमुखी विकास के लिए प्रयत्नशील रहता है अतः शिक्षकों का न केवल व्यावसायिक वरन् एकादिमिक विकास भी निरीक्षण द्वारा होता है।

आइए निरीक्षण का अर्थ, ऐतिहासिक स्वरूप तथा उद्देश्य जानने के उपरान्त परम्परागत निरीक्षण तथा आधुनिक परिनिरीक्षणों में अन्तर जाने

- परम्परागत निरीक्षण विद्यालय में प्रचलित स्थितियों की जाँच तथा विद्यालय-व्यवस्था की कमियों को बताने तक ही सीमित है, उसको दूर करने के लिए उत्तरदायी नहीं है। आधुनिक प्रवृत्ति के अनुसार निरीक्षण सम्पूर्ण विद्यालय-व्यवस्था, उनके संचालन, प्रतिदिन उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान आदि से सम्बन्धित है।
- परम्परागत निरीक्षण अल्पकालिक होता है, जबकि निरीक्षण दिन-प्रतिदिन के कार्यों की देखभाल से सम्बद्ध व्यक्तियों की कुशलता के विकास से सम्बन्धित है तथा इसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए शैक्षिक सुझाव की व्यवस्था रहती है।
- प्रचलित निरीक्षण विधि अधिकारिक है, जबकि निरीक्षण लोकतन्त्रीय सहयोगी एवं प्रेम की भावना से पूर्ण होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसमें सरकार द्वारा नियुक्त निरीक्षक, विद्यालय-प्रबन्धक,

- प्रधानाध्यापक, शिक्षक अन्य व्यक्ति एक-दूसरे के सहयोग से विद्यालय के हित के लिए कार्य करते हैं तथा एक-दूसरे के व्यक्तित्व का आदर करते हैं।
- iv. परम्परागत निरीक्षण में सहायता एवं उत्तरदायित्व की भावना का अभाव होता है, जबकि निरीक्षक मुख्यतः इन्हीं दोनों तत्वों पर आधारित है। परम्परागत निरीक्षण में निरीक्षक अपने अधीनस्थों की सहायता देने की अपेक्षा उनकी भूलों की ओर संकेत करता है तथा अपने निर्देशों का पालन करवाता है, प्रस्तावित भावना में परिनिरीक्षक जब-जब उसके परामर्श व प्रेरणा की आवश्यकता होती है, तब-तब वह अपने साथियों को सहर्ष एवं सहानुभूतिपूर्ण ढंग से सहायता देता है। वास्तव में वह स्थिति को सुधारने के लिए स्वयं को भी उत्तरदायी समझता है।
 - v. परम्परागत निरीक्षण में नेतृत्व का अभाव है। इनमें निरीक्षक अपने अधीनस्थों को किसी कार्य के लिए प्रेरित नहीं करता है, वरन् उन्हें उस कार्य को करने के लिए बाध्य करता है। निरीक्षण सृजनात्मक नेतृत्व पर आधारित है। इसमें निरीक्षक अपने सहयोगियों को कार्य करने के लिए प्रेरणा एवं पथ-प्रदर्शन प्रदान करके अग्रसर करता है।
 - vi. परम्परागत निरीक्षण में प्रायः एक ही व्यक्ति पर विद्यालय की सुव्यवस्था का दायित्व रहता है, परन्तु निरीक्षण एक सहयोगी प्रक्रिया है जिसमें बहुत-से व्यक्तियों प्रधानाध्यापक, वरिष्ठ शिक्षक, अन्य शिक्षक तथा प्रबन्धक एवं सरकार की ओर से नियुक्त परिनिरीक्षक आदि सभी के प्रयास सम्मिलित हैं।
 - vii. प्रचलित निरीक्षण औपचारिक व अस्वाभाविक होता है। इसके अतिरिक्त यह लादा हुआ होता है। परिनिरीक्षण अनौपचारिक तथा स्वाभाविक होता है। तथा यह वास्तविक परिस्थितियों से उत्पन्न होता है, अर्थात् आवश्यकतानुसार इसकी माँग उत्पन्न होती है।
 - viii. निरीक्षण के कार्यों की अपेक्षा पर्यवेक्षक के कार्य अधिक व्यापक, उदार तथा सहायक होते हैं।

12.5 निरीक्षक के कार्य

विद्यालय निरीक्षक को अनेक कार्य पड़ते हैं। इन कार्यों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

- a. प्रशासनिक कार्य
 - b. निरीक्षण कार्य
 - c. सम्पर्क कार्य।
- i. **प्रशासनिक कार्य-** जिला स्तर पर शिक्षा विभाग का कार्यालय जिला विद्यालय निरीक्षक के नेतृत्व में कार्य करता है। इस स्थिति में उसे अपने कार्यालय से सम्बन्धित सभी कार्यों का संचालन तथा व्यवस्था करनी पड़ती है। प्रशासनिक अधिकारी के रूप में वह जिलान्तर्गत राजकीय माध्यमिक व प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की व्यवस्था स्थानान्तरण, अवकाश स्वीकृत आदि का कार्य करता है। वेतन, भत्ते तथा अन्य आर्थिक पहलुओं के दायित्व सँभालता है। जिला विद्यालय निरीक्षक ही विभागीय परीक्षकों का अपने जिले में कार्य पूरा करता है। जिला विद्यालय निरीक्षक जिले में शिक्षा की प्रगति के लिए योजनाएँ बनाता है तथा उन्हें क्रियान्वित करने की व्यवस्था करता है।

- ii. **निरीक्षण कार्य-** अपने कार्यालय को व्यवस्था, संचालन तथा देखरेख करने के अलावा जिला विद्यालय निरीक्षक को अपने जिले की सीमान्तर्गत स्थित माध्यमिक एवं प्राथमिक विद्यालयों का सामयिक निरीक्षण भी करना पड़ता है। अपने निरीक्षण के अन्तर्गत निरीक्षक विद्यालय को अनेक पहलुओं से की जाँच करता है। विद्यालय में वह समय-चक्र उपस्थिति, शिक्षण कार्य, सहभागी क्रियाओं का संचालन, परीक्षा कार्य, आय-व्यय आदि अनेक पहलुओं का निरीक्षण करता है।
- iii. **सम्पर्क कार्य-** जिला विद्यालय निरीक्षक को अनेक व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। सामान्यतः उसे अपने कार्यालय के अधिकारियों, विभाग के उच्च पदाधिकारियों, प्रधानाध्यापकों, शिक्षकों, अन्य विभागों के अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। उसे जन-सम्पर्क की भी आवश्यकता पड़ती है। वह अभिभावकों से सम्पर्क बनाता है। उसे जिलाधीश तथा अन्य विकास अधिकारियों से सम्बन्ध बनाने पड़ते हैं।

12.6 निरीक्षण-पद्धति के दोष

ब्रिटिश-कालीन भारत में जिस प्रकार के निरीक्षण की नींव डाली गयी, वह 'परम्परागत' निरीक्षण' या आदेशात्मक निरीक्षण' के नाम से पुकारा जा सकता है, क्योंकि इसमें निरीक्षण की स्थिति निरंकुशतापूर्ण होती है। जब निरीक्षक विद्यालय भवन में प्रवेश करता है तब विद्यालय के सम्पूर्ण वातावरण में विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाती है। एच0एस0 लॉरेन्स ने प्रचालित विद्यालय-निरीक्षण-पद्धति का निम्नलिखित शब्दों में बड़ा ही स्पष्ट चित्रण किया है।

“बहुधा विद्यालय-निरीक्षण की असावधानीपूर्वक, अन्यमनस्क एवं असहानुभूतिपूर्ण कहकर आलोचना की जाती है। प्रायः निरीक्षण-दिवस कुछ सीमा तक भयोत्पादक माने जाते हैं। निरीक्षक द्वारा हिसाब-किताब के मामलों पर बल दिया जाता है। इसके द्वारा शिक्षा-सम्बन्धी मामलों पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। निरीक्षण केवल आँकड़ों परीक्षाफलों के प्रतिशत, फर्नीचर तथा प्रतिदिन की उपस्थिति में रूचि रखते हैं। सकारात्मक पक्ष की अपेक्षा नकारात्मक पक्ष को अभिव्यक्त किया जाता है। केवल ध्वंसात्मक पक्ष की आलोचना प्रस्तुत की जाती है। निरीक्षक खोज करने वाला होता है जो कि विद्यालय की त्रुटियों को बताने के लिए प्रयत्नशील रहता है, जबकि प्रधानाचार्य तथा शिक्षकगण समस्त प्रकार के साधनों से उसको प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं। अतः निरीक्षण को केवल शिक्षकों में नैराश्य एवं असन्तोष उत्पन्न करने वाला कहा जाता है।”

माध्यमिक शिक्षा-आयोग तथा विद्वानों ने भी वर्तमान निरीक्षण-पद्धति के अधोलिखित दोषों की ओर संकेत दिया है।

- i. वर्तमान निरीक्षण-पद्धति में निरीक्षण की स्थिति एक सहयोगी नेता के रूप में न होकर एक अधिनायक जैसी होती है। वह शिक्षकों को शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं के विषय में न तो बताने का अवसर देता है और न उनको अपनी मौलिकता सृज-बूझ असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करता है। वह मित्र दार्शनिक तथा मार्गदर्शक न बनकर निरंकुश शासक बन जाता है इस कारण इसके द्वारा किया

गया विद्यालय निरीक्षण यदि क्रोध का विषय नहीं बनता है तो कुछ मात्रा तक भय उत्पन्न करने वाला विषय अवश्य बन जाता है। लाल ने लिखा है कि उसका प्रमुख कार्य फाइलों पर आदेश प्रदान करने तथा विद्यालय में दर्शन देने के लिए जाना है, जहाँ वह राजसी ठाठ-बाट जैसा स्वागत प्राप्त करता है। उससे अच्छी रिपोर्ट प्राप्त करने के लिए सभी प्रकार से उसको सम्मान प्रदान किया जाता है।

- ii. निरीक्षण-पद्धति का दूसरा दोष यह है कि विद्यालय-निरीक्षण केवल दिखावटी होते हैं निरीक्षकों द्वारा केवल खानापूरी की जाती है। वे निरीक्षण को प्रायः बड़े अन्यमनस्क ढंग से लापरवाही के साथ करते हैं। निरीक्षक अपने निरीक्षण की तिथियों से विद्यालय-अधिकारियों को पहले से सूचित कर देते हैं जिसके परिणामस्वरूप विद्यालय अधिकारी अपने कार्य की कमियों को पूरा कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त उनका निरीक्षण भी प्रहार के समान होता है। वे लोग मुख्यतः प्रशासन, वित्तीय आदि मामलों की जाँच करके चले जाते हैं उनके द्वारा शिक्षा सम्बन्धी मामलों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है जो निरीक्षण का वास्तविक एवं महत्वपूर्ण अंग है। इनके द्वारा न तो शिक्षकों से उनकी शैक्षिक समस्याओं के विषय में पूछा जाता है। और न उसका किसी प्रकार से मार्ग प्रदर्शित किया जाता है। यहाँ तक कि शिक्षकों तथा निरीक्षकों के बीच किसी प्रकार का परिचय भी नहीं हो पाता। माध्यमिक शिक्षा आयोग का विचार है कि “निरीक्षण दिखावटी होते हैं। निरीक्षक द्वारा विद्यालय-निरीक्षण के लिए जो समय प्रदान किया जाता है, वह अपर्याप्त है। इस अपर्याप्त समय का अधिकांश भाग दिन-प्रतिदिन के प्रशासकीय कार्य को दिया जाता है: उदाहरणार्थ-विद्यालय के हिसाब-किताब तथा पत्र व्यवहार आदि को। शैक्षिक कार्यों के निरीक्षण के लिए बहुत कम समय दिया जाता है और शिक्षकों तथा निरीक्षकों के बीच सम्पर्क बहुत ही कम होते हैं।”
- iii. निरीक्षण-पद्धति का यह दोष यह भी है कि निरीक्षकों का दृष्टिकोण रचनात्मक न होकर ध्वंसात्मक रहता है। वे निरीक्षण आलोचनात्मक एवं परीक्षात्मक दृष्टिकोण से करते हैं। उनके द्वारा निरीक्षण के पश्चात् त्रुटियों की एक बहुत लम्बी सूची बना दी जाती है। इस कारण निरीक्षण हर्षोत्पादक न बनकर भयोत्पादक होता है।
- iv. शिक्षा के प्रचार के कारण विद्यालयों की संख्या में पर्याप्त रूप में वृद्धि हो गई है। परन्तु वृद्धि के साथ-साथ निरीक्षकों की संख्या में वांछित अनुपात में वृद्धि नहीं हो पायी है, जिसके परिणामस्वरूप वे अपने कार्य को सुचारु रूप में नहीं कर पाते हैं, क्योंकि उन पर कार्य-भार बहुत अधिक है। माध्यमिक शिक्षा-आयोग का मत है, “एक निरीक्षक की देखभाल में जिन स्कूलों को रखा गया है, उनकी संख्या अधिक है। इस कारण वह स्वयं को अपने वास्तविक कार्य-शैक्षिक कार्यक्रम की उन्नति-से परिचित भी नहीं करा पाता तथा अपनी समस्याओं का मूल्यांकन करने में भी असमर्थ रहता है।
- v. वर्तमान निरीक्षण पद्धति में एक दोष विषयगत निरीक्षकों का अभाव भी पाया जाता है। एक निरीक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रत्येक विषय के शिक्षक के कार्य का निरीक्षण करे। इस सम्बन्ध में निरीक्षक की रुचि एवं योग्यता पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। यह प्रथा शैक्षिक रूप से त्रुटिपूर्ण

एवं हानिकार है क्योंकि वह केवल एक विषय का ही विशेषज्ञ हो सकता है तथा उसी विषय के शिक्षकों का उचित रूप से मार्गदर्शन कर सकता है।

12.7 भारत में विद्यालय निरीक्षण की वर्तमान स्थिति

पहले अधिनायकवादी दृष्टिकोण से अधिकारी बनकर अध्यापकों के कार्य का जायजा लिया जाता है, अब उसके स्थान पर पर्यवेक्षण संप्रत्यय आने से कार्य पद्धति तथा उसकी भावना में अन्तर आ गया है।

संविधान के अनुसार प्रत्येक राज्य की शिक्षा व्यवस्था संचालित करने का दायित्व स्वयं राज्य पर है। इस व्यवस्था को तथा नीति निर्धारण आदि कार्यों का सचिवालय करता है इन नीतियों और व्यवस्थाओं की सही स्थिति की देखभाल के लिए शिक्षा विभाग ने प्रत्येक राज्य के जिले में एक निरीक्षक नियुक्त किया है, जो निरीक्षण के द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों का मूल्यांकन करता है शिक्षा शास्त्रियों ने निरीक्षण सम्बन्धी नवीन धारणा की अभिव्यक्ति करने के लिये एक नवीन शब्द का प्रयोग किया है जो पर्यवेक्षण के नाम से जाना जाता है। यह केवल शब्दों का हेरफेर नहीं है वरन् उनमें उद्देश्य, क्षेत्र, विधि एवं दृष्टिकोण का भी बड़ा अन्तर है।

पहले प्रायः विद्यालय निरीक्षण एक ऑडीटर के समान कार्य करता था। सरकारी आडीटर वर्ष में दो-तीन दिन के लिए आता है और एक समय जितना हिसाब किताब देख सकता है, उसकी अशुद्धियों एवं कमियों को अपनी रिपोर्ट में लिखकर अपने उच्चाधिकारी के पास भेज देता है। इस रिपोर्ट के फलस्वरूप कुछ मास के पश्चात् विद्यालय को उन भूलों को ठीक करने का आदेश प्राप्त होता है। परन्तु जो त्रुटियाँ थोड़े समय के कारण उनकी दृष्टि में नहीं आई, वे ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। निरीक्षक अपनी अल्पकालीन जाँच में विद्यालय के समस्त अंगों व तत्वों का निरीक्षण नहीं कर सकता और न ही विद्यालय के कार्यकर्ताओं को रचनात्मक सुझाव ही दे सकता है। उन्हें विकास के समुचित निर्देशन भी दिये जाने चाहिए।

एन.सी.ई.आर.टी. के एक सर्वेक्षण के अनुसार -

1. माध्यमिक या उच्च माध्यमिक विद्यालय में निरीक्षण अवधि में से 2 दिन (आकस्मिक निरीक्षण मात्र) पाई गई।
2. 1/2 से 1 दिन शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य करने वाली संस्थाओं के निरीक्षण हेतु लगाया गया है।
3. वर्ष भर में एक इन्स्पेक्टर प्रायः 120 दिन निरीक्षण करता है।
4. प्रायः विभिन्न राज्यों में एक वर्ष में औसतन 100 स्कूलों को देखता है।

एन0सी0ई0आर0टी0 के इस सर्वेक्षण से यह ज्ञात होता है कि निरीक्षण कम अवधि के कारण औपचारिक मात्र रह जाते हैं। जिला अधिकारियों के प्रशासनिक कार्यों के कारण कुछ विद्यालय ही एक वर्ष में देखे जा सकते हैं। अतः हर विद्यालय का नियमित निरीक्षण सम्भव नहीं हो पाता। जिला शिक्षा अधिकारी निरीक्षण के अतिरिक्त अनेक प्रशासनिक उत्तरदायित्वों में उलझा रहता है, जो उसके अधिक महत्वपूर्ण लगते हैं इस सम्बन्ध में नित्य सुझाव दिए जा सकते हैं।

1. प्रत्येक जिला स्तर पर अलग से ही एक शिक्षा अधिकारी हो, जो केवल शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिए कार्य करे। यही बात कोठारी आयोग ने भी सुझाई हैं
2. प्रशासनिक कार्य के लिए एक अतिरिक्त जिला शिक्षा अधिकारी हो सकता है।
3. निरीक्षण के लिए निरीक्षण कर्ताओं की संख्या बढ़ाई जा सकती हैं
4. निरीक्षण पूर्वसूचित व आकस्मिक दोनों हों और उनकी संख्या बढ़ाई जाए।
5. निरीक्षण कार्य की अवधि भी बढ़ाई जाए। जिससे विद्यालय का व्यापक मूल्यांकन सम्भव हो सके।

12.7.1 निरीक्षण प्रणाली में सुधार हेतु सुझाव;

प्रचलित आदेशात्मक निरीक्षण पद्धति के दोषों व कमियों का निवारण सहयोगी व परामर्शदायी परिनिरीक्षण की नवीन धारणा से हो सकता है। इस विषय में यदि परिवर्तन किया जाए तो वर्तमान निरीक्षण पद्धति के बहुत-से दोषों का निवारण ही नहीं होगा, बल्कि उसकी उपयोगिता भी बढ़ जाएगी। विद्यालय के सामान्य निरीक्षण की प्रचलित पद्धति में निरीक्षकों की संख्या कम की जा सकती है जिसमें व्यय में बहुत अधिक वृद्धि न हो। सामान्य प्रशासन से सम्बन्धित निरीक्षक विद्यालय संचालन के कार्यों का निरीक्षण करें तथा विशेषज्ञ, परामर्शदाता शैक्षिक कार्यक्रम की उन्नति के लिए अपनी सेवाएँ दें तो शिक्षा का स्तर अवश्य उन्नत होगा।

इस प्रकार की व्यवस्था से शिक्षकों को विशिष्ट विधियों जैसे संगीत, कला, हस्तकला, गृह विज्ञान में भी कुशल सेवाएँ प्राप्त हो सकेंगी। विद्यालयों में विशेषज्ञों, या निरीक्षकों या सलाहकारों तथा शिक्षकों के निकट सम्पर्क के फलस्वरूप स्वयं शिक्षकों में अपने विषय के लिए उत्साह होगा और वे अपनी शिक्षण योग्यता को सुधारने में अधिक रूचि लेंगे।

उपर्युक्त सुझाव के अतिरिक्त विद्यालय निरीक्षण का कार्य आन्तरिक स्तर पर भी होना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने भी विशेषज्ञ निरीक्षकों की नियुक्ति पर बल दिया है और शिक्षा आयोग ने प्रशासकीय तथा शैक्षिक कार्यों की देखभाल के लिए पृथक-पृथक् अधिकारियों की नियुक्ति का सुझाव दिया है।

12.7.2 भारत में निरीक्षण सुधार का प्रयास;

निरीक्षण के दोषों को दूर करके उसे अधिक उपयोगी बनाने के लिए भारत में एक विशाल प्रोजेक्ट नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ़ एजुकेशन के द्वारा लिया गया है इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण अध्ययन-अध्यापन की परिस्थित का विश्लेषण करके हर क्षेत्र के लिए सभी विषयों के सम्पूर्ण क्षेत्र को लेते हुए प्रश्नावलियाँ तैयार की गई हैं। पूरे देश में शिक्षाशास्त्रियों द्वारा इनको प्रामाणिक बनाने के लिए प्रयोग चल रहा है प्रयोग की दो आवृत्तियाँ अब तक हो चुकी हैं। अपने अन्तिम स्वरूप में तैयार होने के बाद यह प्रश्नावली सभी निरीक्षकों और पर्यवेक्षकों के पास भेज दी जायेगी आशा है तब उसी के अनुरूप पर्यवेक्षण होगा।

निरीक्षकों का एक समूह होगा, जिसमें सभी विषयों के विशेषज्ञ होंगे। ये लोग विद्यालयों में जाकर, पर्याप्त समय तक रुककर उनका विस्तृत निरीक्षण करेंगे, समस्याओं का अध्ययन करेंगे और वैज्ञानिक ढंग उसके समाधान के लिए शिक्षकों को प्रेरणा देंगे। शिक्षा का आदर्श पाठ भी प्रस्तुत कर सकते हैं।

आज निरीक्षण प्रणाली दोषपूर्ण हैं। परन्तु समाप्त नहीं करना चाहिए क्योंकि व्यवस्था संचालन की निरीक्षण द्वारा सुदृढ़ बनाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में कुछ सुझाव अधोलिखित है-

1. निरीक्षकों का प्रशिक्षण तथा अभिविन्यास किया जाय जिससे निरीक्षण का कार्य समुचित ढंग से कर सकें
2. निरीक्षण हेतु पूर्व समय तथा तिथि का निर्धारण नहीं किया जाय। अचानक निरीक्षक पहुँच कर विद्यालय की वास्तविक परिस्थितियों तथा संचालन प्रक्रिया की जाँच कर सकें।
3. निरीक्षकों को अध्यापकों तथा प्राचार्य के साथ मीटिंग करनी चाहिए। उसमें विद्यालय की समस्याओं एवं कठिनाइयों पर विचार किया जाय। निरीक्षण अपनी रिपोर्ट में संस्तुतियाँ भी दे सके।
4. निरीक्षकों में विषय भी होने चाहिए। निरीक्षण के बाद शिक्षण का आदर्श प्रदर्शन भी करना चाहिए।
5. निरीक्षकों में अच्छे कार्यों तथा व्यवस्था हेतु मौखिक तथा रिपोर्ट में प्रशंसा भी करनी चाहिए जिससे उन्हें पुनर्बलना भी मिल सके।
6. निरीक्षकों को छात्रों तथा शिक्षकों व कर्मचारियों से साक्षात्कार द्वारा भी कार्य विधि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।
7. निरीक्षकों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट का कार्यान्वयन भी होना चाहिए। उसका अनुसरण भी किया जाय।
8. निरीक्षकों को शिक्षा के नये आयामों एवं प्रवर्तनों की जानकारी तथा प्रश्न भी करना चाहिए जिससे गुणात्मक सुधार किया जा सके। निरीक्षकों में सहकारिता, सहानुभूति तथा उदारता की भावना होनी चाहिए। जिससे निरीक्षण शिक्षा प्रशासन में सहायक प्रणाली का कार्य कर सकें।
9. निरीक्षकों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक तथा रचनात्मक होना चाहिए।
10. निरीक्षक ऐसे शिक्षक नियुक्ति किये जायें जो अपने-अपने विषय एवं क्षेत्र में नेतृत्व प्रदान कर सकें।

12.8 पर्यवेक्षण की त्रुटियाँ

समय-समय पर शिक्षा आयोगों तथा अन्य शैक्षिक विचारकों ने पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण के जो दोष बताये हैं, वे लगभग सभी आज भी हैं। कई बार तो क्षुब्ध होकर शिक्षा-सुधारकों का कहना है कि यदि हम पर्यवेक्षण में सुधार नहीं ला सकते तो इसे समाप्त ही कर दिया जाये। लगभग 100 वर्ष पूर्व एच.एस.एस. लैरेन्स ने प्रचलित विद्यालय निरीक्षण पद्धति का निम्नलिखित शब्दों में बड़ा ही स्पष्ट चित्रण किया है-

“बहुधा विद्यालय निरीक्षण की असावधानीपूर्वक अन्यमनस्क एवं असहानुभूतिपूर्ण कहकर आलोचना की जाती है। प्रायः निरीक्षण दिवस कुछ सीमा तक भयोत्पादक माने जाते हैं। निरीक्षक द्वारा केवल हिसाब-किताब

के मामले पर बल दिया जाता है। इसके द्वारा शिक्षा-सम्बन्धी मामलों पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है।..... निरीक्षकगण केवल आँकड़ों, परीक्षाफलों के प्रतिशत फर्नीचर तथा प्रतिदिन की उपस्थिति में रूचि रखते हैं। सकारात्मक पक्ष की अपेक्षा नकारात्मक पक्ष को अभिव्यक्त करने में रूचि रखते हैं। सकारात्मक पक्ष की आलोचना प्रस्तुत की जाती है निरीक्षक खोज करने वाला होता है जो कि विद्यालय की त्रुटियों को बताने के लिए प्रयत्नशील रहता है, जबकि प्रधानाचार्य या शिक्षकगण समस्त प्रकार के साधनों से उसको प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं। अतः निरीक्षण को केवल शिक्षकों में नैराश्य एवं असन्तोष उत्पन्न करने वाला कहा जाता है।”

माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा शिक्षा आयोग ने पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण में निम्न दोषों का उल्लेख किया है -

1. वर्तमान पद्धति में पर्यवेक्षक की स्थिति एक 'सहयोगी के नेता के रूप में न होकर एक 'अधिनायक' जैसी होनी है।
2. स्कूल पर्यवेक्षक 'केवल दिखावा' होता है।
3. पर्यवेक्षकों का दृष्टिकोण 'रचनात्मक' न होकर 'ध्वंसात्मक' है।
4. पर्यवेक्षकों का अनुपात स्कूलों के अनुपात के अनुकूल नहीं है।
5. पर्यवेक्षक प्रशासनिक तथा प्रबन्धात्मक शिकायतों की जाँच में बहुत समय व्यतीत करते हैं।
6. पर्यवेक्षकों का कार्य प्रायः स्कूलों से विभिन्न प्रकार के आँकड़े एकत्रित करके मुख्यालय में भेजना रह गया है।
7. पर्यवेक्षकों के उपयुक्त प्रशिक्षण का अभाव है।

12.8.1 पर्यवेक्षण में सुधार के उपाय

1. पर्यवेक्षण लचीला बनाया जाये।
2. पर्यवेक्षण एक सतत् प्रक्रिया के रूप में किया जाये।
3. पर्यवेक्षण को प्रबन्धन से अलग किया जाये।
4. पर्यवेक्षणकर्ताओं की संख्या बढ़ायी जाये।
5. पर्यवेक्षणकर्ताओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाये।
6. योग्य पर्यवेक्षणकर्ताओं की नियुक्ति की जाये।
7. पर्यवेक्षण पूर्व-नियोजित हो।
8. पर्यवेक्षणकर्ताओं के लिए स्कूलों में आने-जाने की समुचित सुविधाएँ प्रदान की जाये।
9. पर्यवेक्षण की रिपोर्ट स्कूलों में पर्यवेक्षण के एक सप्ताह के भीतर भेज दी जाये।
10. पर्यवेक्षण की रिपोर्ट पर उचित कार्यवाही की जाये।

11. उपर्युक्त संख्या में लड़कियों के स्कूलों के लिए स्त्री पर्यवेक्षणकर्ताओं की नियुक्ति की जाये।
12. पर्यवेक्षण की विभिन्न प्रक्रियाएँ प्रयोग में लायी जाये।
13. अध्यापकों के साथ विचार-विमर्श किया जाना चाहिए।
14. पर्यवेक्षण रिपोर्ट में ठोस सुझाव दिये जायें।
15. पर्यवेक्षण के आधार पर प्रतिभाशाली अध्यापकों को प्रोत्साहन दिया जाये।

12.9 शैक्षिक प्रशासन में निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण के अभिकरण

शैक्षिक प्रशासन में निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण के निम्नलिखित अभिकरण हैं-

1. स्कूल एक आन्तरिक अभिकरण के रूप में।
2. शिक्षा निदेशालय बाह्य अभिकरण के रूप में (सरकारी पर्यवेक्षण)
3. राज्य शिक्षा बोर्ड बाह्य अभिकरण के रूप में (अर्द्ध-सरकारी पर्यवेक्षण)

आन्तरिक पर्यवेक्षण - स्कूल में पर्यवेक्षण के लिए आन्तरिक व्यवस्था की जाये। आन्तरिक पर्यवेक्षण के लिए प्रधानाध्यापक, विभिन्न विभागों के अध्यक्षों आदि को उत्तरदायी ठहराया जाय। दिन-प्रतिदिन की समस्याओं का निवारण तो स्कूल में प्रधानाध्यापक स्वयं अपने अन्य सहयोगियों की सहायता व परामर्श से करे। जो समस्याएँ प्रधानाध्यापक की सामर्थ्य के बाहर हैं उनको सरकारी पर्यवेक्षकों को सुलझाना पड़ेगा। इस प्रकार सरकारी पर्यवेक्षकों तथा स्कूल अधिकारियों को सुलझाना पड़ेगा। इस प्रकार सरकारी पर्यवेक्षकों तथा स्कूल अधिकारियों के सम्मिलित प्रयासों द्वारा स्कूल में सुधार की दिशा में नई जागृति होगी तथा शिक्षा के क्षेत्र में जो धन, समय व शक्ति की हानि हो रही है, उसका सदुपयोग होगा। इस समय मानव संसाधनों की सबसे अधिक क्षति हो रही है जिसकी अविलम्ब रोकना अत्यावश्यक है।

स्कूल में आन्तरिक परिवीक्षण व्यवस्था

आन्तरिक परिवीक्षण व्यवस्था का अर्थ - आन्तरिक परिवीक्षण व्यवस्था से तात्पर्य है - कार्यक्रमों की गतिविधियों के साथ-साथ उनका अवलोकन करना तथा पाई गयी त्रुटियों में सुधार लाना। आन्तरिक परिवीक्षण की प्रक्रिया निरन्तर चलने वाली है। परिवीक्षण में आकलन निदान की दृष्टि से किया जाता है। परिवीक्षण प्रक्रिया में स्कूल का मुख्याध्यापक अनेक समितियों का निर्माण करता है जिसके सदस्य शिक्षक होते हैं। कभी-कभी इस कार्य में स्कूल के छात्र प्रतिनिधि या मॉनीटर भी शामिल किये जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर अभिभावक शिक्षक संघ का सहयोग भी लिया जाता है। आन्तरिक परिवीक्षण में जबाबदेही को ध्यान में रखा जाता है।

परिवीक्षण का उद्देश्य कार्य में पारदर्शिता रखना है। परिवीक्षण स्कूल का आन्तरिक मामला है जिसमें स्कूल के कार्यों का स्कूल द्वारा निरीक्षण किया जाता है। अनियमितताओं को जानकर उनमें सुधार लाया जाता है।

स्कूल के परिवीक्षण में मुख्याध्यापक की अहम भूमिका है। परिवीक्षण में देखा जाता है कि स्कूल के सभी वर्ग अपना-अपना कार्य ठीक प्रकार से कर रहे हैं। यह आश्वासित किया जाता है कि सभी कर्मचारी अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं।

प्रधानाध्यापक तथा प्रबन्धन के पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण के कार्य

अध्यापकों तथा छात्रों के कार्य का निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण प्रायः प्रबन्धन मुख्याध्यपाक पर ही छोड़ता है। प्रबन्धन विशेष परिस्थिति में ही यह कार्य करता है।

प्रधानाध्यपाक अध्यापकों के पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण का कार्य दो प्रकार से करता है-

1. अनौपचारिक पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण
2. अनौपचारिक पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण।

1. औपचारिक पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण - प्रधानाध्यपाक योजनाबद्ध पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण करता है। प्रत्येक अध्यापक तथा प्रत्येक विषय तथा प्रत्येक कक्षा का निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण करता है। पहले से ही कार्यक्रम बनाकर सम्बन्धित अध्यापकों को बता देता है कि वह कक्षा में जाकर कार्य देखेगा। वह कुछ समय कक्षा में जाकर अध्यापक के कार्य को देखता है। लिखित अथवा मौखिक रूप से अपने सुझाव देता है। इसी प्रकार प्रोग्राम बनाकर छात्रों के लिखित कार्य का अपने कार्यालय में बैठकर निरीक्षण करता है तथा सम्बन्धित अध्यापक से चर्चा करता है। पर्यवेक्षण कार्य के लिए समय सारणी बनाता है।

2. अनौपचारिक पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण - प्रधानाध्यपाक बिना सूचित किये अध्यापकों के कक्षा कार्य का तथा छात्रों द्वारा किये जा रहे कार्यों का पर्यवेक्षण करता है। पर्यवेक्षक तथा निरीक्षक के रूप में प्रधानाचार्य के मुख्य कार्य निरीक्षक तथा पर्यवेक्षक के रूप में उसके निम्न प्रमुख कार्य हैं -

1. अध्यापकों के कार्यों का निरीक्षण करके उन्हें समय-समय पर निर्देशन देना एवं प्रगति हेतु प्रेरित करना।
2. अध्यापकों द्वारा शिक्षण-कार्यों में अपनाई जाने वाली विधियों, प्रविधियों, प्रवृत्तियों, शिक्षा-दर्शन एवं सहायक सामग्री का निरीक्षण करना।
3. स्कूल की सम्पूर्ण गतिविधियों एवं अंगों का निरीक्षण करके उनमें सुधार लाने का प्रयास करना।
4. स्कूल में गठित की जाने वाली पाठ्य सहगामी क्रियाओं का निरीक्षण करना जिसके माध्यम से बालकों के व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास होता है।
5. स्कूल के भौतिक तत्वों, खेल एवं शारीरिक क्रियाओं, स्कूल सहकारी भण्डार, कैण्टीन आदि का निरीक्षण करते रहना।
6. स्कूल के पुस्तकालय, प्रयोगशालाओं, भवन, फर्नीचर आदि का निरीक्षण करते रहना।
7. स्कूल में सम्पन्न होने वाली विभिन्न परीक्षाओं तथा प्रश्न-पत्रों का निरीक्षण करते रहना चाहिए, जिससे पाठ्य पुस्तक तथा प्रश्न-पत्रों में साम्यता बनी रहे।
8. अध्यापकों को विभिन्न पाठ्य पुस्तकों के चयन करने में परामर्श देना तथा पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन करके उपयोगिता की दृष्टि से निरीक्षण करना।
9. अभिभावकों से सम्पर्क बनाये रखना तथा ऐसी बातों का निरीक्षण करना जिनसे स्कूल और अभिभावकों के मध्य सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित हो सके।
10. स्कूल के ऐसे तत्वों का निरीक्षण करते रहना एवं उन पर नियन्त्रण रखना जिनसे स्कूल को हानि होने की सम्भावना बनी रहती हो।

11. स्कूल में छात्रों की प्रवेश संख्या, शिक्षकों की संख्या तथा अन्य कर्मचारियों की संख्या में सन्तुलन बनाये रखने हेतु निरीक्षण करना।
12. छात्र-जीवन से सम्बन्धित स्कूल के आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार की क्रियाओं का निरीक्षण करना।
13. कार्यालय के कार्य का निरीक्षण समय-समय पर करते रहना।
14. स्कूल के विभिन्न रजिस्ट्रों की देखरेख करते रहना तथा उन पर नियन्त्रण रखना।
15. छात्रावास का निरीक्षण करते रहना।

12.10 सारांश

विद्यालय निरीक्षक विद्यालयों में जाकर अनिवार्य रूप से वर्ष में कम-से-कम एक बार निरीक्षण कार्य करते हैं। यह पद्धति हमारी शिक्षा नीति का महत्वपूर्ण अंग है। इस तरह की परम्परागत निरीक्षण पद्धति ब्रिटिश काल से चली आ रही है और उसमें लेखमात्र परिवर्तन नहीं हुआ। यह निरीक्षण आदेशात्मक कहलाता है। निरीक्षक एक ऊँचे पदाधिकारी के रूप में विद्यालयों में जाता है और उसके वहाँ जाने से ही भय का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। रायबर्न के अनुसार उसका पद निरंकुशतापूर्ण माना जाता है इसका मुख्य कारण यह है कि वह निरीक्षण में रचनात्मक पक्ष को ज्यादा महत्व नहीं देता और अपनी निरीक्षण रिपोर्ट में नकारात्मक और आलोचनात्मक दृष्टिकोण पर ज्यादा बल देता है। इसके अलावा माध्यमिक शिक्षा आयोग ने निरीक्षण को दिखावटी बताया है क्योंकि वह विद्यालय निरीक्षण के लिए जो समय प्रदान करता है, वह अपर्याप्त है। यह निरीक्षण के बाद त्रुटियों की एक लम्बी सूची बना देता है जिसके कारण प्रधानाध्यापक तथा शिक्षक परेशान रहते हैं। अतः उसके निरीक्षण का प्रयोजन सफल नहीं हो पाता और यह प्रथा शैक्षिक रूप से हानिकारक भी सिद्ध हुई है आधुनिक प्रवृत्ति के अनुसार इसमें अब धीरे-धीरे सुधार होता जा रहा है ताकि निरीक्षण पथ-प्रदर्शक बन सके।

12.11 शब्दावली

1. शिक्षण विधियाँ - शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु शिक्षण प्रक्रिया के दौरान प्रयोग किए जाने वाले भिन्न-भिन्न तरीकों जिससे शिक्षण को प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया जाता है।
2. प्रशिक्षित - कौशलों में दक्षता लाने के लिए निश्चित प्रक्रिया से गुजरना।
3. वस्तुनिष्ठ - किसी भी चीज़ का परिणाम विभिन्न व्यक्तियों से समान आए तो वह वस्तुनिष्ठ कहलाती है।
4. अनुसंधान - ज्ञान के किसी भी क्षेत्र या शाखा में नवीन तथ्यों, विचारों, अवधारणा या सिद्धान्त की खोज के लिए अपनाई गई क्रमबद्ध प्रक्रिया अनुसंधान कहलाती है।

12.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. इंग्लैंड
2. बर्टन

-
3. हन्टर कमीश
-

12.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. माध्यमिक शिक्षा एवं विद्यालय प्रबन्धन (2009) अवधेश किशोर, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
 2. शैक्षिक प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा (2013) सविता सिंह, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
 3. स्कूल प्रबन्धन सूचना तथा सम्प्रेषण तकनीकी (2010) जे0पी0 अग्रवाल, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
 4. शैक्षिक प्रबन्धन के मूल तत्व (2009) देवदत्त शर्मा, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।
-

12.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. विद्यालय प्रशासन, संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा (2009) एव0पी0 सुखिया, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।
 2. शिक्षा प्रशासन (2010) उमेश चन्द्र कुदेसिया, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।
 3. विद्यालय प्रबन्धन, (2008), आर0ए0शर्मा, आर लाल बुक डिपो, मेरठ।
 4. विद्यालय प्रबन्धन (2008) जे0पी0 वर्मा, आर लाल बुक डिपो, मेरठ।
 5. शैक्षिक संगठन, स्वास्थ्य शिक्षा एवं शिक्षण तकनीकी, डी0पी0 मिश्रा, अग्रवाल पब्लिकेशन
 6. शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्धन डा0 कर्ण सिंह, गोविन्द प्रकाशन, लखीमपुर खीरी।
-

12.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वर्तमान विद्यालय निरीक्षण पद्धति के दोषों का वर्णन कीजिए आप इस पद्धति में सुधार के लिए क्या सुझाव देंगे?

इकाई 13: सम्प्रेषण:अर्थ, उद्देश्य एवं प्रकार

- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 उद्देश्य
- 13.3 सम्प्रेषण का अर्थ
- 13.4 सम्प्रेषण के उद्देश्य
- 13.5 सम्प्रेषण के प्रकार
- 13.6 सारांश
- 13.7 शब्दावली
- 13.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 13.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

सम्प्रेषण की प्रक्रिया हमारे सामाजिक जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा है। सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत सूचनाओं, निर्देशों तथा निर्णयों को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुंचाना अत्यंत आवश्यक होता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं एवं समस्याओं के हल हेतु दूसरे व्यक्ति की सहायता पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर होता है। समाज के सभी सदस्य किसी समस्या पर विचार-विमर्श करते हैं तथा उसका उपयुक्त समाधान खोजने का प्रयास करते हैं इस प्रकार से प्राप्त समाधान जिसमें अधिकांश लोगों की सहभागिता तथा विचारधर्मत शामिल होता है अधिक कारगर साबित होते हैं। समाज अपनी नयी पीढ़ी को संस्कृति से परिचित करने के लिए भी औपचारिक तथा अनौपचारिक रूप से विचारों को उन तक पहुंचाने का प्रयास करता है। व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्धों का आधार उनकी आवश्यकताएँ एवं समस्याएँ होती हैं इन आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समस्याओं के हल हेतु विचारों का परस्पर आदान-प्रदान करना पड़ता है। सामाजिक सम्बन्धों का निर्वहन विचार विनिमय के बिना संभव नहीं है व्यक्तियों के मध्य विचारों का यही आदान-प्रदान सम्प्रेषण है। प्रस्तुत इकाई में आप सम्प्रेषण का अर्थ, सम्प्रेषण के उद्देश्य तथा सम्प्रेषण के प्रकार के बारे में अध्ययन करेंगे।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- सम्प्रेषण का अर्थ क्या है बता सकेंगे।
- सम्प्रेषण के विभिन्न उद्देश्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- सम्प्रेषण के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे।
- सम्प्रेषण के विभिन्न प्रकारों में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।

13.3 सम्प्रेषण का अर्थ

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में आने वाली समस्याओं के हल हेतु या अन्य किसी कारण से दूसरे लोगों से सूचनाओं/विचारों का आदान प्रदान करता है या सामान्य भाषा में कहा जाए कि अपनी भावनाओं, विचारों, समस्याओं से दूसरे लोगों को अवगत कराने के लिए या दूसरे व्यक्ति की समस्या से स्वयं परिचित होने के लिए सूचनाओं का आदान प्रदान करता है। किसी भी कारण से परस्पर सूचनाओं तथा विचारों का आदान प्रदान करना ही सम्प्रेषण है। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने का प्रयास किया जाता है। इसमें अनुभवी व्यक्तियों द्वारा कम अनुभवी व्यक्तियों के व्यक्तित्व का विकास विभिन्न तरीकों एवं साधनों की सहायता से किया जाता है। अब आप लोग यह बात आसानी से समझ गए होंगे कि शिक्षा की प्रक्रिया बिना सम्प्रेषण के संभव नहीं है क्योंकि शिक्षा और शिक्षण में शिक्षक प्रशिक्षक विद्यार्थियों के समक्ष अपने विचारों को प्रकट करते हैं। विद्यार्थियों से प्रश्न पूछते हैं। विद्यार्थी प्रतिक्रिया उत्तर देते हैं अपनी शंकाओं के समाधान हेतु शिक्षक से प्रश्न भी पूछते हैं। शिक्षक विद्यार्थियों की प्रशंसा या आलोचना भी करते हैं। अपने ज्ञान/कौशल एवं अनुभव से उनकी जिज्ञासाओं/धकठिनाइयों का निवारण कर उनका ज्ञानवर्धन करते हैं। उपरोक्त क्रियाओं से यह स्पष्ट है कि सम्प्रेषण की प्रक्रिया चल रही है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बिना सम्प्रेषण के शिक्षा की प्रक्रिया संभव ही नहीं है।

सम्प्रेषण शब्द अंग्रेजी के कम्युनिकेशन Communication का हिन्दी पर्यायवाची शब्द है। इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द communes से मानी जाती है। communes शब्द का अभिप्राय है Common या सामान्य। अतः कहा जा सकता है कि सम्प्रेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति परस्पर सामान्य अवबोध के माध्यम से आदान-प्रदान करने का प्रयास करता है। व्यक्ति अपने विचार अभिव्यक्त करते समय केवल मुंह से बोलता नहीं है अपितु साथ-साथ हाव-भाव मुख मुद्रा तथा मुख-भंगिमाओं का प्रयोग करके भाषण वक्तव्य को प्रभावशाली बनाने का प्रयास करता है। अतः कहा जा सकता है कि सम्प्रेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने ज्ञान/हाव-भाव तथा मुख मुद्रा तथा विचारों आदि का परस्पर आदान-प्रदान करते हैं तथा इस प्रकार से प्राप्त प्राप्त विचारों अथवा संदेशों को समान तथा सही अर्थों में समझने और प्रेषण करने में उपयोग करते हैं।

एंडरसन के अनुसार सम्प्रेषण एक गत्यात्मक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति चेतनतया अथवा अचेतनतया दूसरों के संज्ञानात्मक ढाँचे को सांकेतिक हाव-भाव आदि रूप में उपकरणों या साधनों द्वारा प्रभावित करता है।

लीगंस के अनुसार सम्प्रेषण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा दो या दो से अधिक लोगए विचारों, तथ्यों, भावनाओं तथा प्रभावों आदि का इस प्रकार परस्पर विनिमय करते हैं कि सभी लोग प्राप्त संदेशों को समझ जाते हैं। सम्प्रेषण में संदेश देने वाले तथा संदेश ग्रहण करने वाले के मध्य संदेशों के माध्यम से समन्वय स्थापित किया जाता है।

एडगर डेल- सम्प्रेषण विचार-विनिमय के मूड में विचारों तथा भावनाओं को परस्पर जानने तथा समझने की प्रक्रिया है।

सम्प्रेषण के बारे में कुछ महत्वपूर्ण बातें निम्नलिखित हैं.

- सम्प्रेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कोई विचार एक श्रोत से प्राप्त कर्ता तक भेजने का प्रयास किया जाता है ताकि प्राप्तकर्ता का व्यवहार परिवर्तन हो जाए।
- सम्प्रेषण सूचना का प्रेषक से प्राप्तकर्ता तक इस प्रकार से स्थानांतरण है कि सूचना प्राप्तकर्ता द्वारा समझी जा सके।

सम्प्रेषण की प्रकृति एवं विशेषताएँ

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर सम्प्रेषण की निम्नलिखित विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं -

- 1 सम्प्रेषण एक प्रक्रिया है जिसमें पारस्परिक सम्बंध स्थापित किया जाता है।
- 2 इसमें विचारों के आदान.प्रदान पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
- 3 यह द्विध्रुवीय प्रक्रिया है अर्थात इसमें दो पक्ष होते हैं। एक संदेश देने वाला तथा एक दूसरा संदेश ग्रहण करने वाला।
- 4 यह एक उद्देश्ययुक्त प्रक्रिया है।
- 5 सम्प्रेषण प्रक्रिया में प्रत्यक्षीकरण समावेशित होता है।
- 6 सम्प्रेषण की प्रक्रिया में परस्पर अंतःक्रिया तथा पृष्ठ.पोषण होना आवश्यक होता है।
- 7 सम्प्रेषण में विचारों या सूचनाओं को मौखिक, बोलकर, लिखित, लिखकर, अथवा सांकेतिक, संकेतों के रूप में प्रेषित किया जाता है एवं ग्रहण किया जाता है।
- 8 सम्प्रेषण सदैव गत्यात्मक होता है।

सम्प्रेषण की प्रक्रिया

सम्प्रेषण की प्रक्रिया के दो मॉडल लोकप्रिय हैं। पहले मॉडल के अनुसार संदेश भेजने वाला व्यक्ति पहले स्वयं संदेश लिखता है फिर किसी न किसी माध्यम के द्वारा ;जैसे. रेडियो, टेलीफोन, तार, भाषण आदि संदेश प्रेषित किया जाता है। प्रेषित संदेश जहाँ पहुँचता है वहाँ उसे पढ़ कर कम व कम करते हैं और संदेश जिसके लिए है उस तक उसे पहुँचाते हैं। यह व्यक्ति यदि आवश्यकता होती है तो संदेश प्राप्ति की सूचना देता है।

दूसरे मॉडल के अनुसार सर्वप्रथम संदेश देने वाला व्यक्ति संदेश का निर्माण करता है लिखता है और उसे आवश्यकतानुसार प्रसारित करता है। यह संदेश या विषयवस्तु सूत्र के रूप में या अन्य किसी शाब्दिक अथवा अशाब्दिक माध्यम के द्वारा संदेश ग्रहण करने वाले व्यक्ति तक पहुंचाया जाता है। संदेश ग्रहण करने वाला प्राप्त संदेश को पढ़ता है, उसे समझता है तथा आवश्यकतानुसार प्राप्त संदेश के अनुकूल उचित माध्यम से संदेश वाहक तक अपना प्रत्युत्तर पहुंचाता है। इस मॉडल के अनुसार सम्प्रेषण प्रक्रिया में संदेश और संदेश का प्रत्युत्तर दोनों ही समावेशित रहता है। इस प्रकार आप समझ गए होंगे कि सम्प्रेषण की प्रक्रिया में किन-किन तत्वों की भूमिका होती है।

सम्प्रेषण प्रक्रिया के तत्व

उपरोक्त मॉडलों के आधार पर सम्प्रेषण प्रक्रिया में निम्नांकित तत्वों का होना आवश्यक होता है।

1 सम्प्रेषण सन्दर्भ- सम्प्रेषण की प्रक्रिया में भौतिक सन्दर्भ जैसे-स्कूल, शिक्षण कक्ष आदि होते हैं। सामाजिक सन्दर्भ के अंतर्गत कक्षा या विद्यालय का वातावरण आता है। मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ के अन्तर्गत औपचारिकता अथवा अनौपचारिकता आती है। दिन का समय तथा समय की अवधि समय सन्दर्भ के अन्तर्गत आते हैं।

2 संदेश का श्रोत- संदेश का श्रोत या तो वह व्यक्ति होता है जो शाब्दिक या अशाब्दिक संकेत प्रदान करते हैं या वह घटना होती है जिससे शाब्दिक या अशाब्दिक संकेत प्राप्त समझने का प्रयास किया जाता है। जब यह व्यक्ति होता है तो उसे संदेश भेजने वाला कहते हैं। संदेश भेजने वाला ही संदेश की विषयवस्तु निर्धारित करता है उसकी कोडिंग करता है एवं उचित माध्यम का चुनाव करके उसे प्रसारित भी करता है। सम्प्रेषण प्रक्रिया संदेश श्रोत से ही प्रारम्भ होती है। संदेश भेजने वाला संदेश का वांछित प्रभाव डालने के लिए हर संभव प्रयास करता है।

3 संदेश- संदेश एक उद्दीपक होता है जो संदेश भेजने वाला भेजता है। संदेश मौखिक या लिखित संकेतों के रूप में हो सकता है तथा व्यक्ति की मुखमुद्रा या हावभाव के रूप में हो सकता है। संदेश पोस्टर या चार्ट के द्वारा किसी आकृति- संकेत के माध्यम से प्रेषित किया जा सकता है या सूचना पैकेज के रूप में भी इसे विभिन्न माध्यमों से भेजा जा सकता है।

4 सम्प्रेषण का माध्यम- सम्प्रेषण का माध्यम वह साधन होता है जिसके द्वारा कोई संदेश संदेश श्रोत से संदेश प्राप्त करने वाले तक पहुंचता है। माध्यम प्रत्यक्षीकरण की संवेदनाएं होती हैं जो दिखने वाली सुनने वाली स्पर्श करने वाली स्वाद बताने वाली अथवा गन्ध बताने वाली हो सकती हैं।

5 संकेत या प्रतीक- ये प्रतीक या संकेत वे हैं जो किसी अन्य चीज का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये संकेत शाब्दिक अथवा अशाब्दिक भी हो सकते हैं। शब्द स्वयं में संकेत या प्रतीक होते हैं।

6 एनकोडिंग- एनकोडिंग वह प्रक्रिया है जिसमें किसी विचार या भावना की अभिव्यक्ति के लिए संकेतों या प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है।

7 डीकोडिंग- यह वह प्रक्रिया होती है जिसमें संदेश प्राप्त करने वाला व्यक्ति संदेश श्रोत से प्राप्त संकेतों का कूट अनुवाद कर संदेश ग्रहण करता है।

8 पृष्ठपोषण- यह वह प्रतिउत्तर होता है जो संदेश प्राप्त करने वाला व्यक्ति संदेश प्राप्त करने के पश्चात संदेश भेजने वाले के पास प्रेषित करता है।

9 संदेशग्रहणकर्ता- संदेश ग्रहण कर्ता वह व्यक्ति है जो सम्प्रेषण की प्रक्रिया में संदेश श्रोत द्वारा भेजे गए संदेश प्राप्त करता है जैसे. श्रोताएँ दर्शकएँ पत्र.पत्रिकाओं के पाठक आदि।

13.4 सम्प्रेषण के उद्देश्य

सम्प्रेषण के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं.

- 1 सम्प्रेषण का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के सामाजिक जीवन में गतिशीलता लाना है।
- 2 सम्प्रेषण के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक विचारों/भावनाओं को प्रेषित किया जाता है।
- 3 सम्प्रेषण का उद्देश्य अनुभवी व्यक्तियों द्वारा अपने अनुभवों तथा विचारों को अपने से कम अनुभव वाले व्यक्ति तक पहुंचाना है।
- 4 सम्प्रेषण शिक्षण.अधिगम प्रक्रिया में सहायता प्रदान करता है।
- 5 सम्प्रेषण का उद्देश्य विचारों/धूसूचनाओं का परस्पर आदान.प्रदान करना होता है।
- 6 सम्प्रेषण का उद्देश्य मानवीय तथा सामाजिक वातावरण को बनाये रखना तथा उसे सुदृढ करना होता है।
- 7 सम्प्रेषण के द्वारा निर्देश अथवा आदेश या संदेश प्रेषित करना होता है।
- 8 सम्प्रेषण शिक्षक द्वारा शिक्षार्थियों तक विषय संबंधी तथ्य एवं संकल्पनाओं को पहुंचाने एवं समझाने का कार्य करता है।
- 9 सम्प्रेषण द्वारा एक व्यक्ति अपनी समस्याओं से दूसरे व्यक्तियों को परिचित कराता है।
- 10 सम्प्रेषण का उद्देश्य विद्यार्थियों/श्रोताओं एवं पाठकों को विभिन्न प्रकार के विचारों/धूसूचनाओं से परिचित करना होता है।
- 11 सम्प्रेषण का उद्देश्य संदेश.श्रोत से संदेश ग्रहण कर्ता तक प्रभावशाली तरीके से संदेश पहुंचाना होता है। उपरोक्त उद्देश्यों से आप यह समझ गए होंगे कि बिना सम्प्रेषण के शिक्षा प्रदान करना संभव नहीं है।

13.5 सम्प्रेषण के प्रकार

सम्प्रेषण को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है-शाब्दिक तथा अशाब्दिक शैक्षिक तथा लोक सार्वजनिक सम्प्रेषण आदि।

1 शाब्दिक सम्प्रेषण

ऐसा सम्प्रेषण जिसमें सदैव भाषा का प्रयोग होता है शब्दिक सम्प्रेषण कहलाता है। इसमें भाषा का प्रयोग या तो मौखिक रूप से या लिखित रूप में शब्दों अथवा संकेतों के द्वारा विचार अथवा भावनाओं को दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग किया जाता है। शब्दिक सम्प्रेषण को पुनः दो प्रकार के सम्प्रेषणों में वर्गीकृत किया जा सकता है - मौखिक सम्प्रेषण व लिखित सम्प्रेषण।

मौखिक सम्प्रेषण - मौखिक सम्प्रेषण में तथ्यों एवं सूचनाओं का आदान-प्रदान मौखिक रूप से होता है। इस विधि में संदेश देने वाला तथा संदेश ग्रहण करने वाला दोनों ही परस्पर आमने सामने होता है। मौखिक सम्प्रेषण में वार्ताएँ, व्याख्यानएँ, परिचर्चाएँ, समूहिक चर्चाएँ, प्रश्नोत्तर तथा कहानी के माध्यम से विचारों की अभिव्यक्ति की जाती है। इसका एक उदाहरण एक शिक्षक द्वारा कक्षा में विद्यार्थियों के समक्ष दिया गया व्याख्यान है।

लिखित सम्प्रेषण - इसमें संदेश देने वाले तथा संदेश पाने वाले व्यक्तियों का आमने-सामने होना आवश्यक नहीं है। इसमें संदेश लिखित रूप में शब्दों या संकेतों के रूप में होता है। संदेश प्राप्त करने वाला इन्हीं शब्दों या संकेतों के माध्यम से संदेश भेजने वाले की भावना को समझ लेता है। इस सम्प्रेषण में संदेश की भाषा सरल सुगम स्पष्ट तथा आसानी से समझ में आने वाली हो ताकि संदेश बिना किसी भ्रम के सही रूप में ग्रहणकर्ता ग्रहण कर सके। लिखित सम्प्रेषण का एक उदाहरण दूरस्थ शिक्षा के पाठ्यक्रमों की स्वअधिगम सामग्री है।

2 अशाब्दिक सम्प्रेषण

अशाब्दिक सम्प्रेषण में भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है इसमें शरीर के हाव-भावएँ, मुख मुद्राएँ एवं स्पर्श संपर्क, भाव, भंगिमाओं के माध्यम से संदेश प्रेषित किया जाता है। अशाब्दिक सम्प्रेषण निम्नलिखित प्रकार के होते हैं।

वाणी सम्प्रेषण इस सम्प्रेषण में विचारों तथा भावनाओं की अभिव्यक्ति व्यक्तिगत रूप से अथवा छोटे समूहों में आमने-सामने रह कर वाणी द्वारा की जाती है। उदाहरण के लिए बात-चित के बीच, 2 में हाँ, हाँ कहना या हूँ, हूँ कहते चले जाना या मुसकुरानाएँ, चीखनाएँ, ठहाके लगाना आदि।

चक्षु संपर्क एवं मुख्य मुद्राएँ व्यक्तिगत सम्प्रेषण में चक्षु संपर्क तथा मुख मुद्राओं का प्रदर्शन अत्यन्त प्रभावशाली माना जाता है। कक्षा में चक्षु संपर्क के द्वारा शिक्षक अपने छात्रों की मनःस्थिति का सही-सही आकलन करने में सफल होते हैं इसी के द्वारा वह विद्यार्थियों के मुख-मुद्राओं से संवेगों की स्थिति समझ जाते हैं जैसे प्रसन्नताएँ, भयएँ, क्रोधएँ, शोक तथा आश्चर्य आदि का सम्प्रेषण आसानी से होता है। मुक.बधिर व्यक्तियों के लिए यह सम्प्रेषण अत्यन्त उपयोगी है।

स्पर्श संपर्क स्पर्श संपर्क में स्पर्श को ही सम्प्रेषण का प्रमुख माध्यम बनाया जाता है। स्पर्श के माध्यम से व्यक्ति अपनी भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति करने में समर्थ होता है। हाथ मिलाने के तरीके से ही अंदाजा लग जाता है कि यह हाथ दोस्ती का है या दुश्मनी का है। माँ के हाथ का एक स्पर्श मात्र उसके शिशु को बहुत

कुछ कह देता है। प्रशंसा के एक शाबाशी प्यार का एक चुंबन अपने आप बहुत सी भावनाओं, संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। दृष्टिहीन छात्रों के लिए स्पर्श संप्रेषण का बहुत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी साधन है।

उपयोग के आधार पर संप्रेषण को शैक्षिक तथा लोक संप्रेषण के दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

शैक्षिक संप्रेषण

शैक्षिक संप्रेषण से तात्पर्य शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किये गए संप्रेषण से होता है इसमें संदेश का स्रोत शिक्षक होता है तथा विद्यार्थी संदेश ग्रहण करने वाले होते हैं इसमें पाठ्यक्रम की विषयवस्तु या सहगामी क्रियाएँ संदेश के रूप में होती हैं। शिक्षक छात्रों को विषयवस्तु स्पष्ट करने के लिए शैक्षिक संप्रेषण में शाब्दिक तथा अशाब्दिक दोनों ही प्रकार के संप्रेषणों का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से करने का प्रयास करता है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में शिक्षक तथा विद्यार्थियों को एक साथ मिलकर कार्य करने के क्षेत्र में संप्रेषण एक प्रमुख साधन के रूप में कार्य करता है। शिक्षक शिक्षण से पूर्व पाठयोजना बनाता है। शिक्षण हेतु उपयुक्त विधियों एवं प्रविधियों का चुनाव करता है। शाब्दिक एवं अशाब्दिक माध्यमों से विषय वस्तु को समझाने में संप्रेषण का प्रयोग करता है। जब तक शिक्षक संप्रेषण की कला में निपुण नहीं होगा वह अपने शिक्षण को सफल एवं प्रभावशाली नहीं बना सकेगा। शैक्षिक संप्रेषण अधिकांशतः द्विध्रुवीय होता है। इसमें शिक्षक अपनी बात कहता है इसके बाद विद्यार्थी अपनी जिज्ञासाओं एवं शंकाओं को शिक्षक के समक्ष प्रस्तुत करके उनका समाधान प्राप्त करते हैं। शिक्षक को भी विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं से अपने शिक्षण के प्रति छात्रों से धनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों ही प्रकार की प्रतिक्रिया प्राप्त होती है जिसकी मदद से वह अपने शिक्षण को और अधिक प्रभावशाली बनाने का प्रयास करता है। शैक्षिक संप्रेषण को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए अच्छे शिक्षक शिक्षण के दौरान उचित शिक्षण सहायक सामग्रियों का प्रयोग करते हैं। शिक्षण सहायक सामग्रियों के प्रयोग से संप्रेषण और अधिक प्रभावशाली हो जाता है जिस कारण शिक्षण भी प्रभावशाली हो जाता है। इस प्रकार आप यह जान गए होंगे कि किसी भी शिक्षक का शिक्षण तभी प्रभावशाली होगा जब वह संप्रेषण की कला में निपुण होगा।

लोक संप्रेषण

लोक संप्रेषण से तात्पर्य अपने विचार या अपनी बात को असंख्य लोगों तक पहुंचाना होता है। इस संप्रेषण में संदेश को समूहिक रूप से प्रसारित किया जाता है। इस प्रकार के संप्रेषण में अधिकांशतः संदेश देने वाले व्यक्ति से आमने-सामने बात नहीं हो सकती है। इस कारण संदेश की भाषा अत्यन्त ही सरल एवं सुबोध एवं सहज होती है जिससे कि जन-जन तक पहुंचे संदेश में किसी प्रकार की भ्रान्ति न रहे। लोक संप्रेषण के अंतर्गत रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र, पत्रिकाओं, पुस्तकों, वीडियो फिल्मों तथा विज्ञापन बोर्डों का प्रयोग

किया जाता है। ये सभी साधन महत्वपूर्ण विचारों, सूचनाओं, ध्वजों को अधिक से अधिक लोगों तक आसानी से पहुँचाने का कार्य करते हैं। राष्ट्र के विकास में लोक सम्प्रेषण का बहुत बड़ा हाथ होता है। लोक सम्प्रेषण में जनसंचार माध्यम का प्रयोग किया जाता है। जनसंचार माध्यमों के द्वारा विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है जिससे बहुत अधिक संख्या में विद्यार्थी, ध्वज लाभान्वित होते हैं। वर्तमान में मुक्त विश्वविद्यालय लोक सम्प्रेषण का प्रयोग करके सुदूर क्षेत्रों में शिक्षा सुलभ करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं।

13.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के प्रारम्भ में आपने सम्प्रेषण का अर्थ समझा। सम्प्रेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति परस्पर सामान्य अवबोध के माध्यम से सूचनाओं तथा विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। इस इकाई के अंतर्गत सम्प्रेषण की प्रकृति एवं विशेषताओं का अध्ययन किया। आपने यह समझा कि सम्प्रेषण एक प्रक्रिया है जो द्विध्रुवीय है। गत्यात्मक है। उद्देश्यपूर्ण है तथा पारस्परिक संबंध स्थापित करती है। इसमें विचारों को मौखिक एवं लिखित अथवा सांकेतिक रूप में प्रेषित किया जाता है। सम्प्रेषण की प्रक्रिया के अन्तर्गत आप यह समझ गए होंगे कि संदेश श्रोत, संदेश भेजने वाला व्यक्ति किसी न किसी माध्यम से संदेश प्राप्तकर्ता तक संदेश पहुँचाता है। संदेश प्राप्तकर्ता संदेश प्राप्ति की सूचना भी देता है। इस इकाई के मध्य में सम्प्रेषण के सभी तत्वों पर प्रकाश डाला गया तथा सम्प्रेषण के उद्देश्यों के बारे में भी आपने अध्ययन किया। सम्प्रेषण का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के सामाजिक जीवन में गतिशीलता लाना है। सम्प्रेषण के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक विचारों, भावनाओं को प्रेषित किया जाता है। इस इकाई के अंत में आपने सम्प्रेषण के विभिन्न प्रकारों, शाब्दिक, अशाब्दिक, शैक्षिक एवं लोक सम्प्रेषण के बारे में अध्ययन किया। शाब्दिक सम्प्रेषण में भाषा का प्रयोग किया जाता है। इसके दो प्रकार, मौखिक एवं लिखित होते हैं। मौखिक एवं लिखित सम्प्रेषणों को आप उदाहरणों के माध्यम से समझ गए होंगे। अशाब्दिक सम्प्रेषण में भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है। भाषा के स्थान पर वाणी, संकेत, चक्षु संपर्क तथा मुख, मुद्राओं के प्रयोग एवं स्पर्श, संपर्क आदि का प्रयोग किया जाता है। शैक्षिक सम्प्रेषण में शिक्षक विद्यार्थियों को अपनी विषय-वस्तु को स्पष्ट करने के लिए शाब्दिक या अशाब्दिक माध्यमों का प्रयोग करता है। सम्प्रेषण के बिना शिक्षा असंभव है। यह भी आपने समझा। लोक सम्प्रेषण से अभिप्राय सूचना, विचारों और अवकाश के सदुपयोग हेतु मनोरंजक गतिविधियों का सम्प्रेषण संचार माध्यमों द्वारा जन-जन तक व्यापक प्रसार करना है।

13.7 शब्दावली

सम्प्रेषण: किसी भी कारण से परस्पर सूचनाओं तथा विचारों का आदान-प्रदान करना, ध्वज ही सम्प्रेषण है तथा सम्प्रेषण हेतु हमेशा माध्यम की आवश्यकता होती है।

सम्प्रेषण संदर्भ: सम्प्रेषण संदर्भ का अर्थ है भौतिक सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक परिस्थितियां जैसे भौतिक संदर्भ में कक्षा तथा स्कूल सामाजिक संदर्भ में कक्षा या विद्यालय का वातावरण एवं मनोवैज्ञानिक संदर्भ में औपचारिकता तथा अनौपचारिकता आती है।

एनकोडिंग : एनकोडिंग वह प्रक्रिया है जिसमें किसी विचार या भावना की अभिव्यक्ति के लिए संकेतों या प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है अर्थात् संदेश को भेजने का कार्य करते हैं।

डिकोडिंग : यह वह प्रक्रिया होती है जिसमें संदेश प्राप्त करने वाला व्यक्ति संदेश स्रोत से प्राप्त संकेतों का कूट अनुवाद कर संदेश ग्रहण करता है अर्थात् संदेश को ग्रहण कर उसी के अनुरूप क्रिया करता है।

पृष्ठपोषण : यह वह प्रतिउत्तर होता है जो संदेश प्राप्त करने वाला व्यक्ति संदेश प्राप्त करने के पश्चात् संदेश भेजने वाले के पास प्रेषित करता है। इससे यह पता चलता है कि संदेश प्रपट करने वाले व्यक्ति को संदेश के विषय में सभी तथ्यों की जानकारी हुई या नहीं।

शाब्दिक सम्प्रेषण : ऐसा सम्प्रेषण जिसमें सदैव भाषा का प्रयोग होता है शाब्दिक सम्प्रेषण कहलाता है। इसमें भाषा का प्रयोग या तो मौखिक रूप से या लिखित रूप में शब्दों अथवा संकेतों के द्वारा विचार अथवा भावनाओं को दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

अशाब्दिक सम्प्रेषण : अशाब्दिक सम्प्रेषण में भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है इसमें शरीर के हाव-भाव एवं मुख मुद्रा एवं स्पर्श संपर्क-भाव-भंगिमाओं के माध्यम से संदेश प्रेषित किया जाता है।

लोक सम्प्रेषण : लोक सम्प्रेषण का अर्थ है अपने विचार या अपनी बात को असंख्य लोगों तक पहुंचाना होता है। इस सम्प्रेषण में संदेश को समूहिक रूप से प्रसारित किया जाता है।

शैक्षिक सम्प्रेषण : शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किये गए सम्प्रेषण से होता है इसमें संदेश का स्रोत शिक्षक होता है तथा विद्यार्थी संदेश ग्रहण करने वाले होते हैं इसमें पाठ्यक्रम की विषयवस्तु या सहगामी क्रियाएँ संदेश के रूप में होती हैं।

13.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुलश्रेष्ठ ए.एस. पी., 2009, शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार ए श्री विनोद पुस्तक मंदिर ए आगरा।
2. माथुर ए.एस. ए.एस., 1996, शैक्षिक तकनीकी ए श्री विनोद पुस्तक मंदिर ए आगरा।
3. शर्मा ए.आर. ए.ए., 2010, शिक्षा तकनीकी ए लायल बुक डिपो ए मेरठ।
4. कपूर ए.उर्मिला, 1986, शैक्षिक तकनीकी ए साहित्य प्रकाशन ए आगरा।
5. सिंह आर. पी.; 2010, शैक्षिक प्रबंधन एवं विद्यालय संगठन ए अग्रवाल पब्लिकेशन्स ए आगरा।
6. शर्मा प्रतिष्ठा, 2009, शैक्षिक प्रबंध एवं विद्यालय संगठन ए साहित्य प्रकाशन ए आगरा।
7. Agrawal, J. C. (2010). Educational Technology & Management. Agra: Shree Vinod Pustak Mandir Acharya Book Depot.
8. Sampath, K., Panneerselvam, A. & Santhanam, S. (2007). Introduction to Educational Technology. New Delhi: Sterling Publishers Private Ltd.

9. Mohanty, S.B. (1986). Educational Technology. New Delhi: kalyani Publishers.
10. Mohanty, J. (1992). Educational Technology. New Delhi: Deep & deep Publishers.
11. Kumar, K.L. (1996). Educational Technology. New Delhi: New Age Publishers.
12. Anand, P.S. (1996). Essentials of Teaching and Learning. Rohtak : Unique Publication.
13. Chand, Tara (1990). Educational Technology. New Delhi: Anmol Publishers.
14. Thornburg, H. (1973). School Learning and Instruction. California: Wordsworth Publishing Co. Belmod.

13.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Brunner, J.S. (1966). Towards a theory of instruction. Massachussets: Harward University Press.
2. Dececo, John P. (1970). The Psychology of Learning and Instructional technology. New Delhi: Prentice Hall Pvt. Ltd.
3. Raths, James & et al. (1971). Studying Teaching. New Jersey: Prentice Hall Inc.
4. Sharma, R.A. (1983). Technology of teaching. Meerut: International Publishing House.
5. Storms, R.D. (1971). Teaching and Learning Process. New Jersey: Prentice Hall Inc.
6. Green Thomas, F. (1971). The activities of teaching. London: Mc Graw Hill Company.

13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

- प्रश्न.1 सम्प्रेषण से क्या तात्पर्य है। सम्प्रेषण की प्रकृति एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
- प्रश्न.2 सम्प्रेषण के उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।
- प्रश्न.3 सम्प्रेषण कितने प्रकार का होता है। उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
- प्रश्न.4 सम्प्रेषण की प्रक्रिया के तत्वों को लिखिए एवं शिक्षा में उसके महत्व पर प्रकाश डालिए।

इकाई 14: प्रभावशाली प्रबंधन में सम्प्रेषण की भूमिका एवं उसके प्रकार (Role of Communication in effective management and its types)

- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 उद्देश्य
- 14.3 सम्प्रेषण
 - 14.3.1 परिभाषा
 - 14.3.2 सम्प्रेषण के तत्व
 - 14.3.3 सम्प्रेषण के सिद्धांत
 - 14.3.4 प्रभावशाली प्रबंधन में सम्प्रेषण की भूमिका
 - 14.3.5 सम्प्रेषण के प्रकार
- 14.4 सारांश
- 14.5 शब्दावली
- 14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
- 14.8 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना (Introduction):

प्रबंध की आवश्यकता उतनी ही पुरानी है जितना कि मानव सभ्यता का इतिहास। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक से अधिक व्यक्ति मिलकर किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग करते हुए कार्य करते हैं। प्रत्येक संगठन में व्यक्ति अनेक तरह की क्रियाओं में लगे रहते हैं जो कि कार्यात्मक रूप से एक दूसरे से सम्बंधित होते हैं। इन क्रियाओं का आधार विचारों व सूचनाओं का आदान – प्रदान होता है। विचारों व सूचनाओं के इसी लेन – देन को सम्प्रेषण कहते हैं। सम्प्रेषण के बिना प्रबंध की कल्पना नहीं की जा सकती है। चेस्टर बर्नाड के अनुसार "सम्प्रेषण प्रबंध का एक आधारभूत कार्य ही नहीं बल्कि प्रबंध की समस्या भी है।" वास्तव में प्रबंधक अपने समय का प्रतिशत अंश सम्प्रेषण करने में ही व्यतीत करते हैं। उनका प्रत्येक दिन आदेशों, निर्देशों, वार्तालाप, प्रतिवेदन, विवेचन, आज्ञा, आदि से भरा रहता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि सम्प्रेषण के अभाव में प्रबंधन एक कोरी कल्पना मात्र है। प्रस्तुत अध्याय में सम्प्रेषण के बारे में पढ़ेंगे।

14.2 उद्देश्य (Objectives):

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- सम्प्रेषण की परिभाषा एवं अर्थ बता सकेंगे ।
- सम्प्रेषण के तत्व का वर्णन कर सकेंगे ।
- सम्प्रेषण के सिद्धांतों का उल्लेख कर सकेंगे ।
- प्रभावशाली प्रबंधन में सम्प्रेषण की भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगे ।
- सम्प्रेषण के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट कर सकेंगे ।

14.3 सम्प्रेषण (Communication):

संप्रेषण दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच सम्प्रेषण का अंग्रेजी रूपांतरण Communication होता है। Communication शब्द लैटिन के शब्द "Communis" से बना है जिसका अर्थ होता है समरूप (Common)। सम्प्रेषण में प्रेषक सन्देश प्राप्तकर्ता के साथ एक सा अर्थ बोध स्थापित करने का प्रयास करता है। सम्प्रेषण संदेशों के विनिमय की प्रक्रिया है।

14.3.1 परिभाषा (Definition):

न्यूमैन एवं समर: सम्प्रेषण दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच तथ्यों, विचारों, सम्मतियों अथवा भावनाओं का विनिमय है।

मैकफारलैंड: सम्प्रेषण व्यक्तियों के मध्य अर्थपूर्ण अंतर्व्यवहार की प्रक्रिया है।

कीथ डेविस: सम्प्रेषण प्रक्रिया है जिसमें सन्देश और समझ को एक से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाया जाता है।

थियो हेमैन: सम्प्रेषण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को सूचनाएं एवं समझ हस्तांतरित करने की प्रक्रिया है।

लुईस ए एलेन: सम्प्रेषण में वे सभी चीजें शामिल रहती हैं जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी बात दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में डालता है। यह अर्थ का पुल है। इसके अंतर्गत कहने, सुनने और समझने की व्यवस्थित एवं निरंतर प्रक्रिया चलती रहती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि सम्प्रेषण एक प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति अपने मतों, विचारों, सम्मतियों, तथा तर्कों आदि का पारस्परिक आदान-प्रदान करते हैं। यह एक कला है जिसके माध्यम से सूचनाओं का विनिमय होता है। सम्प्रेषण की प्रक्रिया तब तक ही चलती रहती है जब तक आपसी अवरोधों, मतभेदों, संदेहों एवं आपतियों को दूर करके आपसी समझ और सम्मति न स्थापित हो जाये।

14.3.2 सम्प्रेषण के तत्व (Elements of Communication)

सम्प्रेषण में मुख्यतः निम्नलिखित तत्व सम्मिलित रहते हैं :

स्रोत (Source): यह सूचना का उद्गम स्थल होता है। यहाँ सूचनाएं अपने प्रारंभिक रूप में होती हैं।

प्रेषक (Sender): यह सम्प्रेषण का वह महत्वपूर्ण अंग होता है जो सूचना या संवाद देता है। पूर्ण एवं सही सम्प्रेषण के लिए यह आवश्यक है कि संवाद या सन्देश संवाद दाता के मस्तिष्क में सही और स्पष्ट होने चाहिए। यह सूचना को चिन्हों, प्रतीकों व संकेतों के व्यवस्थित प्रारूप में लिपिबद्ध करके भेजता है।

सन्देश (Message): सन्देश सम्प्रेषण की विषय वस्तु का नाम है। संदेश से मतलब उस विचार से है जो संवाददाता द्वारा प्राप्तकर्ता को भेजी जाती है। सन्देश से वही अर्थ स्पष्ट होना चाहिए जो संवाददाता के मस्तिष्क में हैं।

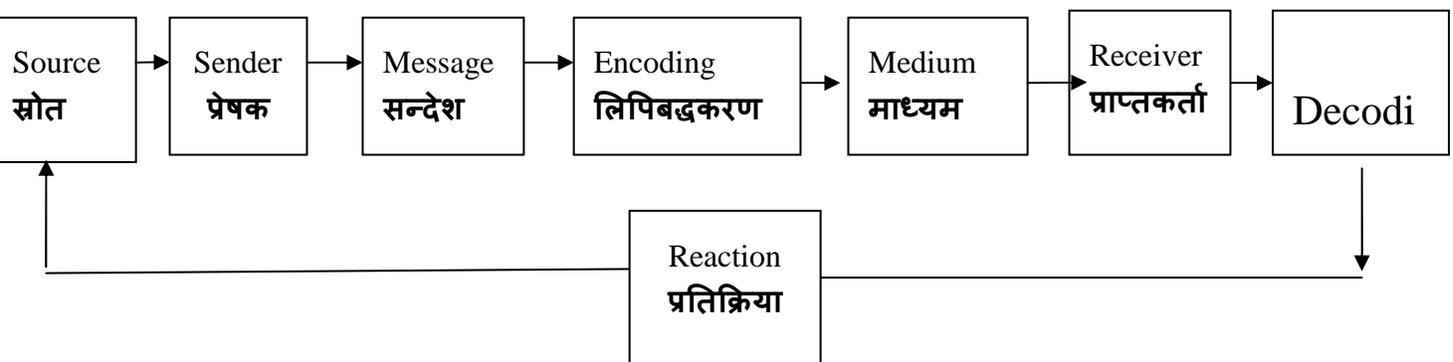
लिपिबद्धकरण (Encoding): सन्देश या सूचना अदृश्य एवं अमूर्त होती है। उसे स्वरूप प्रदान करने हेतु लिपिबद्ध किया जाना आवश्यक है। किसी भी सूचना व सन्देश को लिपिबद्ध करने हेतु प्रतीकों, चिन्हों या शरीर की भाषा (वाणी, हाव-भाव, मुद्रा हाथ आदि) का प्रयोग किया जाता है। लिपिबद्धकर्ता को कई घटक प्रभावित करते हैं यथा सम्प्रेषण कौशल, अभिवृत्तियाँ, अनुभव-ज्ञान, वातावरणीय एवं सामाजिक-सांस्कृतिक तत्व।

माध्यम(Medium): इससे तात्पर्य उस साधन से है जिसके द्वारा संवाददाता प्राप्तकर्ता को सूचना भेजता है। संवाददाता द्वारा प्राप्तकर्ता को सूचना देने के लिए विभिन्न साधनों का प्रयोग किया जाता है। इसमें मौखिक एवं लिखित दोनों प्रकार की सम्प्रेषण विधियाँ शामिल हैं।

प्राप्तकर्ता (Receiver): यह वह व्यक्ति होता है जिसके पास सूचनाएं भेजी जाती हैं।

कूट खोलना(Decoding): सन्देश प्राप्तकर्ता सूचना/सन्देश प्राप्त करने के बाद उसकी व्याख्या या अनुवाद अपने शब्दों में करता है।

प्रतिक्रिया (Reaction): इससे तात्पर्य संवाददाता द्वारा प्रेषित किये गए सूचना या विचार का प्राप्तकर्ता पर पड़ने वाले प्रभाव से है। सूचना की प्राप्तकर्ता पर क्या प्रतिक्रिया होगी, यह संवाददाता के संवाद भेजते समय आचरण और व्यवहार पर निर्भर करता है। संवाददाता की भाषा एवं व्यवहार में विरोधाभास प्राप्तकर्ता पर प्रतिकूल प्रभाव भी डाल सकता है।



14.3.3 सम्प्रेषण के सिद्धांत (Principles of communication):

I) स्पष्टता (Clarity): सूचना की स्पष्टता भाव और भाषा दोनों दृष्टिकोणों से होनी चाहिये जिससे कि प्राप्तकर्ता सूचना का वही अर्थ लगावे जो कि संवाददाता के मस्तिष्क में है। स्पष्टता बनाये रखने हेतु बहुत अधिक तकनीकी एवं निजी भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

II) अनुकूलता (Consistency): किसी संस्था में संवाददाता द्वारा संचारित सूचनाएं संस्था की नीतियों, उद्देश्यों और कार्यक्रमों से मिलती-जुलती होनी चाहिए।

III) पर्याप्तता (Adequacy): सूचना की पर्याप्तता उसे प्राप्त करने वाले व्यक्ति की मानसिक क्षमता पर निर्भर करती है।

IV) समयानुकूलता (Timeliness): किसी सूचना के सम्बन्ध के एक व्यक्ति की प्रतिक्रियाएं अलग-अलग समय पर अलग-अलग हुआ करती है। अतः प्रत्येक सूचना के सम्प्रेषण का उपयुक्त समय क्या होगा-यह संस्था विशेष के आकार और स्वभाव के साथ साथ परिस्थितियों, मनोवैज्ञानिक धारणाओं तथा तकनीकी पहलुओं आदि पर निर्भर करता है।

V) प्रसारण (Distribution): सम्प्रेषण के लिए जितना महत्व समय का निर्धारण करना है उतना ही महत्व प्रत्येक सूचना का उचित व्यक्ति के पास पहुंचना है। प्रबन्धक को पात्र, समय और परिस्थितियों के अनुसार ही सूचना प्रसारण का सर्वश्रेष्ठ मार्ग चुनना चाहिये।

VI) सामान्य श्रोत (Common Source): जहाँ तक संभव हो सूचनाएं एक सामान्य श्रोत से प्रेषित की जानी चाहिए।

VII) मध्यस्थों की न्यूनता (Minimum levels): सम्प्रेषण के इस सिद्धांत के अनुसार यह आवश्यक है कि सम्प्रेषण प्रक्रिया में मध्यस्थों की संख्या न्यूनतम हो। मध्यस्थों की संख्या कम होने से जहाँ एक ओर सूचना प्राप्तकर्ता तक जल्दी पहुंचेगी वहीं दूसरी ओर सूचनाओं के विकृत होने की संभावना कम होगी।

VIII) प्राप्तकर्ता की स्थिति का ज्ञान (Knowledge of receivers' position): सूचना भेजते समय प्रेषक को प्राप्तकर्ता की आवश्यकताओं, भावनाओं व सामाजिक रीति-रिवाजों पर भी ध्यान देना चाहिए।

IX) लोचता (Flexibility): यह सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि परिवर्तित दशाओं, तकनीकी परिवर्तनों, व अन्य मांगों के अनुसार सूचना में परिवर्तन किया जाना चाहिए।

X) भावनात्मक अपील (Emotional Appeal): सूचनाओं में भावनात्मक तत्व भी होने चाहिए जिससे की वे प्रभावी बन सकें।

XI) विषय वस्तु का ज्ञान (Knowledge of Subject matter): प्रेषक को विषय वस्तु का ज्ञान सही, पूर्ण व विस्तृत होना चाहिए।

XII) प्रतिपुष्टि (Feedback): सूचना प्राप्त करने के बाद प्राप्तकर्ता की प्रतिक्रियाओं, भावनाओं, सुझावों को प्रेषक तक पहुंचाने का प्रावधान भी होना चाहिए।

XIII) उपयुक्त वातावरण (Suitable Environment): उपयुक्त वातावरण तैयार करने के बाद ही सूचना भेजनी चाहिए।

XIV) द्वि मार्गी प्रेषण (Two-way Communication): सम्प्रेषण एक मार्गी नहीं होना चाहिए।

XV) अच्छा श्रवण (Good Listening): सूचना भेजने वाला और सूचना को पाने वाला, दोनों ही अच्छे श्रवणकर्ता होने चाहिए।

14.3.4 प्रभावशाली प्रबंधन में सम्प्रेषण की भूमिका (Role of Communication in Effective management):

20 वीं शताब्दी की प्रमुख घटना आधुनिक समाज का उदय है। जैसे-जैसे हमारी आवश्यकताओं में वृद्धि होती गयी है, वैसे-वैसे मानवीय संगठन व उपक्रम आस्तित्व में आने लगे हैं। इन संस्थओं/उपक्रमों में मानव शक्ति, तकनीकी, मुद्रा, भौतिक संसाधन, विचारों की सहायता से कार्य करने की कला ही प्रबंधन कहलाती है। परन्तु प्रबंधन को प्रभावशाली बनाने के लिए सम्प्रेषण एक आवश्यक तत्व है। प्रबंध में सम्प्रेषण का महत्व निम्नलिखित है:

I) नियोजन एवं सम्प्रेषण (Planning & Communication): नियोजन प्रबंध का एक महत्वपूर्ण कार्य है। इसमें प्रबंधक निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उपलब्ध विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन करता है। नियोजन में आपसी विचार विमर्श करके निर्णय लिया जाता है। सम्प्रेषण के माध्यम से क्या करना है, कब करना है और कैसे करना है आदि बातों पर निर्णय लिया जाता है। सम्प्रेषण ही एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से निर्धारित की गयी योजनाओं की जानकारी प्रबंधक अपने अधीनस्थों को देता है और उसे लागू करने का प्रयास करता है। सम्प्रेषण के अभाव में योजनायें सिर्फ सिर्फ कागजों तक ही सीमित रहती हैं।

II) संगठन एवं सम्प्रेषण (Organization & Communication): संगठन विभिन्न कार्यों का एकीकरण करने, कार्यों का वितरण करने तथा सम्बंधित व्यक्तियों को उनके अधिकार व दायित्व सौपने की प्रक्रिया है। किसी संस्था में सम्प्रेषण तन्त्र जितना प्रबल एवं त्रुटि रहित होगा, संगठन की प्रक्रिया को उतना बल मिलता है।

III) नेतृत्व एवं सम्प्रेषण (Leadership & Communication): नेतृत्व एक गतिशील शक्ति है जिसके द्वारा प्रबंधक निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपने अधीनस्थों को प्रभावित करता है। नेतृत्व की सफलता

सम्प्रेषण पर निर्भर करती है। जब तक प्रबंधक और अधीनस्थों के बीच स्वतंत्र सम्प्रेषण होता रहता है तब तक उन दोनों के बीच विश्वास की भावना प्रबल होती है और निर्देशित मार्ग द्वारा कार्य करने की अवस्थाएं उपस्थित रहती हैं। इसके माध्यम से जहाँ एक ओर प्रबंधक अपना प्रभाव अधीनस्थों पर डाल सकता है वहीं दूसरी ओर वह अधीनस्थों से सुझाव, विचार, मत आदि प्राप्त करके निर्देशों को अधिक कारगर बनाता है।

IIIIIV) समन्वय एवं सम्प्रेषण (Coordination & Communication): समन्वय से आशय सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति हेतु सभी व्यक्तियों के कार्यों में ताल मेल रखने से होता है। किन्तु समन्वय की सफलता के लिए सम्प्रेषण एक अनिवार्यता है। मेरी कुर्शिंग नील्स के शब्दों "समन्वय के लिए सम्प्रेषण की श्रेष्ठता बहुत आवश्यक है। संदेशों का आदान-प्रदान उपर-नीचे तथा इधर-उधर सभी दिशाओं में होता है अर्थात् विभिन्न स्तर के अधिकारियों या कर्मचारियों में सूचनाओं का आदान प्रदान चलता रहता है।"

V) नियंत्रण एवं सम्प्रेषण (Control & Communication): नियंत्रण का तात्पर्य इस बात का मूल्याङ्कन करने से है कि संस्था के समस्त कार्य स्वीकृत की गयी योजनाओं, दिए गए निर्देशों या निर्धारित नियमों के अनुसार हो रहे हैं या नहीं। इसका उद्देश्य कार्य की दुर्बलताओं व त्रुटियों को प्रकाश में लाना है जिससे यथा समय उनमें सुधार लाया जा सके और भविष्य में उसकी पुनरावृत्ति रोकी जा सके। सम्प्रेषण के बिना नियंत्रण की कल्पना नहीं की जा सकती है।

VI) मनोबल का निर्माण (High morale): कर्मचारियों का उच्च मनोबल ही संस्था की मूल्यवान संपत्ति होती है। यह कार्य के प्रति स्वेच्छा से सहयोग करने की इच्छा एवं मनोदशा है। यह उत्साह, तत्परता, जोश व योगदान करने की ललक से परिपूर्ण मानसिक दशा है। सम्प्रेषण के माध्यम से कर्मचारीगण और प्रबंधक के मध्य विचारों का निरंतर आदान-प्रदान होता रहता है। यदि किसी कर्मचारी के मन में कोई संदेह या भ्रम उत्पन्न हो जाता है तब प्रबंधक आसानी से उसकी समस्या का समाधान कर लेता है। ऐसे मैत्रीपूर्ण माहौल में सदैव शांति रहती है और संघर्ष कोसों दूर रहते हैं।

VII) बाहरी पक्षों से सम्बन्ध (Relationship with external parties): वर्तमान युग प्रतियोगिताओं व स्पर्धा का दौर है। प्रत्येक संस्था अपने अनेक बाह्य पक्षों यथा जैसे समुदाय, आयोजकों, तकनीकी विशेषज्ञों, सलाहकारों आदि से जुड़ी रहती है। किसी संस्था को अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिए अपने सभी पक्षकारों के साथ संपर्क बनाये रखना पड़ता है। यह कार्य बिना सम्प्रेषण के संभव नहीं है।

VIII) पूर्वानुमान में सहायक (Helpful in forecasting): किसी प्रबंधक को भविष्य की चुनौतियों एवं आने वाले मुश्किलों के सम्बन्ध में पूर्वानुमान करने पड़ते हैं ताकि वह अपनी संस्था/ उपक्रम का विकास कर सके। उसे अनेक तरह की सूचनाओं, तथ्यों, मतों, प्रावधानों आदि को एकत्रित करना पड़ता है। इस तरह पूर्वानुमान में सम्प्रेषण का महत्व बढ़ जाता है।

IX) मानवीय सम्बन्ध स्थापित करना (Establishing Human Relationship): प्रबंध का विषय मानव है और यह मूलतः मानवों के विकास से सम्बंधित है। अब वो दिन चले गए जब मानव को उत्पादन का साधन मात्र समझा जाता था। किसी संस्था/उपक्रम से जुड़ी मानव शक्ति की रुचियों, जरूरतों, अभिवृत्तियों,

मनोदशाओं आदि का भी ध्यान रखना प्रबंध का कार्य है। इन कार्यों को सम्पादित करने के लिए सम्प्रेषण आवश्यक हो जाता है। अधीनस्थों से बिना विचार-विमर्श किये उनकी समस्याओं को जाना नहीं जा सकता है। सम्प्रेषण व्यवस्था से प्रबंधक अपनी नीतियों व विचारों को अधीनस्थों तक पहुँचाकर वास्तविक स्थिति से अवगत कराते हैं और अधीनस्थ अपने सुझाव, शिकायतें, विचार आदि प्रबंधकों तक पहुँचाते रहते हैं।

X) संदेहों और अज्ञानता का निवारण (Eradication of Doubts and Ignorance): संदेह या भ्रम के कारण अधीनस्थों और प्रबंधकों बीच आपसी सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं। नियमों और कार्यपद्धति की अज्ञानता भी अधीनस्थों के सहभागिता को प्रभावित करती है। जहाँ सम्प्रेषण व्यवस्था जितनी दुरुस्त रहेगी अधीनस्थों की कार्य बाधाएँ उतनी ही कम होंगी।

उपर्युक्त विवेचनाओं यह कहा जा सकता है कि सम्प्रेषण किसी संस्था की जीवनदायिनी शक्ति होती होती है। प्रतिस्पर्धा, विविधता, विशिष्टीकरण नयी तकनीकी के इस दौर में प्रबंधक की चुनौतियाँ बढ़ती जा रही हैं। प्रबंधन को सभी कार्यों के लिए सम्प्रेषण की सहायता लेनी पड़ती है। सम्प्रेषण एक प्रणाली होती है जो कि सभी प्रकार के प्रबंधकीय कार्यों को गति प्रदान करती है।

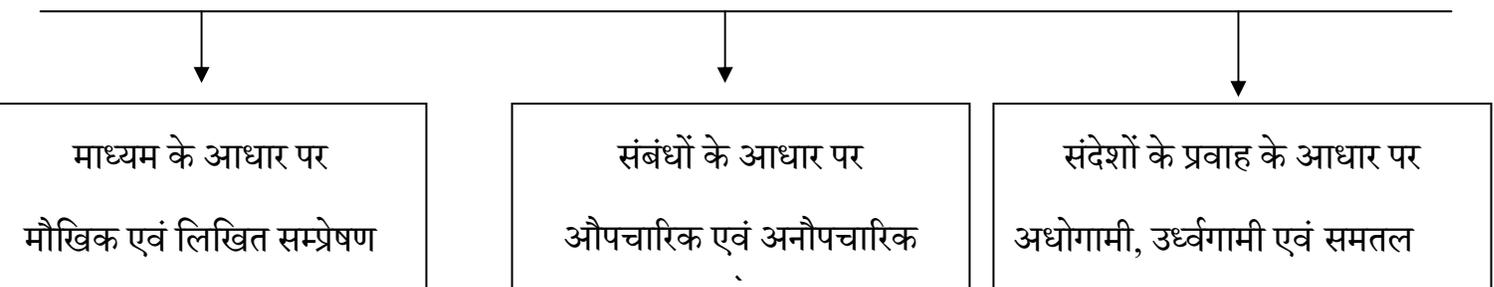
14.3.5 सम्प्रेषण के प्रकार (Types of Communication)

सम्प्रेषण के अनेक प्रकार होते हैं। उनका वर्गीकरण निम्नलिखित आधारों पर किया गया है।

- माध्यम के आधार पर प्रकार (Types on the basis of media)
- संबंधों के आधार पर प्रकार (Types on the basis of relations)
- संदेशों के प्रवाह के आधार पर (Types on the basis of flow of communication)

निम्नलिखित चित्र की सहायता से सम्प्रेषण के विविध रूपों का अनुमान लगाया जा सकता है।

सम्प्रेषण के प्रकार



माध्यम के आधार पर

I) मौखिक सम्प्रेषण (Verbal Communication): मौखिक सम्प्रेषण का आशय है कि प्रेषक द्वारा किसी सूचना/ संवाद को मुख से उच्चारण करके प्राप्त करता को प्रेषित करने से है। इस तरह से सम्प्रेषण में प्रेषक और प्राप्तकर्ता आमने-सामने होते हैं। ऐसे सम्प्रेषण में अनेक साधनों का प्रयोग किया जाता है जैसे प्रशिक्षण कार्यक्रम, साक्षात्कार, संयुक्त विचार-विमर्श, सभाएं, सम्मलेन, आदि।

गुण:

- यह सम्प्रेषण का सबसे प्रभावशाली तरीका है।
- इसमें समय, धन और श्रम की बचत होती है।
- सन्देश/ सूचना को शीघ्र ही प्राप्तकर्ता तक पहुँचाया जा सकता है।
- यह आसानी से समझ में आ जाता है। यदि दुर्भाग्य से भ्रम पैदा हो भी जाये तो उसका तत्काल निवारण भी किया जा सकता है।
- यह लिखित सम्प्रेषण की तुलना में लोचनीय होता है। इसमें प्रेषित सन्देश में आसानी से परिवर्तन एवं संशोधन किया जा सकता है।
- यह पारस्परिक सद्भाव व सद्बिश्वास में वृद्धि होती है।
- इससे व्यक्तियों में वाक्चातुर्य, व्यवहारिक कुशलता आदि का विकास होता है जिससे उसकी कार्य क्षमता में वृद्धि होती है।

दोष:

- मौखिक सम्प्रेषण के लिए दोनों पक्षों का उपस्थित होना आवश्यक है। यदि किसी समय इन दोनों में से कोई भी अनुपस्थित हो तो सम्प्रेषण संभव नहीं होता है।
- मौखिक सम्प्रेषण लम्बी सूचनाओं के लिए अनुपयुक्त होता है क्योंकि प्राप्तकर्ता द्वारा सूचना को याद रख पाना असंभव होता है।
- इसमें प्रेषित की गयी सूचनाओं का कोई लिखित साक्ष्य नहीं होता है।
- जो सूचनाये किसी संस्था में भावी सन्दर्भ के लिए आवश्यक होती हैं, वे मौखिक रूप में अनुपयुक्त होती हैं।
- यह अन्य साधनों की तुलना में खर्चीला भी है। सूचनाओं का प्रेषण टेलीफ़ोन से करने पर काफी व्यय हो जाता है जबकि यही सन्देश डाक द्वारा भेजा जाये तो कम खर्च होता है।
- इसमें प्रेषक को सोचने का अधिक समय नहीं मिलता है जिससे कि सूचनाओं में त्रुटि की संभावना बढ़ जाती है।

II) लिखित सम्प्रेषण (Written Communication): लिखित सम्प्रेषण से आशय उन सूचनाओं से है जो लिख कर भेजी जाती हों। बुलेटिन, हैण्ड बुक, मैगजीन, समाचार पत्र, संगठन पुस्तिकायें, संगठन अनुसूचियाँ, नीति पुस्तिकायें, कार्य विधि पुस्तिकायें आदि इसके उदाहरण हैं।

गुण:

- लिखित प्रेषण की देशों में दोनों पक्षों की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है।
- विस्तृत एवं जटिल सूचनाओं के प्रेषण के लिए यह उपयुक्त है।
- यह साधन कम खर्चीला है क्योंकि डाक द्वारा सन्देश भेजना दूरभाष पर बात करने की अपेक्षा सस्ता होता है।
- सूचनाएं लिखित होने के कारण प्रमाण पत्र का कार्य करती हैं और उनका उपयोग भविष्य सन्दर्भ के लिए किया जा सकता है।
- जब दो पक्षों के बीच अच्छे संबंधों का अभाव हो या परस्पर अविश्वास हो तब लिखित सम्प्रेषण ही एक मात्र साधन रह जाता है।
- गश्ती पत्रों (Circular Letters) के द्वारा अलग-अलग स्थानों पर रहने वाले लोगों को एक ही सूचना भेजी जा सकती है।

दोष:

- प्रत्येक सूचना चाहे छोटी हो या बड़ी, उसे लिखकर भेजने में स्वभावतः बहुत समय लगता है।
- प्रत्येक छोटी सूचना को हमेशा लिखकर भेजना संभव नहीं हो पाता है। फिर यदि लिखित सूचना में कोई बात गलती से छूट जाये तो उसे पुनः लिख कर भेजना संभव नहीं हो पाता है।
- अशिक्षित लोगों के लिए सम्प्रेषण का तरीका कारगर नहीं है।
- इसमें प्रत्येक सूचना को लिखने में समय, धन व श्रम का अपव्यय होता है।
- प्रेषक और प्राप्तकर्ता के मध्य संपर्क का अभाव होने के कारण सूचना के सम्बन्ध में प्रेषक प्राप्तकर्ता की प्रतिक्रिया को जान नहीं पाता है।
- लिखित सूचनाएं अगर किसी अन्य के हाथ में पड़ जाये तो उनकी गोपनीयता चली जाती है।
- लिखित सम्प्रेषण का एक दोष यह भी है कि इससे लालफीताशाही को बढ़ावा मिलता है। जो सूचना लिखकर देनी होती है उसके लिए अनेक औपचारिकताओं का पालन करना पड़ता है। जैसे पहले ड्राफ्ट तैयार करना, अधिकारी से उसे स्वीकृत कराना, टाइपिस्ट से टाइप करवाना तथा डाक द्वारा उसे भेजने की व्यवस्था करना।

संबंधों के आधार पर

I) औपचारिक सम्प्रेषण (Formal Communication): जब प्रेषक और प्राप्तकर्ता के मध्य औपचारिक सम्बन्ध हों तब उनके मध्य सूचनाओं का आदान-प्रदान औपचारिक सम्प्रेषण कहलाता है। इस सम्प्रेषण का मार्ग संगठन के ढांचे में निर्धारित प्रक्रियाओं के अनुसार होता है। यह विशेष पद या स्थिति में रह कर किया गया सम्प्रेषण है। यह व्यक्तियों के बीच न होकर पदों के बीच होने वाला सम्प्रेषण होता है। कौन किससे आदेश और निर्देश प्राप्त करेगा, किस व्यक्ति को समस्या समाधान के लिए किसके पास जाना है आदि का निर्धारण पहले से ही होता है।

गुण:

- सूचनाओं का आदान-प्रदान पूर्व-निर्धारित मार्गों द्वारा होता है।
- सूचनाओं का स्वरूप व सीमायें पूर्व निर्धारित होने के कारण विकृति की संभावना कम हो जाती है।
- इससे विभिन्न पदों के बीच समन्वय आसान हो जाता है।
- सूचनाओं में क्रमबद्धता और निरंतरता बनी रहती है।
- सूचनाओं के लिए उत्तरदायित्वों का निर्धारण सुगम हो जाता है।

दोष

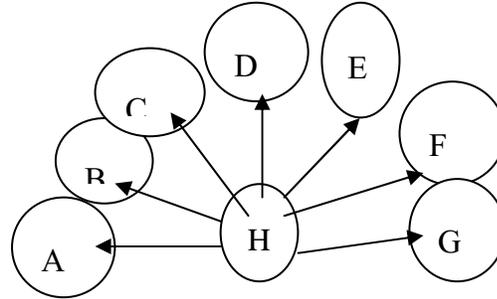
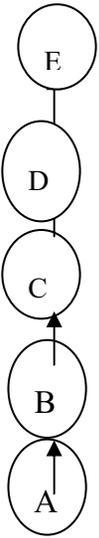
- पूर्व निर्धारित मार्ग होने की वजह से सूचनाओं के सामान्य प्रवाह में बाधा उपस्थित होती है।
- इससे कार्य में देरी हो सकती है।
- विभिन्न स्तरों पर सूचनाओं के विकृत होने की संभावना बढ़ जाती है।
- प्रेषक और प्राप्तकर्ता के बीच स्थिति सम्बन्धी अवरोध (Status Barrier) से सूचनाओं का अर्थ प्रभावित होने की संभावना रहती है।

II) अनौपचारिक सम्प्रेषण (Informal Communication): जब प्रेषक और प्राप्तकर्ता के मध्य अनौपचारिक सम्बन्ध होते हैं तब उनके मध्य सूचनाओं के आदान-प्रदान को अनौपचारिक सम्प्रेषण कहते हैं। इसमें मार्ग निर्धारित नहीं होते हैं बल्कि स्वतः बनते और परिवर्तित होते हैं। इस प्रकार के सम्प्रेषण को जनप्रवाद या ग्रेपवाइन (Grapevine) भी कहते हैं। सामान्यतः जनप्रवाद द्वारा कही सुनी बातों, सुनी-सुनायी सूचनाओं, आपसी चर्चाओं, अनुमाओं, तोड़े-मरोड़े गए तथ्यों, तीखी-चटपटी खबरों, अर्धसत्यों, मिथ्या प्रचारों, गुत्थियों आदि का प्रसारण होता है।

अनौपचारिक सम्प्रेषण के मार्गों को निम्न चार भागों में विभक्त किया जा सकता है।

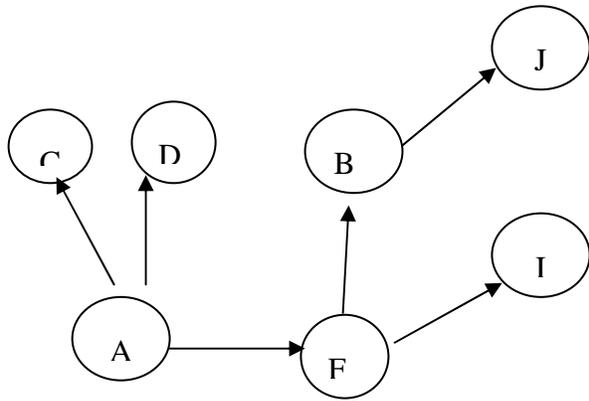
1. एकल लड़ (Single Strand)
2. गपशप (Gossip)
3. गुच्छा (Cluster)

4. संभाव्यता (Probability)

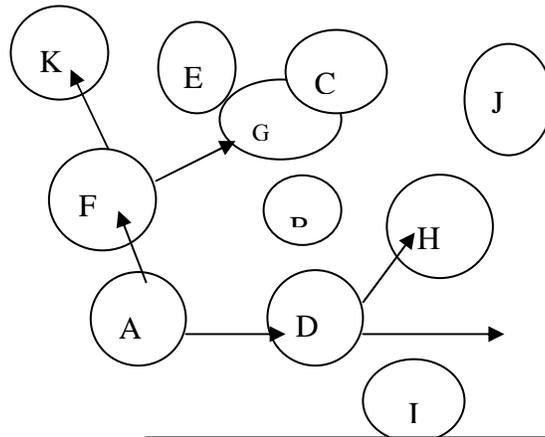


चित्र 2 गपशप (Gossip)

चित्र 1 एकल लड़ (Single Strand)



चित्र 3 गुच्छा (Cluster)



चित्र 4 संभाव्यता (Probability)

चित्र संख्या 1 के एकल लड़ में प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे को सूचनाओं का आदान-प्रदान करते है। अतः इसे अनौपचारिक सम्प्रेषण मार्ग की एक लड़ी के रूप में संबोधित करते हैं।

चित्र संख्या 2 के गपशप में एक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को सूचनाएं देता है अर्थात् H व्यक्ति A, B, C, D, E, F, G आदि को गैर चयनित आधार पर सूचनाएं देता है।

चित्र संख्या 3 के गुच्छा में एक व्यक्ति अन्य उसी व्यक्ति के साथ सूचनाओं का आदान-प्रदान करता है जिसमें उसका विश्वास होता है। A, C, D एवं F के साथ सम्प्रेषण करता है। F अपने विश्वास के व्यक्तियों अर्थात् B एवं I के साथ तथा B अपने विश्वास पात्र J के साथ सम्प्रेषण करता है।

चित्र संख्या 4 के संभाव्यता (Probability) में व्यक्ति संभाव्यता के सिद्धांत के आधार पर यदा-कदा ही एक दूसरे को सूचनायें प्रदान करता है। चित्र 4 के अनुसार A, D एवं F को ही सूचनाएं प्रदान करता है और B, C और E को छोड़ देता है। इसी प्रकार F भी G, D एवं H के साथ ही सम्प्रेषण करता है और I एवं J के साथ नहीं।

गुण:

- इसमें सूचनाएं स्वतंत्रतापूर्वक भेजी जाती हैं। इसमें पद और स्थिति बाधक नहीं होती है।
- औपचारिक संबंधों की आवश्यकता नहीं होती है।
- तत्काल सूचनाएं प्रेषित होने के कारण समय व्यर्थ नहीं होता है।
- यह प्रबंधकीय निर्णयों और कार्यों में सहायक होता है।
- यह प्रबंधकीय बाधाओं को दूर करने में सक्षम होता है।
- यह विचारों की स्वंत्र अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करता है।

दोष:

- इसमें सम्प्रेषण का श्रोत ढूँढना कठिन होता है। अतः उत्तरदायित्वों का निर्धारण कठिन होता है।
- इसमें विश्वसनीयता की सीमा निर्धारित करना कठिन होता है।
- ये सन्देश अर्धसत्य या विकृत तथ्यों के रूप में हो सकते हैं।
- इन पर नियंत्रण रखना और इनके आधार पर निर्णय लेना कठिन होता है।
- ये प्रबंधकों के लिए भ्रम और कठिनाई उत्पन्न करके प्रबंधकीय कार्य कुशलता पर विपरीत प्रभाव डालते हैं।

संदेशों के प्रवाह के आधार पर :

I) अधोगामी सम्प्रेषण (Downward Communication): जब सूचनाओं का प्रवाह उपर से नीचे की ओर होता है अर्थात् प्रबंधक से अधीनस्थों की ओर होता है तब अधोगामी सम्प्रेषण कहा जाता है। इसमें प्रायः निम्नलिखित प्रकार की सूचनायें होती हैं:

- कार्य के सम्बन्ध में आदेश, निर्देश व दायित्व
- नीतियों, नियमों, कार्य पद्धतियों, लक्ष्यों आदि के बारे में सूचनाएं
- कार्य निष्पादन के बारे में प्रतिपुष्टि
- संस्था के भावी कार्यक्रमों के बारे में सूचनायें
- प्रशंसा, आलोचनाएँ
- अधीनस्थों से कार्य सम्बन्धी प्रश्न

II) उर्ध्वगामी सम्प्रेषण (Upward Communication): जब सूचनाओं का प्रवाह उच्च पदों से निम्न पदों की ओर होता है अर्थात् जब सूचनायें अधीनस्थों से प्रबंधक की ओर जाती हैं तब उर्ध्वगामी सम्प्रेषण होता है। इसमें प्रायः निम्न प्रकार की सूचनायें होती हैं:

- अधीनस्थों के कार्य प्रतिवेदन
- अधीनस्थों की कार्य समस्यायें
- आदेशों-निर्देशों पर आपत्तियाँ
- अधीनस्थों के विचार, मत एवं सुझाव
- अधीनस्थों की व्यक्तिगत समस्यायें
- कार्य सम्बन्धी कठिनाईयाँ व शिकायतें
- अधीनस्थों की प्रतिक्रियायें

III) समतल सम्प्रेषण (Horizontal Communication): जब सामान स्तर के अधिकारियों व कर्मचारियों के सूचनाओं का आदान प्रदान होता है तो इसे समतल सम्प्रेषण कहते हैं। किसी में परियोजना दल, कार्य बल, आव्यूह या समितिओं का गठन इस प्रकार के सम्प्रेषण के रूप होते हैं। यह सम्प्रेषण समन्वयात्मक प्रकृति का होता है तथा कार्यों के विशिष्टीकरण के कारण इनकी आवश्यकता होती है। यह सम्प्रेषण लिखित या मौखिक दोनों ही प्रकारों का हो सकता है। इसमें निम्न प्रकार का सम्प्रेषण शामिल रहता है:

- एक की कार्य समूह या विभाग में सामान स्तर के कर्मचारियों के बीच सम्प्रेषण।
- सामान संस्थागत स्तर पर कार्यशील विभागों के मध्य अथवा उसके अंतर्गत समतलीय सम्प्रेषण।

अभ्यास प्रश्न 1 ((दिये गये कथनों में से सत्य/असत्य को बताईये।)

- 1) सम्प्रेषण में सिर्फ संवेगों का आदान-प्रदान होता है।
- 2) मौखिक सम्प्रेषण में टेलीफोन का उपयोग किया जाता है।
- 3) लिखित सम्प्रेषण में तथ्यों को भावी सन्दर्भ के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।
- 4) अनौपचारिक सम्प्रेषण को ग्रेपवाइन कहा जाता है।
- 5) अधोगामी सम्प्रेषण में प्रबंधक अपने अधीनस्थों से आदेश प्राप्त करते हैं।
- 6) उर्ध्वगामी सम्प्रेषण में अधीनस्थ अपने प्रबंधक को सूचनाएं भेजते हैं।
- 7) समतल सम्प्रेषण दो सामान स्तरों के बीच होता है।

14.4 सारांश

इस इकाई के अंतर्गत हमने यह जाना कि सम्प्रेषण समस्त प्रबंधकीय कार्यों की आधारशिला है। यह वह प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति अपने सूचनाओं, विचारों, भावनाओं, सम्मतियों आदि का पारस्परिक आदान-प्रदान करते हैं। प्रबंधन के सभी कार्यों यथा नियोजन, संगठन, नेतृत्व, समन्वय, नियंत्रण आदि में सम्प्रेषण की भूमिका होती है। इसके अतिरिक्त मनोबल का निर्माण, बाहरी पक्षों से सम्बन्ध स्थापित करना, पूर्वानुमान करना, मानवीय सम्बन्ध स्थापित करना: ये सभी कार्य सम्प्रेषण के आधार पर ही किये जाते हैं। सम्प्रेषण के कई रूप होते हैं। माध्यम के आधार पर : मौखिक और लिखित सम्प्रेषण, संबंधों के आधार पर: औपचारिक और अनौपचारिक सम्प्रेषण, संदेशों के प्रवाह के आधार पर: अधोगामी, उर्ध्वगामी और समतल सम्प्रेषण।

14.5 शब्दवाली

1. **सम्प्रेषण:** दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच तथ्यों, विचारों, अनुमानों या संवेगों के आदान-प्रदान।
2. **मौखिक सम्प्रेषण:** सूचना/ संवाद का मुख से उच्चारण करके भेजना।
3. **लिखित सम्प्रेषण:** सूचना/ संवाद को लिखित रूप में भेजना।
4. **औपचारिक सम्प्रेषण:** प्रेषक एवं प्राप्तकर्ता के औपचारिक संबंधों पर आधारित सम्प्रेषण।
5. **अनौपचारिक सम्प्रेषण:** प्रेषक एवं प्राप्तकर्ता के अनौपचारिक संबंधों पर आधारित सम्प्रेषण।
6. **अधोगामी सम्प्रेषण:** ऊपर से नीचे की ओर सूचनाओं का प्रवाह।

-
7. उर्ध्वगामी सम्प्रेषण: नीचे से ऊपर की ओर सूचनाओं का प्रवाह ।
 8. समतल सम्प्रेषण: समान स्तर पर सूचनाओं का प्रवाह ।
-

14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- 1) असत्य 2) सत्य 3) सत्य 4) सत्य 5) असत्य 6) सत्य 7) सत्य
-

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

- Prasad, L.M. *Organisational Behaviour*. S Chand & Sons, New Delhi, 2005.
 - Sampat, K. *Introduction to Educational Technology*. Sterling Publishers Private Limited, NewDelhi, 2001
 - Saxena, S.C. *Prabandh ke Siddhant*. Sahitya Bhawan, Agra, 2009.
 - Sharma, G.D & G.C. Khurana, *Prabandh Ke Siddhant*. Ramesh Book Depot, Jaipur, 2007
 - Sharma, R.A. *Technological Foundations of Education*. Surya Publication, Merrut, 2003.
 - Sudha, G.S. *Principles & Practice of Management*. Malik & Company, Jaipur, 2011.
 - Tyagi, A. *Organizational Behaviour*. Excel Books, NewDelhi, 2001.
-

14.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. सम्प्रेषण की परिभाषा दीजिये । इसके मुख्य तत्वों पर भी प्रकाश डालिए ।
2. सम्प्रेषण के सिद्धांत कौन-कौन से हैं ? उल्लेख कीजिये ।
3. प्रभावशाली प्रबंधन में सम्प्रेषण के महत्व की समीक्षा कीजिये ।
4. सम्प्रेषण के विभिन्न प्रकारों को समझाइये ।
5. सम्प्रेषण के विभिन्न प्रकारों के गुण एवं दोषों का उल्लेख करें ।

इकाई 15: सम्प्रेषण में आने वाली बाधाएँ तथा शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को कम करने के उपाय

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण

15.4 शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाएँ

15.5 शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को दूर करने के उपाय

15.6 सारांश

15.7 शब्दावली

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.09 संदर्भ ग्रन्थ सूची

15.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

शैक्षिक प्रशासन शैक्षिक संस्थाओं का प्रबंध जिसमें अध्यापन तथा अधिगम को ध्यान में रखा जाता है। चूँकि यह व्यवहारिक क्षेत्र है इसमें अन्य क्षेत्रों के प्रबंध जैसे सार्वजनिक प्रशासन, चिकित्सा प्रशासन, वाणिज्य प्रशासन आदि के कुछ समान तत्व पाये जाते हैं। शैक्षिक प्रशासन के विषयक्षेत्र के अंतर्गत विद्यार्थी, कर्मचारी, वित्त, पाठ्यक्रम, भौतिक सुविधाएं तथा जनसंबंध आते हैं। समाज द्वारा निर्धारित शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये अध्ययन एवं अध्यापन का वातावरण तैयार करने में शैक्षिक प्रशासक को विभिन्न व्यक्तियों, वस्तुओं तथा संसाधनों के बीच समन्वय, व्यवस्थापन, तथा एकीकरण आदि कार्य करने होते हैं। इन समस्त कार्यों की सफलता प्रभावशाली सम्प्रेषण पर निर्भर करती है। शैक्षिक प्रशासन के अंतर्गत भी सम्प्रेषण की सामान्य बाधाएँ प्रभाव डालती हैं। प्रस्तुत इकाई में शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को दूर करने के उपाय पर चर्चा की जाएगी।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप:

- सम्प्रेषण में आने वाली विभिन्न प्रकार की बाधाओं को बता सकेंगे।

- शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण को स्पष्ट कर सकेंगे।
- शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को बता सकेंगे।
- शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को कम करने के उपाय को बता सकेंगे।
- सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं का वर्गीकरण कर सकेंगे।

15.3 शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण

सर्वप्रथम हम यह समझने का प्रयास करेंगे की शैक्षिक प्रशासन क्या है ? स्टीफन जे नेजविक के अनुसार “शैक्षिक प्रशासन संगठनात्मक कार्यों का एक ऐसा विशिष्ट समूह है जिसका मुख्य उद्देश्य युक्तिसंगत शैक्षिक सेवाओं का उचित एवं प्रभावशाली सम्पादन एवं नियोजन, निर्णयन एवं नेतृत्व संबंधी व्यवहार के द्वारा वैधानिक नीतियों का कार्यान्वयन करना है तथा जो संस्था को पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए बाध्य करता है, जो संसाधनों का अनुकूलन, आवंटन एवं बुद्धिमतापूर्ण देखभाल करने का प्रावधान करता है ताकि उनका अधिकतम उत्पादक प्रयोग हो सके, जो समनूत सामाजिक तंत्र एवं वांछित संगठनात्मक परिवेश उत्पन्न करने के लिए व्यवसायिक एवं अन्य कार्मिक वर्ग का समन्वय करता है तथा विद्यार्थियों एवं समाज की भविष्य में उत्पन्न होने वाली आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए आवश्यक परिवर्तनों के निश्चयीकरण के लिए सुविधा प्रदान करता है।”

रसैल टी ग्रेग ने प्रशासन को ऐसी प्रक्रिया माना है जिसके सात कार्य हैं- विनिश्चयीकरण, नियोजन, व्यवस्थापन, सम्प्रेषण, प्रभावीकरण(Influencing), समन्वयन एवं मूलीकरण (Evaluating)। ये सात कार्य प्रशासनिक प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों के रूप में लिए जाने चाहिए परंतु साथ में यह भी याद रखना आवश्यक है कि ये एकाँकी क्रियाएँ नहीं हैं। वे परस्पर व्याप्त रहते हैं एवं सदैव संयुक्त रूप से परिणाम देते हैं।

आइए अब हम विभिन्न कार्यों को अलग से समझने का प्रयास करें-

उद्देश्यीकरण (Purposing)- शैक्षिक प्रशासन एक सेवा कार्य है अतः प्रत्येक प्रशासनिक क्रिया शिक्षा के मुख्य एवं महान उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में होनी चाहिए। ये लक्ष्य समाज द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा के उद्देश्यों को भिन्न रूप में देखता है लेकिन प्रशासन का कार्य उनको सभी के लिए समान बनाना है। शैक्षिक प्रक्रिया तभी सफल हो सकती है जबकि क्रिया में संलग्न सभी व्यक्ति इन उद्देश्यों के साथ अपना आत्मिकरण कर लें। सम्प्रेषण आत्मिकरण कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

नियोजन(Planning)-

उद्देश्यों को कार्यरूप में परिवर्तित करने के लिए नियोजन की आवश्यकता होती है। नियोजन अनेक विकल्पों में से एक अच्छी कार्य-प्रणाली का चुनाव करना है। नियोजन की उपयोगिता इसलिए है क्योंकि यह इस बात का

स्पष्टीकरण करता है कि क्या किया जाना है? अच्छे प्रशासक अन्य सहयोगियों के साथ मिलकर योजना बनाते हैं क्योंकि योजना में उनकी सहभागिता उनको तादात्म्य स्थापित करने एवं सफल कार्य की ओर अग्रसर करती है। एक अच्छा प्रशासक बिना सामूहिक निर्णयों एवं कार्यकलापों को नियंत्रित किए सामूहिक नियोजन को प्रेरित करता है। सहयोगियों के साथ मिलकर योजना बनाने के लिए सम्प्रेषण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

व्यवस्थापन(Organizing)-

व्यवस्थापन में तंत्र की संरचना एवं प्रक्रिया दोनों शामिल हैं। संरचना के रूप में यह सम्बन्धों का एक स्वरूप है। व्यवस्थापन से तात्पर्य व्यक्तियों, स्थानों एवं वस्तुओं को इस प्रकार से व्यवस्थित करना तथा उनको कर्तव्य एवं दायित्व सौंपना ताकि स्वतंत्र रूप से कार्य किया जा सके। व्यवस्थापन के अंतर्गत ही व्यक्तियों को प्रयोग में आने वाले साधनों एवं संसाधनों से परिचित कराया जाता है। व्यवस्थापन का कार्य व्यक्तियों के मध्य एवं कार्यों के मध्य सम्बन्धों को दिशा प्रदान करना एवं नियंत्रित करना है। उपरोक्त कार्यों का सम्पादन सम्प्रेषण प्रक्रिया के बिना नहीं हो सकता है।

परिचालन(Operating)-

योजनाओं को व्यावहारिक एवं कार्य रूप में परिणत करना ही परिचालन है। इस महत्वपूर्ण कार्य को संपादित करने में प्रशासन को अन्य कार्यों के साथ-साथ कुछ कार्य जैसे- उत्तरदायित्व-निदेशन, समन्वयन एवं नियंत्रण करने होते हैं।

(अ) निदेशन(Direction)-निदेशन परिचालन का ही एक अंग है। यह कार्य के प्रारम्भ के साथ ही प्रारम्भ होता है। यह बताता है कि क्या किया जाना है। निदेशन केवल मार्गदर्शन नहीं है यदि कार्य अपूर्ण होता है तो कार्य को पूरा करने के विवश करना भी है। अच्छे परिणामों के लिए आवश्यक है कि प्रशासक अपने सहकर्मियों एवं अधीनस्थ कर्मचारियों की विशेषताओं का सम्मान करे तथा उनकी गरिमा को ध्यान में रखकर आदेश प्रदान करे। निदेशन एक प्रकार से सम्प्रेषण ही है जिसमें प्रशासक अपने विचार संबन्धित व्यक्तियों तक पहुंचता है।

(ब)समन्वयन(coordination)-

समन्वयन से तात्पर्य सभी वस्तुओं, क्रियाओं एवं गतिविधियों को जोड़ कर रखने वाली प्रक्रिया है। इनको इस प्रकार जोड़ने से कार्य अधिक प्रभावशाली तरीके से होता है। समन्वय प्रशासन के सभी अंगों एवं सभी क्षेत्रों जैसे- नियोजन, व्यवस्थापन में है। समन्वय कार्मिक वर्ग, विद्यार्थियों, अभिभावक एवं पाठ्यक्रम में विभिन्न साधनों जैसे- नियम, परिनियम तथा प्रथा के द्वारा किया जाता है। समन्वयन का प्रयोग प्रारम्भ में गतिरोध को रोकने के लिए एवं प्रक्रिया के दौरान विरोधों को दूर करने के लिए किया जाता है। उपरोक्त बातों से आप आसानी से समझ सकते हैं कि सम्प्रेषण की समन्वयन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है।

(स) नियंत्रण(Control)-

नियंत्रण कर्मचारियों को उनके कार्य के प्रति उत्तरदायी बनाए रखने के लिये सत्ता का प्रयोग है। नियंत्रण किसी क्रिया को दिशा प्रदान करता है, उसका निदेशन करती है एवं उसका मूल्यांकन भी करती है। नियंत्रण शैक्षिक प्रक्रिया के सभी क्षेत्रों जैसे उद्देश्य, अध्यापक, विद्यार्थी, अनुदेशन, सामग्री, वित्त में आवश्यक होता है। नियंत्रण परिचालन का अभिन्न अंग है। नियंत्रण में सत्ता एवं युक्तियों दोनों का प्रयोग किया जाता है। शैक्षिक प्रक्रिया से जुड़े सभी व्यक्तियों पर वांछनीय नियंत्रण बिना सम्प्रेषण के संभव नहीं है। सम्प्रेषण प्रक्रिया द्वारा ही इन व्यक्तियों तक शैक्षिक प्रशासको के निर्देश, विचार पहुँचते हैं।

मूल्यांकन (Evaluation)

प्रक्रिया के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति को प्रोत्साहित करने के लिये मूल्यांकन किया जाता है। प्रशासनिक प्रक्रिया के कमियों को ढूँढना तथा प्रक्रिया में परिवर्तन कर इन कमियों को दूर करना है। अच्छे प्रशासक को ये चाहिए की ऐसा वातावरण तैयार करे जिसमें सभी कर्मचारी स्वपरिक्षण एवं स्वमूल्यांकन के लिये प्रोत्साहित हो सके तथा संस्था के विकास में अपने व्यक्तिगत योगदान की गुणवत्ता एवं मात्रा का मूल्यांकन प्रशासक को मूल्यांकन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए की मूल्यांकन का कर्मचारियों पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े, मूल्यांकन व्यक्ति एवं समूह की उन्नति के लिये हो तथा उनको मनोवैज्ञानिक सुरक्षा मिल सके। मूल्यांकन हेतु विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं जो कि व्यक्ति या समूह के कार्यों की उपलब्धि/ परिणाम के बारे में होती हैं। उन परिणामों को सर्वाधिक वांछनीय कसौटी से तुलना करके उद्देश्यों की प्राप्ति में संस्था की सहायता करना चाहिए। मूल्यांकन के उपरोक्त सभी कार्य सम्प्रेषण के बिना असंभव हैं।

15.4 शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाएँ:

सम्प्रेषण प्रक्रिया में कभी-कभी बाधाएँ आ जाने से सम्प्रेषण प्रक्रिया प्रभावित हो जाती है जिसके फलस्वरूप प्रेषित संदेश या तो गलत हो जाता है या अपूर्ण रूप से ग्रहण किया जाता है। सम्प्रेषण में आने वाली बाधाएँ निम्न प्रकार की होती हैं- (अ) भौतिक बाधाएँ (ब) भाषा की बाधाएँ (स) मनोवैज्ञानिक बाधाएँ (द) पृष्ठभूमि की बाधाएँ इसके अतिरिक्त हम सम्प्रेषण की बाधाओं को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं जो इस प्रकार हैं।

- (1) सम्प्रेषण प्रेषणकर्ता से संबन्धित बाधाएँ।
- (2) संदेश प्रसारण संबंधी बाधाएँ।
- (3) सम्प्रेषण प्राप्तकर्ता से संबन्धित बाधाएँ।

भौतिक बाधाएँ (Physical Barriers):

सर्वप्रथम हम सम्प्रेषण में आने वाली भौतिक बाधाओं की चर्चा करेंगे। भौतिक बाधाओं के अंतर्गत शोर, अदृश्यता, वातावरण एवं भौतिक असुविधाएँ, बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य, ध्यान का केन्द्रित न हो पाना प्रमुख हैं। शोर या अत्यधिक आवाज के कारण कभी-कभी संदेश सही रूप में सुनाई नहीं दे पाता और गलत तरह से संदेश ग्रहण कर लिया जाता है। जब संदेश के माध्यम के रूप में चित्रों, आकृतियों, संकेतों, मुख-

मुद्राओं एवं चक्षु-संपर्क का उपयोग किया जाता है तब कभी-कभी प्रकाश के अभाव या किसी अन्य कारण से इस संदेश को देखकर समझने में परेशानी होती है। सम्प्रेषण की प्रक्रिया में संदेश भेजने वाले तथा संदेश ग्रहणकर्ता का अच्छा स्वास्थ्य बहुत ही आवश्यक है। यदि संदेश भेजने वाले का स्वास्थ्य खराब होगा तो वह न तो संदेश अच्छे से तैयार कर पाएगा और न ही उचित तरीके से संदेश भेज पाएगा। यदि संदेश ग्रहण करने वाले का स्वास्थ्य खराब होगा तो वह संदेश उचित तरीके से ग्रहण नहीं कर पाएगा। भौतिक असुविधाएं जैसे संदेश तैयार करने, भेजने एवं ग्रहण करने से संबन्धित वस्तुएं/सामग्री गुणवत्तापूर्ण हो।

भाषा की बाधाएँ (Language Barriers):

भाषा के बाधाओं के अंतर्गत अस्पष्ट शब्द, अनावश्यक शब्द, शब्दों को गलत तरीके से बोलना, गलत उच्चारण, अस्पष्ट ग्राफिक तथा संकेत आते हैं। अस्पष्ट शब्दों, अनावश्यक शब्दों, शब्दों को गलत तरीके से बोलने, गलत उच्चारण, अस्पष्ट ग्राफिक तथा संकेत के कारण संदेश अपना वांछित प्रभाव डालने में सफल नहीं हो पाता है। संदेश भेजने वाले को संदेश को तैयार करते समय शब्दों का चयन एवं उनका उच्चारण करते समय सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि एक शब्द में कई बार अनेक अर्थ होते हैं। ऐसे शब्दों का इस्तेमाल करते समय उनका संदर्भ स्पष्ट करना चाहिए। संदर्भ स्पष्ट न होने की वजह से संदेश ग्रहण करने में अनेक भ्रांतियाँ संभव हैं।

मनोवैज्ञानिक बाधाएँ (Psychological Barriers):

यदि सन्देश भेजने वाला या सन्देश ग्रहण करने वाला किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित है तो सन्देश की वस्तुनिष्ठता प्रभावित होती है। सन्देश भेजने वाले तथा संदेशग्रहणकर्ता की सम्प्रेषण प्रक्रिया में यदि रुचि नहीं होगी तथा वे ध्यान नहीं देंगे तो सम्प्रेषण प्रक्रिया पूरी नहीं होगी इसके साथ-2 गलत प्रत्यक्षीकरण, इसके अलावा जरूरत से ज्यादा चिन्ताएँ भी सम्प्रेषण की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करती हैं।

पृष्ठभूमि की बाधाएँ (Background Barriers) :

सन्देश स्रोत एवं सन्देश ग्रहणकर्ता पूर्व अनुभव के आधार पर सन्देश को समझने का प्रयास करते हैं ये पूर्व अनुभव हमारी पृष्ठभूमि से संबन्धित होते हैं, पूर्व पृष्ठभूमि से तात्पर्य पूर्व अधिगम, संस्कृति तथा पूर्व कार्यस्थिति तथा पूर्व कार्य का वातावरण है। पृष्ठभूमि के अनुभव सन्देश की एंकोडिंग या डिक्डोडिंग करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पृष्ठभूमि के पूर्व अनुभव, आवश्यकताएँ तथा मूल्यों के संदर्भ प्राप्त सन्देश को समझने में कभी तो बहुत सहायक होते हैं तथा कभी-2 सन्देश का अर्थ समझने में बाधा के रूप में अपनी भूमिका निभाते हैं।

15.5 शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को दूर करने के उपाय

शैक्षिक प्रशासन के सभी कार्य तभी सफलतापूर्वक संचालित हो सकते हैं जब शैक्षिक प्रशासन से जुड़े व्यक्तियों के प्रभावशाली सम्प्रेषण हो। एक प्रभावशाली सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए -

- (1) शैक्षिक प्रशासक को उत्तरदायित्व निदेशन के दौरान सन्देश /निर्देश बहुत ही अच्छी प्रकार से तैयार करके देना चाहिये।
- (2) विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को भी पूर्वाग्रह से रहित होकर स्पष्ट भाषा एवं उच्चारण के साथ शिक्षण करना चाहिये।
- (3) शैक्षिक प्रशासक को समूह की राय/प्रतिक्रिया लेते समय गंभीरतापूर्वक सभी के विचारों को सुनना चाहिये तभी किसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए।
- (4) शैक्षिक प्रशासक संस्था के हित में कर्मचारियों का मूल्यांकन करता है। उसे संस्था से जुड़े व्यक्तियों के समक्ष मूल्यांकन के उद्देश्यों को उचित प्रकार से स्पष्ट करना चाहिये।
- (5) शैक्षिक प्रशासन की सबसे बड़ी बाधा प्रशासक एवं अधीनस्थ कर्मचारियों के बीच संवादहीनता की स्थिति बनी रहना। यह सम्प्रेषण में बड़ी बाधा है। प्रशासक को समय-समय पर व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से कर्मचारियों से औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों रूप से मिलते रहना चाहिए।
- (6) शैक्षिक प्रशासक को सरल, सुगम, सुबोध तथा स्पष्ट भाषा का प्रयोग करना चाहिए। किस शब्द का प्रयोग कहा तथा किस लिए किया गया है यह संदर्भ स्पष्ट होना चाहिए।
- (7) संदेश को लिखते समय विशेष सावधानी बरतना चाहिए उसे इस प्रकार लिखा जाना चाहिए कि संदेश ग्रहण करने वाला उसे आसानी से समझ सके। संदेश की ईकोडिंग उचित तरीके से की जानी चाहिए। अर्थात् प्रशासक द्वारा तैयार कराया गया कोई भी निर्देश भाषायी दृष्टि से सही होना चाहिए।
- (8) संदेश में यदि किसी बात पर विशेष बल देने की आवश्यकता है तो उसकी पुनरावृत्ति एक निश्चित सीमा तक की जा सकती है।
- (9) संदेश के स्वरूप या प्रकृति के अनुसार ही उचित चैनल या माध्यम का चुनाव किया जाना चाहिए तथा यदि आवश्यक हो तो एक साथ अनेक चैनल का प्रयोग क्रमानुसार भी किया जा सकता है।
- (10) प्रतिपुष्टि(Feedback) अवश्य प्रदान की जानी चाहिए तथा प्रतिपुष्टि प्रदान करने में विलंब नहीं किया जाना चाहिए ताकि पता चल सके कि संदेश अपना सही अर्थ प्रेषित कर सका है कि नहीं।
- (11) सम्प्रेषण प्रक्रिया में देरी करने वाले तत्वों पर नजर रखी जानी चाहिए।

- (12) संदेश स्रोत /संदेश भेजने वाले तथा संदेश ग्रहणकर्ता ऐसा होना चाहिए जिसका उच्चारण सुस्पष्ट हो तथा उसके संदेश में भाषायी कमियाँ कम से कम हो अर्थात् ऐसे शिक्षक, कर्मचारी तथा शैक्षिक प्रशासक शैक्षिक संस्था में नियुक्त किये जाने चाहिए जिनमें भाषायी योग्यता हो।
- (13) संदेश ग्रहण कर्ता को सुनने की अच्छी आदत डालनी चाहिए इसके लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।
- (अ) जो व्यक्ति संदेश लाया है उसे देख कर अथवा संदेश का लिफाफा देख कर संदेश के बारे में अनुमान लगाना गलत है।
- (ब) संदेश सुन कर अथवा पढ़कर विचारों की अपेक्षा संदेश में निहित तथ्यों की ओर ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए।
- (स) यदि कक्षा में कोई बात स्पष्ट न हुई हो तो तुरंत पूछने के अपेक्षा कक्षा के अंत में अपनी समस्या रखना चाहिए जिससे शिक्षक को प्रारम्भ से अंत तक बिना किसी हस्तक्षेप के सुना जा सके।
- (द) सुनते समय अन्य दृश्यों अथवा शोर आदि पर ध्यान नहीं देना चाहिए।
- (य) सुनते समय कहने वाले की बात, उसकी मुखमुद्रा, उसकी आवाज़, उसकी कहने की गति आदि पर भी ध्यान देना चाहिए क्योंकि अच्छे प्रकार सुनने वाले व्यक्ति हमेशा अच्छा सम्प्रेषण करने में समर्थ होते हैं।
- (र) यदि सुनते समय आस-पास बहुत शोर हो रहा हो तो उस शोर को कम करवाने हेतु प्रयास किया जाना चाहिए।

15.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के प्रारम्भ में आपने अध्ययन किया कि शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण की प्रक्रिया किसप्रकार समाहित है। शैक्षिक प्रशासन के विभिन्न कार्यों- उद्देश्यीकरण, नियोजन, व्यवस्थापन, परिचालन तथा मूल्यांकन में सम्प्रेषण किसप्रकार अपनी भूमिका अदा करता है यह आपने विस्तृत रूप से समझा। उद्देश्यीकरण के अंतर्गत संस्था के कर्मचारियों को उद्देश्यों का आत्मिकरण करने में सम्प्रेषण की भूमिका है। उद्देश्यों को कार्य रूप में परिवर्तित करने के लिये एक अच्छी कार्यप्रणाली का चुनाव करना नियोजन है तथा कर्मचारियों को उनके कर्तव्य एवं दायित्व सौपना साथ ही साथ कार्य में संलग्न सभी कर्मचारियों की क्रियाओं तथा उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये प्रयोग में आने वाले साधनों का समन्वयन तथा एकीकरण करना व्यवस्थापन है। सम्प्रेषण नियोजन एवं व्यवस्थापन के लिये भी आवश्यक है। योजनाओं को व्यवहारिक एवं कार्यरूप में परिणित करना परिचालन है। इस हेतु तीन महत्वपूर्ण कार्य निदेशन, समन्वयन और नियंत्रण पूरे करने होते हैं। मूल्यांकन का उद्देश्य प्रशासनिक प्रक्रिया की कमियों को ढुंढना एवं सुधार हेतु सुझाव देना है। परिचालन एवं मूल्यांकन कार्य बिना सम्प्रेषण के असंभव हैं। इस इकाई के मध्य में आपने सम्प्रेषण की बाधाओं के बारे में अध्ययन किया।

सम्प्रेषण में मुख्य बाधाएँ भौतिक, भाषा सम्बन्धी, मनोवैज्ञानिक एवं पृष्ठ-भूमि सम्बन्धी हैं। शोर, अदृश्यता, वातावरण, खराब स्वास्थ्य भौतिक बाधाएँ हैं। अस्पष्ट शब्द, अनावश्यक शब्द, गलत उच्चारण, अस्पष्ट संकेत भाषा सम्बन्धी बाधाएँ हैं। अरुचि, गलत प्रत्यक्षीकरण, जरूरत से अधिक चिन्ताएँ मनोवैज्ञानिक बाधाएँ हैं। पूर्व अधिगम, पूर्व कार्य का वातावरण पृष्ठभूमि सम्बन्धी बाधाएँ हैं। शैक्षिक प्रशासन में उपरोक्त बाधा को दूर करने के लिये कुछ सुझावों का अध्ययन किया जैसे सरल, सुगम, सुबोध भाषा का प्रयोग करना चाहिए, संदेश की ईकोडीन उचित हो सही माध्यम का चुनाव हो, प्रतिपुष्टि की व्यवस्था उचित समय पर हो तथा कर्मचारियों में सुनने की अच्छी आदत डाली जानी चाहिये। शैक्षिक प्रशासक को सरल, सुगम, सुबोध तथा स्पष्ट भाषा का प्रयोग करना चाहिए। किस शब्द का प्रयोग कहा तथा किस लिए किया गया है यह संदर्भ स्पष्ट होना चाहिए।

15.7 शब्दावली

उद्देश्यीकरण- शैक्षिक प्रशासक द्वारा समाज द्वारा पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को स्वीकृति प्रदान करवाना, उनकी प्राप्ति हेतु साधनों को निर्धारित करने में सभी कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त करना उद्देश्यीकरण है।

नियोजन- उद्देश्यों को कार्य रूप में परिवर्तित करने के लिए अनेक विकल्पों में से एक अच्छी कार्य-प्रणाली का चुनाव करना ही नियोजन है।

व्यवस्थापन- व्यवस्थापन व्यक्तियों, वस्तुओं एवं स्थानों को इस प्रकार से समन्वित एवं एकीकृत करना ताकि वांछित उद्देश्यों की दिशा में स्वतंत्र प्रयास किए जा सकें। इसमें संबन्धित व्यक्तियों को कर्तव्य एवं दायित्व सौंपा जाता है।

परिचालन- परिचालन का तात्पर्य योजनाओं को व्यावहारिक एवं कार्य रूप में परिणित करना है। परिचालन के अंतर्गत निदेशन, समन्वयन एवं नियंत्रण होता है।

निदेशन – शैक्षिक संस्था में कर्मचारियों एवं व्यक्तियों को यह बताया जाना कि क्या किया जाना है? निदेशन है।

समन्वयन- समन्वयन सभी वस्तुओं, गतिविधियों को जोड़ कर रखने की प्रक्रिया जिससे कि वे अधिक प्रभावशाली ढंग से कार्य कर सकें।

मूल्यांकन- प्रशासनिक प्रक्रिया की कमियों का पता लगाकर उनको दूर करने के लिए सुझाव प्रदान करना मूल्यांकन है। मूल्यांकन व्यक्ति व समूह की उन्नति के लिए किया जाता है।

15.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुलश्रेष्ठ, एस. पी. (2009), शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
2. माथुर, एस. एस. (1996), शैक्षिक तकनीकी, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
3. शर्मा, आर. ए. (2010), शिक्षा तकनीकी, लायल बुक डिपो, मेरठ।

4. सिंह, आर. पी.(2010), शैक्षिक प्रबंधन एवं विद्यालय संगठन, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।
5. सुखिया, एस. पी.(2012),विद्यालय प्रशासन संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मंदिर आगरा ।
6. ओड़,एल.के.(संपादक)(2008), शैक्षिक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर ।
7. भटनागर, आर. पी. एवं अग्रवाल,विद्या(1998), शैक्षिक प्रशासन, लायल बुक डिपो, मेरठ ।
8. वर्मा, जे. पी.(2007), शैक्षिक प्रबंधन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर ।
9. सिंह, आर. पी.(2010), शैक्षिक प्रबंधन एवं विद्यालय संगठन, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।
10. शर्मा, प्रतिष्ठा(2009), शैक्षिक प्रबंध एवं विद्यालय संगठन, साहित्य प्रकाशन, आगरा
11. Mukherji, S.N. (1970). *Administration of Education, Planning and Finance*. Baroda: Acharya Book Depot.
12. Mukherji, L. (1970). *Problems of Administration of Education in India*, Lucknow: Lucknow Publishing House.
13. Shukla, P.D. (1983). *Administration of Education in India*, New Delhi: Vikas Publication House.
14. Agrawal, J. C. (2010). *Educational Technology & Management*. Agra: Shree Vinod Pustak Mandir Acharya Book Depot.
15. Sampath, K., Panneerselvam, A. & Santhanam, S. (2007). *Introduction to Educational Technology*. New Delhi: Sterling Publishers Private Ltd.
16. Mohanty, S.B. (1986). *Educational Technology*. New Delhi: kalyani Publishers.
17. Mohanty, J. (1992). *Educational Technology*. New Delhi: Deep & deep Publishers.
18. Kumar, K.L. (1996). *Educational Technology*. New Delhi: New Age Publishers.
19. Anand, P.S. (1996). *Essentials of Teaching and Learning*. Rohtak : Unique Publication.
20. Chand, Tara (1990). *Educational Technology*. New Delhi: Anmol Publishers.
21. Thornburg, H. (1973). *School Learning and Instruction*. California: Wordsworth Publishing Co. Belmod.

15.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Balfour, Graham (1921). *Educational Administration*. Oxford: The Clarendon Press.
2. Banghart, F.W. and Alburt Trull, Jr. (1973). *Educational Planning*. New York: *McMillan*.
3. Campbell, R.F., J.E. Corbally and R.O. Nystrand (1983). *Introduction to Educational Administration*. 6th Ed. Boston: Allyn Bacon Inc.
4. Brunner, J.S. (1966). *Towards a theory of instruction*. Massachusetts: Harward University Press.
5. Dececco, John P. (1970). *The Psychology of Learning and Instructional technology*. New Delhi: Prentice Hall Pvt. Ltd.
6. Rath, James & et al. (1971). *Studying Teaching*. New Jersey: Prentice Hall Inc.
7. Sharma, R.A. (1983). *Technology of teaching*. Meerut: International Publishing House.
8. Storms, R.D. (1971). *Teaching and Learning Process*. New Jersey: Prentice Hall Inc.
9. Green Thomas, F. (1971). *The activities of teaching*. London: Mc Graw Hill Company.

15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

- प्रश्न-1** सम्प्रेषण से आप क्या समझते हैं तथा सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं का विस्तृत वर्णन कीजिये?
- प्रश्न-2** शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं से आप क्या समझते हैं व्याख्या कीजिये?
- प्रश्न-3** शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को दूर करने के उपायों का उल्लेख कीजिये?
- प्रश्न-4** सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं का वर्गीकरण कर उनमें अंतर स्पष्ट कीजिये?

इकाई 16 विद्यालय प्रबंधन

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 विद्यालय प्रबंधन एवं प्रशासन में प्रधानाध्यापक एवं शिक्षक की भूमिका।

16.3.1 विद्यालय प्रबंधन एवं प्रशासन में प्रधानाध्यापक की भूमिका।

16.3.2 विद्यालय प्रबंधन एवं प्रशासन में शिक्षक की भूमिका।

16.4 सारांश:-

16.5 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

विद्यालय शब्द स्वयं में अपने अर्थ को अभिव्यक्त कर रहा है। विद्यालय अर्थात् विद्या का घर, अर्थात् वह स्थान जहाँ पर रहकर विद्यार्थी ज्ञान का अर्जन करता है।

यदि हम विद्यालय शब्द को परिभाषित करें तो हम कह सकते हैं कि - “विद्यालय वह स्थान है जहाँ विद्यार्थी अपने घर से दूर जाकर एक निश्चित स्थान पर कुशल अध्यापकों के निर्देशन में सामूहिक रूप से औपचारिक शिक्षा ग्रहण करता है”।

उक्त परिभाषा हमें यह बोध कराती है कि-

विद्यालय एक संस्था है।

इसमें विद्यार्थी एवं अध्यापकों का होना अनिवार्य है।

इस संस्था का मुख्य कार्य अध्ययन एवं अध्यापन है।

विद्यालय की उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि विद्यालय नामक संस्था को प्रबंधन की आवश्यकता अनिवार्य रूप से पड़ती है। बिना प्रबंधन के विद्यालय का संचालन असंभव कार्य है।

‘प्रबंधन’ शब्द का अर्थ है ‘व्यवस्था करना’ विद्यालय के प्रबंधन में अध्ययन, अध्यापन तथा विद्यालय संचालन से सम्बद्ध समस्त प्रकार की व्यवस्थायें सम्मिलित हैं।

विद्यालय सहित किसी भी प्रकार के प्रबंधन में मानवीय क्षमताओं का उपयोग अनिवार्य है। मानवीय क्षमताओं का उपयोग किये बिना हम विद्यालय अथवा अन्य किसी भी संस्था का संचालन नहीं कर सकते।

विद्यालय प्रबंधन में अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों एवं संस्थाओं का योगदान सम्मिलित है।

विद्यालय को शिक्षा एवं ज्ञान का मंदिर कहा जाता रहा है। विद्यालय एक ऐसी संस्था है जहाँ दक्ष शिक्षकों के मार्गदर्शन में छात्र अपनी क्षमता तथा योग्यता के अनुसार शिक्षा ग्रहण करते हैं। यह शिक्षा न सिर्फ उनका सर्वांगीण विकास करती है बल्कि उन्हें वास्तविक जीवन की कठिनाईयों का सामना करने तथा अपने भविष्य का निर्माण करने की क्षमता भी प्रदान करती है। बदलते समय के साथ विद्यालय का कार्य एवं उसके स्वरूप में बहुत अंतर आया है।

शिक्षा के बदलते स्वरूप को ध्यान में रखते हुए विद्यालयों में पठन-पाठन का कार्य उसके अनुरूप क्रियान्वित करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि विद्यालय में हर स्तर पर नियुक्त व्यक्ति के कर्तव्यों तथा उसके कार्यों को पूर्ण रूप से समझा जाये। वैसे तो विद्यालय में कार्यरत प्रत्येक व्यक्ति का अपना महत्व होता है परन्तु, चूंकि विद्यालय का मुख्य उद्देश्य शिक्षा प्रदान करना होता है अतः शिक्षक तथा प्रधानशिक्षक जिसे हम प्रधानाध्यापक भी कहते हैं की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। अतः विद्यालय के उचित संचालन के लिये अध्यापक तथा प्रधानाध्यापक की भूमिका को समझना तथा परिभाषित करना सबसे महत्वपूर्ण है।

इस पाठ में हम शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक की विद्यालय में भूमिका का ही अध्ययन करेंगे।

16.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई की संरचना निम्नांकित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की गयी है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात्

- हम विद्यालय के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- हम विद्यालय के प्रबंधन एवं प्रशासन में प्रधानाध्यापक की भूमिका से अवगत हो सकेंगे।
- हम शिक्षक, नियोजक एवं पर्यवेक्षक के रूप में प्रधानाध्यापक की भूमिका को जान सकेंगे।
- हम यह जान सकेंगे कि नेता के रूप में प्रधानाध्यापक की क्या भूमिका होती है।
- हम इस बात से अवगत हो सकेंगे कि विद्यालय के संगठन में प्रधानाध्यापक की क्या भूमिका होती है।
- हम मानवीय सम्बन्धों की स्थापना तथा निर्देशन कार्य में प्रधानाध्यापक की भूमिका से अवगत हो सकेंगे।
- हम यह भी जान सकेंगे कि मूल्यांकन कार्य तथा अनुशासन स्थापना में प्रधानाध्यापक की क्या भूमिका होती है।
- हम एक शिक्षक के प्रबन्धकीय एवं प्रशासकीय गुणों से अवगत हो सकेंगे।
- हम प्रधानाध्यापक की ही भाँति शिक्षक की विभिन्न भूमिकाओं से अवगत हो सकेंगे।

16.3 विद्यालय प्रबंधन एवं प्रशासन में प्रधानाध्यापक एवं शिक्षक की भूमिका

शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक के कर्तव्यों तथा उनकी भूमिका को समझने से पहले उन्हें परिभाषित करना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षक एक मार्गदर्शक तथा पथ प्रदर्शक होता है जो विद्यार्थियों को हर प्रकार से शिक्षा प्रदान कर उन्हें समाज में रहने लायक एक योग्य मनुष्य बनाता है। अतः कहा जा सकता है कि शिक्षक का कार्य विद्यालय में आने वाले विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करना, उन्हें उचित मार्गदर्शन देना तथा कृत्रिम परिस्थितियाँ प्रस्तुत कर उन्हें समाज में रहने योग्य बनाना होता है। प्रधानाध्यापक विद्यालय का प्रधान शिक्षक होता है। प्रधान होने के नाते उसका कार्य थोड़ा बढ़ जाता है। एक शिक्षक के कार्यों का निर्वहन तो उसे करना ही होता है उसके साथ-साथ शिक्षकों का भी नेतृत्व तथा मार्गदर्शन करना होता है। यदि शिक्षक का कार्य शिक्षा प्रदान करना है तो यह प्रधानाध्यापक का कर्तव्य होता है कि वह विद्यालय में ऐसा वातावरण उत्पन्न करे कि शिक्षण का कार्य कुशलता एवं सफलता से बिना किसी अवरोध के चलता रहे।

आइये अब हम विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में शिक्षक तथा प्रधानाध्यापक की भूमिका का अलग-अलग अध्ययन करते हैं।

16.3.1 विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में प्रधानाध्यापक की भूमिका

मोटे तौर पर एक प्रधानाध्यापक की भूमिका को ऊपर वर्णित तथा परिभाषित किया जा चुका है। प्रधानाध्यापक एक शिक्षक तो होता ही है साथ-साथ वह विद्यालय का संचालक, शिक्षकों का मुखिया, नेता तथा निर्देशक भी होता है। विद्यालय में शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक की वही भूमिका होती है जो मंच पर कलाकारों तथा निर्देशक की होती है।

प्रधानाध्यापक की भूमिका को लेकर अनेक शिक्षाविदों एवं विचारकों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं -

पी0सी0रैन के अनुसार “जो घड़ी का मुख्य स्प्रिंग, मशीन का मुख्य पहिया या भाप के जहाज का इंजन होता है, उसी प्रकार स्कूल के लिये हैडमास्टर होता है।”

डा0 जसवन्त सिंह का विचार है, “हैडमास्टर या स्कूल का प्रिंसिपल शिक्षा प्रणाली की धुरी होते हैं। उसके प्रभाववश शिक्षक नेता होने की योग्यता एवं निपुणता पर ही स्कूल की सफलता निर्भर है।”

केन्द्रीय सलाहकार शिक्षा बोर्ड के अनुसार, “कोई भी शिक्षा सुधार स्कीम तब तक आवश्यक परिणाम नहीं दे सकती है, जब तक उसको दूरदर्शिता तथा निपुणता से लागू नहीं किया जाता।

विभिन्न विद्वानों के उपरोक्त कथन यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि विद्यालय में प्रधानाध्यापक की भूमिका केन्द्रीय होती है। यदि हम विद्यालय में, विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में प्रधानाध्यापक की भूमिका को व्यवस्थित रूप से अभिव्यक्त करना चाहें तो प्रधानाध्यापक की भूमिका को निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत कर सकते हैं -

शिक्षक के रूप में।
 नियोजक के रूप में।
 पर्यवेक्षण कार्य में।
 नेतृत्व कार्य में।
 संगठन कार्य में।
 मानवीय सम्बन्धों की स्थापना में।
 निर्देशन कार्य में।
 मूल्यांकन कार्य में।
 अनुशासन स्थापना में।
 निर्णय लेने में।
 आर्थिक प्रबन्धन में।

शिक्षक के रूप में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

प्रधानाध्यापक को एक कुशल शिक्षक होना चाहिये। यह उसके कर्तव्यों में सबसे प्रमुख एवं मूलभूत उत्तरदायित्व है। उसे एक आदर्श शिक्षक का उदाहरण अन्य शिक्षकों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए एवं ऐसा आचरण करने के लिये उन्हें प्रेरित करना चाहिए। उसे अपने विषय का अच्छा ज्ञान होना चाहिये। तथा समय पड़ने पर कक्षा में जा कर शिक्षण का कार्य करने के लिये तत्पर रहना चाहिये। सामान्यतः भी उसे शिक्षक की भूमिका का निर्वहन करते हुए छात्रों को समय-समय पर उचित शिक्षा तथा मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिये।

नियोजक के रूप में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

प्रधानाध्यापक को एक अच्छा संचालक भी होना चाहिये। अच्छा संचालक होने के लिये उसे अच्छा नियोजक बनना होता है। नियोजन, संस्थान के संचालन का अभिन्न अंग है। बिना उचित नियोजन के कुशल संचालन की बात व्यर्थ होती है। नियोजन के अन्तर्गत प्रधानाध्यापक के निम्नलिखित उत्तरदायित्व होते हैं-

- विद्यालय में स्थूल संसाधनों की आवश्यकतानुसार उपलब्धता का ध्यान रखना।
- प्रवेश सम्बन्धी नियमावली तथा प्रवेश प्रक्रिया की रूपरेखा तैयार करना।
- विद्यालय की आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम निर्धारण तथा उसके आधार पर पुस्तकों का चयन करना।
- विद्यालय में खेल-कूद तथा अन्य पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन एवं संचालन करना।
- शिक्षकों का चयन तथा उनके मध्य कार्य का उचित विभाजन करना।
- पाठ्यक्रम के अनुसार सभी कक्षाओं में प्रभावी रूप से शिक्षण कार्य सम्पन्न किया जाये इस हेतु शिक्षण नियोजन करना।
- परीक्षण एवं मूल्यांकन आयोजित करने हेतु सारिणी तैयार करना।

- विद्यालय की शैक्षिक एवं अन्य गतिविधियों को उचित एवं सुनियोजित रूप से पूर्ण कराने हेतु विद्यालय का वार्षिक कैलेण्डर तैयार करना।

पर्यवेक्षक के रूप में प्रधानाध्यापक की भूमिका -

संचालक को उचित नियोजन के साथ-साथ कुशल एवं सही पर्यवेक्षण का ज्ञान होना भी आवश्यक है। किसी भी संस्थान के सफल संचालन के लिये जितना आवश्यक अनेक योजनाओं को नियोजित रूप से तैयार करना है, उतना ही आवश्यक उन योजनाओं के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के लिये समय-समय पर पर्यवेक्षण करना होता है पर्यवेक्षक के रूप में प्रधानाध्यापक को निम्नलिखित कार्य करने होते हैं:-

1. पर्यवेक्षक के रूप में प्रधानाध्यापक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य विद्यालय में हो रहे शिक्षण कार्य का पर्यवेक्षण करना होता है। समय सारिणी के अनुसार कक्षाएँ संचालित हो रही हैं या नहीं, शिक्षकों की गलतियाँ जानकर उन्हें दूर करना, उनकी समस्याओं का निवारण करना, शिक्षण-सामग्री उपयुक्त मात्रा में प्रत्येक कक्षा एवं विषय के लिये उपलब्ध कराना, शिक्षकों के कार्य की गुणवत्ता को बढ़ाने हेतु समय-समय पर उन्हें उचित परामर्श तथा मार्गदर्शन देना यह सभी कार्य प्रधानाध्यापक के कर्तव्यों के अन्तर्गत आते हैं।
2. प्रधानाध्यापक का कार्य सिर्फ शिक्षण कार्य तक ही सीमित नहीं होता अपितु उसे कार्यालय सम्बन्धी कार्यों का भी पर्यवेक्षण करना होता है। कार्यालय के शैक्षिक, आर्थिक तथा अन्य प्रशासनिक आलेखों पर नजर रखना तथा उनकी देखरेख रखना भी प्रधानाध्यापक का कर्तव्य होता है।
3. इसके अतिरिक्त खेल-कूद, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम, कैन्टीन, हास्टल, विद्यालय का भवन तथा चल-अचल सम्पत्ति की देखरेख तथा पर्यवेक्षण आदि करना भी प्रधानाध्यापक का ही कार्य होता है।

नेता के रूप में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

यह वह कर्तव्य है जो प्रधानाध्यापक के कार्यों का मुख्य एवं अभिन्न अंग होता है। प्रधानाध्यापक यह संज्ञा स्वतः ही उसे एक मुखिया, एक नेता की भूमिका में ला कर खड़ा कर देती है। प्रधानाध्यापक न सिर्फ शिक्षकों का मुखिया होता है बल्कि वह पूरे शिक्षण संस्थान का नेता होता है। विद्यालय से सम्बन्धित प्रत्येक गतिविधि चाहे वह शिक्षण से सम्बन्धित हो या अन्य किसी भी प्रकार की पाठ्य-सहगामी गतिविधि हो का नेतृत्व करना प्रधानाध्यापक का कर्तव्य होता है। यह उसकी कार्य-कुशलता एवं योग्यता पर निर्भर करता है कि वह अपने नेतृत्व में विद्यालय का संचालन कितनी कुशलता के साथ कर सकता है, तथा विद्यालय के उद्देश्यों को कितनी सफलतापूर्वक पूर्ण कर पाता है।

संगठन में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

प्रधानाध्यापक की भूमिका में विद्यालय संगठन का कार्य भी सम्मिलित किया जाता है। संगठन के अन्तर्गत प्रधानाध्यापक के कार्यों को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया जा सकता है-

- प्रधानाध्यापक को यह सुनिश्चित करना आवश्यक होता है कि विद्यालय के स्थूल तथा मानव संसाधनों को संयुक्त रूप से इस प्रकार उपयोग में लाया जाये कि संस्थान का श्रेष्ठतम विकास हो सके।
- सभी कर्मचारियों तथा शिक्षकों के मध्य उचित सामन्जस्य तथा सम्प्रेषण स्थापित कर मानव संसाधन का उपयुक्त प्रयोग सुनिश्चित करना भी प्रधानाध्यापक का कार्य होता है।
- प्रधानाध्यापक उचित मार्गदर्शन तथा प्रोत्साहन प्रदान कर प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता के अनुसार कार्य का विभाजन करता है, तथा उन्हें विद्यालय के संचालन में अपना श्रेष्ठतम् योगदान देने हेतु प्रेरित करता है।
- वह मानव एवं स्थूल संसाधनों का उत्कृष्ट संगठन कर कार्यकुशलता बढ़ाने तथा कार्य को और प्रभावी बनाने के लिये कार्यरत रहता है।
- संस्थान के भीतर तथा बाहर, उचित प्रोत्साहन, प्रगाढ़ता तथा माधुर्य सुनिश्चित करना भी प्रधानाध्यापक का कर्तव्य होता है।
- प्रधानाध्यापक को न सिर्फ अपने अधीनस्थों से कुशलतापूर्वक कार्य लेना होता है बल्कि यह भी सुनिश्चित करना होता है कि विद्यालय संगठन से वह प्रसन्न भी रहें ताकि किसी भी अप्रिय स्थिति या समस्या की सम्भावना उत्पन्न न हो सके।
- इन सभी बातों को ध्यान में रखकर वह सभी के कर्तव्यों को परिभाषित करता है तथा सभी के मध्य कार्य का विभाजन करता है।

मानवीय सम्बन्धों की स्थापना में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

प्रधानाध्यापक विद्यालय की सभी गतिविधियों की धुरी होता है। उसे विद्यालय से सम्बन्धित प्रत्येक वर्ग, चाहे वह कर्मचारी वर्ग हो, शिक्षक वर्ग हो, छात्र हों या प्रबन्धन या अभिभावक वर्ग के मध्य सामंजस्य बना कर रखना होता है। इस सन्दर्भ में प्रधानाध्यापक की भूमिका को निम्नलिखित रूप से वर्णित किया जा सकता है -

- वह जैसे तो शिक्षक वर्ग का मुखिया होता है परन्तु सभी शिक्षकों से अधीनस्थों की भाँति नहीं अपितु मित्रों तथा सहयोगियों की भाँति व्यवहार करना होता है ताकि उन्हें उचित प्रोत्साहन मिले तथा शिक्षण के साथ-साथ संचालन के कार्य में वे लोग रूचि भी लें तथा अपना कर्तव्य भी समझें। सभी शिक्षकों को अपनी बात कहने, सुझाव या प्रस्ताव देने तथा अपनी समस्या व्यक्त करने की आजादी प्रधानाध्यापक द्वारा मिलती है तभी उसे इनका पूर्ण सहयोग प्राप्त होता है।

- शिक्षक वर्ग के अतिरिक्त छात्रों से भी सम्पर्क तथा सम्बन्ध स्थापित करना प्रधानाध्यापक का कर्तव्य होता है। इस कार्य के लिये वह कभी कक्षाओं में जाकर, या छात्र संघ के माध्यम से छात्रों से सम्पर्क स्थापित करता है। इसके अतिरिक्त छात्रों को भी किसी समस्या के निवारण के लिये प्रधानाध्यापक से सम्पर्क स्थापित करने की आजादी दी जानी चाहिये।
- विद्यालय के सफल संचालन के लिये प्रधानाध्यापक को अभिभावक वर्ग के सहयोग की भी आवश्यकता होती है, जिसके लिये उनसे सम्पर्क स्थापित करना भी आवश्यक है। अतः उसे समय-समय पर अभिभावकों की मीटिंग की व्यवस्था करनी होती है, तथा समय पर या विशेष परिस्थितियों में निजी रूप से भी उनसे सम्पर्क रखने की आवश्यकता होती है।
- इसके अलावा प्रधानाध्यापक को शिक्षा बोर्ड तथा प्रबन्धन समिति से भी सम्पर्क बनाये रखना होता है।

निर्देशन में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

विद्यालय का मुख्य अधिकारी होने के नाते सभी शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों को समय-समय पर उचित निर्देशन देना प्रधानाध्यापक का कार्य होता है जिसका उल्लेख उसके पर्यवेक्षण तथा संगठन के कार्यों में किया जा चुका है। शिक्षा के बदलते स्वरूप के साथ आज शिक्षा केवल ज्ञान प्रदान करने का नाम नहीं रह गई है, अपितु यह शिक्षण-संस्थान का कर्तव्य बनता जा रहा है कि वह छात्रों को न केवल उच्च शिक्षा के लिये विषयों के चयन में सहायता तथा मार्गदर्शन प्रदान करे बल्कि उनकी अभिरूचियों तथा योग्यता को समझकर उनके लिये उचित व्यवसाय का चयन करने में भी उनको सहायता प्रदान करे। इसके लिये विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम भी आयोजित किये जाते हैं। चूंकि यह विद्यालय का तथा शिक्षा का अंग है, प्रधानाध्यापक को ही इसके संचालन का भार उठाना होता है। अतः प्रधानाध्यापक के निर्देशन कार्यक्रम निर्वाह में प्रमुख उत्तरदायित्व निम्नलिखित हैं -

- निर्देशन कार्यक्रम हेतु उचित भवन, धन तथा समय की व्यवस्था करना।
- छात्रों तथा अभिभावकों को निर्देशन सेवाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना।
- विद्यालय के शिक्षकों को, निर्देशन का महत्व, समस्याएँ तथा उद्देश्यों को समझने में सहयोग प्रदान करना।
- विद्यालय में योग्य एवं कुशल निर्देशन कार्य-कर्ताओं की नियुक्ति, उनके मध्य कार्य का वितरण, उन्हें इस कार्य को सम्पन्न करने हेतु समय-समय पर उचित प्रशिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था करना, विद्यालय में निर्देश-समिति का गठन करना।

- इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम का नेतृत्व, संचालन तथा कार्यक्रम की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना भी प्रधानाध्यापक की भूमिका में सम्मिलित होता है।

मूल्यांकन कार्य में प्रधानाध्यापक की भूमिका :-

मूल्यांकन, प्रशासन का एक अभिन्न अंग होता है। किसी भी संस्थान के प्रभावी रूप से कार्य करने को सुनिश्चित करने के लिये न केवल कुशल नियोजन, संगठन तथा निर्देशन की आवश्यकता होती है बल्कि उचित नियंत्रण की भी आवश्यकता होती है। संस्थान की गतिविधियों पर नियंत्रण रखने तथा उसकी कार्यकुशलता तथा प्रभावशीलता को बनाये रखने के लिये मूल्यांकन अत्यंत आवश्यक होता है।

मूल्यांकन को भी अनेक स्तरों पर विभाजित किया जा सकता है। शिक्षण स्तर पर छात्रों का मूल्यांकन तथा प्रशासनिक स्तर पर अन्य कर्मचारियों, शिक्षकों तथा विद्यालय में गठित अनेक समितियों का मूल्यांकन। शिक्षकों, कर्मचारियों तथा अन्य समितियों के मूल्यांकन के लिये प्रधानाध्यापक पर्यवेक्षण की सहायता लेता है, परन्तु छात्रों के शैक्षिक मूल्यांकन के लिये उसे विद्यालय में मासिक, अर्ध-वार्षिक तथा वार्षिक परीक्षाओं का आयोजन तथा संचालन करना होता है। इसके अतिरिक्त उनके व्यक्तित्व विकास का मूल्यांकन करने के लिये उसे समय-समय पर विद्यालय में अनेक प्रकार की पाठ्य-सहगामी गतिविधियों, प्रतियोगिताओं तथा कार्यशालाओं का भी आयोजन करना होता है।

अनुशासन स्थापना में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

यह तो हम सभी को ज्ञात है कि विद्यालय में उचित शिक्षण वातावरण उपलब्ध कराना प्रधानाध्यापक का कर्तव्य होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उचित अनुशासन की आवश्यकता होती है। विद्यालय में अनुशासित वातावरण बनाये रखने का कार्य भी प्रधानाध्यापक का ही होता है। इसके लिये वह कभी समझौते की तो कभी दण्डात्मक नीति अपनाता है। विद्यालय में अनुशासन सुनिश्चित करने के लिये प्रधानाध्यापक को निम्नलिखित कार्य करने पड़ते हैं -

- विद्यालय में अनुशासन समिति का गठन, उसका संचालन तथा समय-समय पर उसके कार्य का मूल्यांकन करना।
- छात्रों, शिक्षकों तथा कर्मचारियों से निरन्तर सम्पर्क में रहकर उनकी समस्याओं का ज्ञान रखना तथा सम्भव समाधान खोजना ताकि सभी को जहाँ तक सम्भव हो संतुष्ट रखा जा सके।
- छात्र-संघ, शिक्षक-संघ तथा कर्मचारियों से सामन्जस्य बनाये रखना।
- विद्यालय में अराजक तत्वों के उदय को रोकने के लिये निदानात्मक नीति का पालन करना।

- किसी अप्रिय घटना के घटित होने पर स्थिति का उचित अवलोकन कर उचित कार्यवाही करना।
- समय आने पर अनुशासनहीन तत्वों के विरुद्ध सख्त एवं दण्डात्मक कार्यवाही करना भी प्रधानाध्यापक का कर्तव्य होता है।

निर्णय लेने में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

प्रधानाध्यापक की भूमिका एक नेता की अथवा एक मुखिया की होती है। एक नेता होने के नाते यह उसका उत्तरदायित्व होता है कि वह विद्यालय को अपने नेतृत्व में श्रेष्ठता तथा प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करे। इसके लिये उसे समय-समय पर आवश्यकतानुसार उचित निर्णय लेने होते हैं। विद्यालय से सम्बन्धित सभी क्रियाकलापों चाहें वह शिक्षण सम्बन्धी हो या प्रशासन सम्बन्धी, के लिये प्रधानाध्यापक को छोटे-बड़े निर्णय लेने होते हैं।

नियोजन के स्तर पर कक्षाओं का विभाजन, पाठ्यक्रम, पुस्तकों, शिक्षकों के मध्य कार्य का विभाजन आदि, इसके अतिरिक्त विद्यालय के क्रियाकलापों से सम्बन्धित सारिणी, कर्मचारियों का अवकाश, वेतन आदि छोटी-छोटी बातों पर प्रधानाध्यापक को निर्णय लेना होता है।

संकट की स्थिति में, या किसी समस्या के उत्पन्न हो जाने पर प्रधानाध्यापक में निर्णय शक्ति का होना और भी आवश्यक हो जाता है। इसके लिये आवश्यक है कि वह सर्वप्रथम समस्या को समझे, उसके पश्चात उसके निवारण हेतु अनेक प्रकार के सुझावों पर विचार करे, स्थिति का अवलोकन कर जो उपाय सबसे उचित हो उसका प्रयोग कर शीघ्र समस्या का समाधान करे।

निर्णय लेना, एक प्रशासक के रूप में प्रधानाध्यापक का एक महत्वपूर्ण कर्तव्य होता है। विद्यालय की प्रतिष्ठा तथा विकास, छात्रों का भविष्य तथा उनका विकास सभी कुछ प्रधानाध्यापक की कुशल निर्णय क्षमता पर निर्भर करता है।

आर्थिक प्रबन्धन में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

किसी भी संस्थान के कुशल एवं सफल संचालन के लिये जितनी आवश्यकता कुशल प्रशासन की होती है उतनी ही आवश्यकता आर्थिक संसाधनों की भी होती है। वैसे तो विद्यालय के पास आय के अपने साधन होते हैं जैसे कि छात्रों की फीस, शिक्षा बोर्ड से प्राप्त अनुदान आदि परन्तु इस आय को उचित रूप से छात्रों की, शिक्षा की तथा विद्यालय की प्रगति तथा विकास में लगाना तथा इन आर्थिक संसाधनों का लेखा-जोखा रखना यह भी प्रधानाध्यापक के कर्तव्यों में से एक है। आर्थिक प्रबन्धन के लिये प्रधानाध्यापक को निम्न कार्यों की पूर्ति करनी होती है।

- विद्यालय के कार्यों तथा गतिविधियों के संचालन में कोई रूकावट न आये इसके लिये प्रधानाध्यापक को विद्यालय की आय के साधन बनाने होते हैं। परन्तु अन्य संस्थाओं को

विद्यालय के लिये दान करने हेतु प्रेरित करना, विद्यालय की आवश्यकतानुसार बोर्ड से अनुदान की मांग करना, प्रबन्धन समिति को विद्यालय की आवश्यकता से अवगत करना; यह सब प्रधानाध्यापक के ही उत्तरदायित्व होते हैं।

- आर्थिक संसाधनों को किस प्रकार उचित तथा उपयुक्त रूप से प्रयोग करना है ताकि उसका उपयोग विद्यालय के श्रेष्ठतम हित के लिये किया जा सके इसका निर्णय भी प्रधानाध्यापक को ही करना होता है। इसके लिये प्रधानाध्यापक को एक कुशल आर्थिक नियोजक होना अत्यन्त आवश्यक है।
- प्रधानाध्यापक को विद्यालय की आय तथा व्यय का अभिलेख भी रखना होता है। इसके अन्तर्गत विद्यालय की आय तथा किन-किन क्रियाओं में कितना व्यय हुआ इस सब का विवरण उसे रखना होता है।
- विद्यालय की अनेक समितियों तथा विभागों को दिया गया धन उचित रूप से प्रयोग किया जा रहा है, अथवा नहीं इसका भी निरीक्षण प्रधानाध्यापक को करना होता है।
- समय-समय पर विद्यालय का आडिट करवाना भी उसी के कर्तव्यों के अन्तर्गत आता है तथा वह बोर्ड तथा प्रबन्धन समिति के प्रति जवाबदेह भी होता है।

इन सभी कर्तव्यों के उचित निर्वहन के लिये प्रधानाध्यापक को एक प्रभावी व्यक्तित्व का स्वामी होना चाहिये। आइये विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में प्रधानाध्यापक की जिन भूमिकाओं का वर्णन हम ऊपर की पंक्तियों में विस्तार से कर चुके हैं उन समस्त भूमिकाओं पर पुनः एक दृष्टि डाल लें।

किसी भी विद्यालय के कुशल संचालन के लिये-

- (1) सर्वप्रथम प्रधानाध्यापक को एक अच्छा शिक्षक होना चाहिये। एक अच्छा शिक्षक ही उचित शिक्षा के महत्व को तथा छात्र हित को भली-भाँति समझ सकता है।
- (2) उसे एक अच्छा तथा कुशल नेता होना चाहिये। विद्यालय की सफलता तथा प्रगति पूरी तरह से प्रधानाध्यापक के कुशल नेतृत्व पर निर्भर करती है।
- (3) प्रधानाध्यापक को एक उच्च योग्यताओं वाला व्यक्ति होना चाहिये। उसकी सूझ-बूझ, शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता, विचार, उत्साह तथा व्यक्तित्व ही विद्यालय की पहचान होती है।
- (4) प्रधानाध्यापक को एक कुशल मार्गदर्शक भी होना चाहिये। उसके कुशल मार्गदर्शन पर ही विद्यालय की प्रगति निर्भर है।
- (5) प्रधानाध्यापक के पास अपने कार्यो तथा कर्तव्यों को कुशलता से पूर्ण करने हेतु व्यावसायिक प्रशिक्षण भी होना चाहिये।

(6) प्रधानाध्यापक एक उच्च कोटि का विद्वान होना चाहिए जो अपनी विद्वता तथा ज्ञान के माध्यम से विद्यालय का श्रेष्ठतम् संचालन करता है, तथा कुशल प्रशासन करता है।

(7) प्रधानाध्यापक के पास एक सुदृढ़ तथा प्रगतिशील शिक्षा दर्शन भी होना चाहिये ताकि वह विद्यालय में श्रेष्ठ शिक्षा छात्रों के लिये उपलब्ध करवा सके।

16.3.2 विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में शिक्षक की भूमिका

वैसे तो यह सभी जानते हैं कि प्रधानाध्यापक का कार्य विद्यालय में सबसे मुख्य होता है। वह विद्यालय का मुखिया, नेता तथा प्रशासक होता है। परन्तु जैसे कि कहा जाता है कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता उसी प्रकार प्रधानाध्यापक अकेला पूरे विद्यालय का कार्यभार नहीं सम्भाल सकता, उसे हर कार्य में विद्यालय में कार्यरत शिक्षकों की सहायता लेनी पड़ती है। जिस प्रकार प्रधानाध्यापक शिक्षण तथा प्रशासनिक कार्यों का प्रतिनिधित्व करता है, उसी प्रकार शिक्षक भी प्रधानाध्यापक के आधीन रहकर विद्यालय के प्रशासन में अपना योगदान देता है। विद्यालय के प्रति उसकी भी जवाबदेही होती है, तथा उसे भी अपने कर्तव्यों तथा अपनी भूमिका निर्वहन पूरी निष्ठा के साथ करना होता है। विद्यालय के प्रशासन तथा संचालन में शिक्षक की भूमिका को निम्नलिखित रूप से अभिव्यक्त किया जा सकता है।

गुरु ज्ञान का मूल है, और गुणों की खान।

शीश दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जानि।

शिक्षक क्या है:- शिक्षक वह व्यक्ति है जो अपने शिक्षण कार्य के द्वारा छात्र के व्यवहार में परिवर्तन का प्रयास करता है। वह छात्र को पशुत्व से मनुष्यता की ओर और मनुष्यता से देवत्व की ओर ले जाता है। साथ ही वह छात्र का सर्वांगीण विकास करता है।

प्रबन्धक क्या है:- वह व्यक्ति जो अपने क्षेत्र या व्यवसाय को क्रमबद्ध रूप प्रदान करने के लिए योजनाओं का निर्माण कर व्यवस्था का प्रबन्ध करता है तथा सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए संसाधनों का उचित प्रयोग करता है प्रबन्धक कहलाता है।

एक आदर्श शिक्षक में कलाकार, अभिभावक, पथ प्रदर्शक, मित्र, मनोवैज्ञानिक तथा संस्कृति के प्रतिनिधि होने का गुण विद्यमान है। एक आदर्श शिक्षक के गुणों के लिए बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। यहाँ पर समय तथा स्थानाभाव के कारण हम शिक्षक के केवल उन गुणों का संकेत मात्र करेंगे जिनके अभाव में शिक्षक, शिक्षक हो ही नहीं सकता।

आदर्श शिक्षक के गुण:-

अच्छे शिक्षक में निम्नलिखित गुण अनिवार्य रूप से होने चाहिए-

दूरदर्शिता।

विश्वसनीयता।
 अनुशासन की भावना।
 विषय का अच्छा ज्ञाता।
 मृदु भाषी।
 निर्णय लेने की क्षमता।
 अच्छा नेता होना।
 समायोजन की भावना।
 आत्मविश्वासी।

ऊपर की पंक्तियों में हम आदर्श शिक्षक के अनिवार्य गुणों की संक्षिप्त चर्चा कर चुके हैं किन्तु यहाँ पर हमारी चर्चा का विषय 'शिक्षक एक प्रबन्धक एवं प्रशासक' के रूप में है अतः यहाँ पर हमें एक आदर्श प्रबन्धक एवं प्रशासक के गुणों की चर्चा कर लेना भी अनिवार्य प्रतीत होता है। नीचे की पंक्तियों में एक आदर्श प्रबन्धक एवं प्रशासक के अनिवार्य गुणों की ओर संकेत किया गया है।

आदर्श प्रबन्धक एवं प्रशासक के गुण :- एक अच्छे प्रबन्धक एवं प्रशासक में निम्नलिखित गुण अनिवार्य रूप से होने चाहिए-

एक अच्छा योजनाकार।
 मृदु भाषिता।
 शीघ्र निर्णय लेने की क्षमता।
 सहयोग की भावना।
 संसाधनों का उचित प्रयोग करने की क्षमता।
 दूर-दर्शिता।
 नेतृत्व की क्षमता।

शिक्षक एवं प्रबन्धक को परिभाषित करते हुए हमने एक आदर्श शिक्षक, प्रबन्धक एवं प्रशासक के गुणों पर संक्षिप्त दृष्टिपात किया है। उपरोक्त चर्चा के पश्चात् हमारे लिए विद्यालय के प्रबन्धन एवं प्रशासन से सम्बन्धित शिक्षक के कार्यों को स्पष्ट करना सरल हो जायेगा।

प्रबन्धक एवं प्रशासक के रूप में शिक्षक के कार्य:-

शिक्षा देना:-

शिक्षक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है छात्रों को अपने विषय का ज्ञान प्रदान करना तथा उन्हें इस प्रकार की शिक्षा देना कि उनके पूरे व्यक्तित्व का विकास हो सके।

संगठन करना:-

शिक्षक को कक्षा के स्तर पर शिक्षा का संगठन सुनिश्चित करना होता है। कक्षा के छात्रों के लिये विषय के अनुसार पुस्तकों की व्यवस्था, शिक्षण गतिविधियों का संचालन, प्रतियोगिताओं का आयोजन, पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का आयोजन तथा शिक्षण सामग्री की उचित व्यवस्था का ध्यान रखना होता है। इसके अतिरिक्त कक्षा में चल तथा अचल संसाधनों की पूरी व्यवस्था तथा उसकी देख-रेख शिक्षक का ही उत्तरदायित्व होता है।

निरीक्षण करना :-

शिक्षक को छात्रों के दैनिक शिक्षण कार्यों का निरीक्षण करना होता है। उनका दैनिक गृह कार्य, कक्षा का कार्य, प्रतिदिन की उपस्थिति तथा समय से विद्यालय में आवागमन इन सब बातों का ध्यान शिक्षक को ही रखना होता है। इसके अतिरिक्त छात्रों के लिये प्रयोगशालाओं का आयोजन करना तथा अन्य सांस्कृतिक तथा सामाजिक गतिविधियों का आयोजन कर छात्रों के व्यक्तित्व विकास का निरीक्षण करना भी शिक्षक का कार्य होता है।

अनुशासन:-

विद्यालय में अनुशासन बनाये रखना प्रत्येक शिक्षक का कर्तव्य होता है। इस कार्य में वह प्रधानाध्यापक को अपना पूरा सहयोग देता है तथा कक्षा में शिक्षण कार्य अनुशासित रूप से पूर्ण हो सके इस बात का पूरा ध्यान रखता है।

मूल्यांकन तथा अभिलेख रखना:-

छात्रों की शैक्षिक प्रगति तथा योग्यता का मूल्यांकन करना भी शिक्षक का कार्य होता है। इसके लिये वह समय-समय पर कक्षाओं में विभिन्न प्रकार की परीक्षाओं का आयोजन करता है।

परीक्षाओं के आयोजन तक ही शिक्षक का कार्य समाप्त नहीं होता है, उसे इस मूल्यांकन का नियमित अभिलेख भी रखना होता है। इस प्रकार उसको छात्रों के बारे में, उनकी रुचियों, भावनाओं और सफलताओं का काफी ज्ञान हो जाता है। इसके अतिरिक्त उसे छात्रों की उपस्थिति का रजिस्टर, अन्य क्रियाओं सम्बन्धी रजिस्टर तथा छात्रों के प्रवेश लेने तथा छोड़ने का रजिस्टर भी शिक्षक को रखना होता है।

मार्गदर्शन:-

शिक्षक को छात्रों की बुद्धि तथा उनकी मानसिक योग्यता के आधार पर न केवल विद्यालय के पाठ्यक्रम को समझने अपितु भविष्य के लिये उपयुक्त विषय चुनने तथा अपने लिये भविष्य की योजनाएँ तैयार करने हेतु सहायता प्रदान करनी होती है।

शिक्षक मूल्यांकन के माध्यम से कक्षा के सभी छात्रों की बुद्धि तथा उनकी शारीरिक तथा मानसिक क्षमताओं का ज्ञान प्राप्त करता है। तत्पश्चात् इसी ज्ञान का उपयोग कर मनोवैज्ञानिक विधियों की सहायता से वह छात्रों को पाठ्यक्रम को समझने के लिये अनेक गतिविधियों का प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त वह छात्रों का मार्गदर्शन कर आगे की कक्षाओं के लिये विषय चुनने तथा भविष्य में उन्हें व्यवसाय चुनने में भी सहायता प्रदान करता है।

आयोजन:-

वैसे तो यह कार्य मुख्यतः प्रधानाध्यापक का होता है, परन्तु प्रधानाध्यापक अपनी सहायता हेतु इस कार्य का विभाजन शिक्षकों के मध्य कर उनका निरीक्षण करता है। आयोजन के अन्तर्गत शिक्षक के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

- (1) अध्यापक को पाठ्यक्रम की ठीक ढंग से व्यवस्था करनी होती है। उसे पाठ्यक्रम को महीनों तथा हफ्तों में बाँटकर पढ़ाना होता है।
- (2) उसे श्रव्य-दृश्य साधनों और अध्यापन-विधियों के प्रयोग करने की व्यवस्था करनी होती है। उसे मनोवैज्ञानिक रूप से इन सब विधियों का प्रयोग शिक्षण कार्य में सभी छात्रों की मानसिक एवं बौद्धिक क्षमता को ध्यान में रखकर करना होता है।
- (3) इसके अतिरिक्त उसे विद्यालय में आयोजित होने वाली पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ तथा अन्य क्रियाओं तथा प्रतियोगिताओं में भी अपना योगदान देना होता है।

इस प्रकार हमने देखा कि एक प्रधानाध्यापक तथा शिक्षक सभी मिलकर विद्यालय के सफल संचालन तथा प्रशासन में अपना योगदान देते हैं तथा अपनी भूमिका का निर्वहन करते हैं। प्रधानाध्यापक जहाँ विद्यालय का प्रतिनिधित्व करता है, सभी शिक्षक उसके अधीनस्थ रहकर अपना कार्य करते हैं।

16.4 सारांश

विद्या का घर 'विद्यालय' एक संस्था है। किसी भी दूसरी संस्था की ही भाँति विद्यालय को भी संचालित करने के लिए प्रबन्धन एवं प्रशासन की आवश्यकता पड़ती है।

जिस प्रकार एक पहिया अपनी धुरी एवं अरों के माध्यम से संचालित होता है ठीक उसी प्रकार एक विद्यालय का प्रबन्धन एवं प्रशासन प्रधानाध्यापक तथा अध्यापकों के माध्यम से संचालित होता है।

विद्यालय का प्रधानाध्यापक एक कुशल शिक्षक, सफल नियोजक एवं पर्यवेक्षक तथा सक्रिय नेता होता है। संगठन कार्य में प्रधानाध्यापक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। उसे अपने विद्यालय में मानवीय सम्बन्धों की स्थापना करनी होती है। विद्यार्थियों को निर्देशन देना होता है तथा अनुशासन स्थापना के लिए महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते हैं। विद्यालय के आर्थिक प्रबन्धन में भी प्रधानाध्यापक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

यद्यपि प्रधानाध्यापक विद्यालय का मुखिया होता है तथापि शिक्षकों की सहायता के बिना एक विद्यालय का सफल प्रबन्धन एवं प्रशासन असम्भव कार्य है। अध्यापक विद्यार्थियों को शिक्षा देने के साथ-साथ विद्यालय के संगठन, निरीक्षण एवं अनुशासन स्थापना में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विद्यार्थियों को निर्देशन देने, उनका मूल्यांकन करने, अभिलेखों का रख-रखाव करने तथा विभिन्न आयोजनों में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

16.5 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विद्यालय के प्रबन्धन तथा प्रशासन में प्रधानाध्यापक की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
2. शिक्षक को शिक्षण कार्य के अतिरिक्त किन-किन भूमिकाओं का निर्वहन करना होता है।
3. अनुशासन स्थापना में प्रधानाध्यापक एवं अध्यापक की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।
4. कक्षा कक्ष प्रबन्धन में शिक्षक को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

इकाई 17 शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयाम

- 17.1 प्रस्तावना
- 17.2 उद्देश्य
- 17.3 शैक्षिक नियोजन
- 17.4 शैक्षिक प्रबन्धन
- 17.5 शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के विविध आयाम
- 17.6 प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक प्रबन्धन एवं नियोजन
- 17.7 माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक प्रबन्धन एवं नियोजन
- 17.8 उच्च स्तर पर शैक्षिक प्रबन्धन एवं नियोजन
- 17.8 सारांश

17.1 प्रस्तावना

हमारे जीवन में प्रत्येक वह कार्य सफल व सुफल होता है जिसे हम नियोजित रूप से करते हैं। अब चाहे वह कार्य साधारण हो अथवा विशेष शिक्षा हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। हमारे जीवन का अधिकांश भाग शिक्षा प्राप्त करने में ही बीतता है। शिक्षा हमारे जीवन की दिशा एवं दशा भी निर्धारित करती है। अतः सफल जीवन के लिए शैक्षिक नियोजन अनिवार्य हो जाता है।

उचित प्रबन्धन के अभाव में श्रेष्ठ नियोजन भी अर्थहीन हो जाता है। किसी भी कार्य की योजना बनाने के बाद योजना के अनुसार हमें विशेष प्रबन्ध करने होते हैं। यदि हमारी प्रबन्धन की प्रक्रिया उचित नहीं है तो नियोजन पर किये गए हमारे सारे प्रयास निष्फल होते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि किसी भी दूसरे क्षेत्र की तरह शिक्षा के क्षेत्र में भी नियोजन एवं प्रबन्धन की महती आवश्यकता है।

आगे की पंक्तियों में हम शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

17.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन करने के पश्चात्

- हम 'शैक्षिक नियोजन' शब्द से परिचित हो सकेंगे।
- हम 'शैक्षिक प्रबन्धन' शब्द से परिचित हो सकेंगे।
- हम 'शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन' के विविध आयामों से परिचित हो सकेंगे।

- हम प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च स्तर पर 'शैक्षिक प्रबंधन एवं नियोजन' के विषय में जान सकेंगे।
- हम विविध स्तरों पर 'शैक्षिक नियोजन एवं प्रबंधन' के महत्व से अवगत हो सकेंगे।
- हम आवश्यकतानुसार 'शैक्षिक नियोजन एवं प्रबंधन' में सहभागिता कर सकेंगे।

आगे की पंक्तियों में हम शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबंधन के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

17.3 शैक्षिक नियोजन:-

'शैक्षिक नियोजन' वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की अनिवार्य शर्त है। शैक्षिक नियोजन को समझने से पूर्व हमें नियोजन शब्द का अर्थ समझना होगा।

नियोजन का अर्थ:-

नियोजन का साधारण अर्थ किसी कार्य की योजना बनाने से है। जब हम किसी कार्य को पूर्ण गम्भीरता से सम्पादित करना चाहते हैं तथा उससे श्रेष्ठ परिणामों की अपेक्षा रखते हैं तब हम इस बात की विधिवत व लिखित रूप में योजना बनाते हैं कि हम क्या कार्य करने जा रहे हैं? उक्त कार्य को करने के पीछे हमारे उद्देश्य क्या हैं? हम अपने अपेक्षित कार्य को किस प्रकार सम्पादित करेंगे? उक्त कार्य सम्पादन के लिए हमें किस प्रकार के संसाधनों की आवश्यकता होगी? इन संसाधनों की व्यवस्था कहाँ से होगी? कार्य सम्पादन में किस प्रकार की बाधाएं आ सकती हैं? इन बाधाओं का निवारण कैसे होगा? कार्य सम्पादन के क्या परिणाम प्राप्त होंगे? कार्य सम्पादन के उपरान्त भविष्य में किस प्रकार की योजना की आवश्यकता होगी? आदि प्रश्नों के विस्तृत व लिखित उत्तर देने की प्रक्रिया को ही हम "नियोजन" इस नाम से सम्बोधित कर सकते हैं।

शैक्षिक नियोजन का अर्थ

जैसा कि हम ऊपर की पंक्तियों में जान चुके हैं कि किसी महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिये विस्तृत कार्य योजना बनाने को "नियोजन करना" कहते हैं। यही कार्य जब हम शिक्षा के लिये करते हैं तब इसे "शैक्षिक नियोजन" कहा जाता है।

आइये इस बात को थोड़ा विस्तार से समझें।

भारत सहित विश्व के प्रत्येक देश में शिक्षा व्यवस्था को अत्यधिक महत्व दिया जाने लगा है। आधुनिक समाज को हम तकनीकी रूप से जटिल समाज की संज्ञा दे सकते हैं। तकनीकी जटिलता का सही आकलन एक दुष्कर कार्य है। तथापि "भविष्य की शैक्षिक आवश्यकताओं का सही-सही आकलन करके तदनुकूल संसाधनों की व्यवस्था करते हुए, उत्तम परिणाम प्राप्त करने की प्रत्याशा में लिखित एवं व्यवस्थित कार्य योजना को हम "शैक्षिक नियोजन" इस नाम से सम्बोधित कर सकते हैं।"

सुप्रसिद्ध शिक्षाविद डा० आर०पी० भटनागर ने शैक्षिक नियोजन को परिभाषित करते हुए लिखा है- "शैक्षिक नियोजन को अन्य प्रशासनिक कार्यों से अलग करना कठिन है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका प्रयोग प्रशासक को नेता, विनिश्चयकर्ता, परिवर्तन अभिकर्ता आदि की भूमिका निभाते हुए करना पड़ता है।"

शैक्षिक नियोजन के चरण:-

शैक्षिक नियोजन को और अधिक स्पष्ट करने के लिये हमें शैक्षिक नियोजन के विविध चरणों को जान लेना चाहिये। किसी भी राष्ट्र, राज्य अथवा संस्था में शैक्षिक नियोजन करने के लिये हमें निम्नांकित चरणों का अनुगमन करना होता है।

सूचनाओं का एकत्रीकरण:-किसी भी प्रकार का शैक्षिक नियोजन करने से पूर्व हमें सर्वप्रथम विविध प्रकार की सूचनाओं को एकत्र कर लेना चाहिये। इन सूचनाओं को हम शैक्षिक नियोजन करते समय उपयोग में ला सकते हैं।

आवश्यकता का आकलन:-सूचना एकत्रीकरण के पश्चात् हमें इस बात का आकलन करना चाहिए कि आखिर हमारी आवश्यकता क्या है। यह कार्य हम प्राप्त सूचनाओं को आधार बनाकर कर सकते हैं। वस्तुतः जब तक हम अपनी आवश्यकता को नहीं समझते है तब तक हमारे लिये नियोजन का कार्य कठिन होगा। आवश्यकता का आकलन हमें शैक्षिक नियोजन हेतु उपयुक्त आधार प्रदान करता है।

उद्देश्यों का निर्धारण:-शैक्षिक नियोजन करने के लिये हमें प्राप्त सूचनाओं के आधार पर नियोजन के उद्देश्यों का निर्धारण भली-भांति कर लेना चाहिये। उद्देश्य निर्धारण हम जितनी अच्छी प्रकार से कर लेंगे शैक्षिक नियोजन उतना ही उत्तम होगा। क्योंकि किसी भी कार्य का वास्तविक आधार उसका उद्देश्य ही होता है।

सम्भावित समस्याएँ:-उद्देश्य निर्धारण के उपरान्त हमें यह जान लेना चाहिये कि हमारे मार्ग में कौन-कौन सी बाधाएँ आ सकती हैं तथा हम उन बाधाओं का निवारण किस प्रकार कर सकते हैं। सम्भावित समस्याओं तथा उनके समाधान के विषय में जान लेने पर हमारा नियोजन का कार्य सफलता की सम्भावनाओं से भर जाता है।

स्रोतों की उपलब्धि:-नियोजन कार्य के उपरोक्त चार चरण पूरे कर लेने के पश्चात् हमारे लिये यह जानना आवश्यक हो जाता है कि उक्त कार्य योजना के लिये हमें कितने संसाधनों की आवश्यकता है। हमारे पास कितने संसाधन उपलब्ध हैं? तथा हमें बचे हुए संसाधनों की पूर्ति किस प्रकार करनी होगी? स्रोत अथवा संसाधन तीन प्रकार के हो सकते हैं-

1. मानव संसाधन
2. आर्थिक संसाधन
3. भौतिक संसाधन

कार्य योजना:-शैक्षिक नियोजन का यह सबसे महत्वपूर्ण चरण है। उपरोक्त सूचनाओं के आधार पर हमें अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये बहुत ही सावधानी पूर्वक विस्तृत कार्य योजना बनानी होती है। ध्यान रहे इस चरण में जरा सी असावधानी पूरे शैक्षिक नियोजन को पथ भ्रष्ट कर सकती है। अतः हमें पूरी सावधानी एवं तत्परता के साथ शैक्षिक नियोजन की कार्य योजना का निर्माण करना चाहिये।

प्रबन्धन एवं क्रियान्वयन:-शैक्षिक नियोजन के लिये जितना महत्वपूर्ण चरण कार्य योजना बनाना है उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण उक्त योजना का विधिवत प्रबन्धन एवं क्रियान्वयन करना है। क्रियान्वयन के समय की गई त्रुटि पूरी योजना को अस्त-व्यस्त कर सकती है। अतः हमें शैक्षिक नियोजन के इस चरण में समस्त सहभागियों को सचेत रखना चाहिये। प्रबन्धन एवं क्रियान्वयन को शैक्षिक नियोजन की आत्मा भी कहा जा सकता है।

पुनरीक्षण/मूल्यांकन:-शैक्षिक नियोजन प्रक्रिया का यह अन्तिम चरण है। इस चरण में हम प्रक्रिया के समस्त चरणों का समय-समय पर पुनरीक्षण करते रहते हैं और बदली हुई परिस्थितियों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी करते हैं।

17.4 शैक्षिक प्रबन्धन:-

प्रायः प्रबन्धन शब्द को अर्थशास्त्र अथवा वाणिज्य का विषय माना जाता है। किन्तु यह धारणा भ्रामक है। वस्तुतः प्रबन्धन जीवन के प्रत्येक चरण एवं प्रत्येक क्षेत्र का आवश्यक तत्व है। जीवन के जिस क्षेत्र में हम प्रबन्धन की बात करते हैं प्रबन्धन उसी क्षेत्र का विषय हो जाता है जैसे वित्त प्रबन्धन, समय प्रबन्धन, संसाधन प्रबन्धन, शैक्षिक प्रबन्धन आदि।

प्रबन्धन का अर्थ:-

“जेम्स लुण्डे” ने प्रबन्धन को परिभाषित करते हुए लिखा है “ प्रबन्धन मुख्य रूप से किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिये प्रयासों को नियोजित, समन्वित, अभिप्रेरित एवं नियन्त्रित करने की कला है।”

Management is principally an art of Planning, Organizing, Coordinating, Motivating, the task and efforts of other Persons to realize a specific objective.

प्रबन्धन की उक्त परिभाषा तथा अन्य विद्वानों के विचारों का अध्ययन करने के पश्चात् हम जान जाते हैं कि प्रबन्धन एक ऐसी कला है जिसमें वैज्ञानिक पद्धतियों का पालन करते हुए व्यक्तियों से कार्य लिया जाता है। कार्य लेने की इस प्रक्रिया में नियोजन, संगठन, प्रशासन, निर्देशन एवं नियन्त्रण सम्मिलित हैं। प्रबन्धन की प्रक्रिया में प्रबन्धक को मानवीय, भौतिक एवं आर्थिक संसाधनों का प्रबन्धन करना होता है।

शैक्षिक प्रबन्धन का अर्थ:-

शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। व्यक्ति के सन्दर्भ में यह प्रक्रिया व्यक्ति के जीवन पर्यन्त चलती है तथा राष्ट्र एवं समाज के सन्दर्भ में यह प्रक्रिया राष्ट्र एवं समाज के जीवन पर्यन्त चलती है। जीवन पर्यन्त चलने वाली इस प्रक्रिया की व्यवस्था करने हेतु प्रशासक के रूप में निर्णय लेने वाले एक व्यक्ति अथवा संस्था की आवश्यकता होती है।

शिक्षा से सम्बन्धित विविध प्रकार के कार्यों के सम्बन्ध में निर्णय लेना, उन निर्णयों को लागू करना तथा निर्णय से प्राप्त परिणाम की जिम्मेदारी लेना शैक्षिक प्रबन्धन कहलाता है। एक अच्छे शैक्षिक प्रबन्धन के अन्तर्गत हम उपलब्ध न्यूनतम संसाधनों के उपयुक्ततम उपयोग के द्वारा अधिकतम श्रेष्ठ परिणामों को प्राप्त करने का प्रयास

करते हैं। शैक्षिक प्रबन्धन की इस प्रक्रिया में मानव रूपी संसाधनों का सर्वश्रेष्ठ विकास करने का प्रयास किया जाता है।

शैक्षिक प्रबन्धन मूल रूप से एक उद्देश्यपूर्ण व्यावहारिक क्रिया है। इस क्रिया में हम उपलब्ध संसाधनों का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग करके मानव को समाज की अपेक्षाओं और आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने का प्रयास करते हैं।

शैक्षिक प्रबन्धन के घटक :-

“शैक्षिक प्रबन्धन” शैक्षिक नियोजन की अपेक्षा जटिल प्रक्रिया है। वास्तव में ‘शैक्षिक नियोजन’ ‘शैक्षिक प्रबन्धन’ का एक घटक है। ‘शैक्षिक प्रबन्धन’ एक कार्य न होकर विविध कार्यों का जटिल समूह है। इसीलिए इसमें एक प्रबन्धक न होकर प्रबन्धन कार्य की समग्र व्यवस्था के लिये प्रबन्धकों का एक समूह सम्मिलित रूप से अपने कार्यों का निष्पादन करता है। शैक्षिक प्रबन्धन के विविध घटक निम्नांकित हैं -

शैक्षिक नियोजन:-

‘शैक्षिक नियोजन’ ‘शैक्षिक प्रबन्धन’ का सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक है यह शैक्षिक प्रबन्धन का प्रथम चरण भी है। शैक्षिक नियोजन के बिना शैक्षिक प्रबन्धन का कार्य आरम्भ ही नहीं किया जा सकता।

शैक्षिक प्रबन्धन के इस सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक शैक्षिक नियोजन पर हम पीछे के पृष्ठों में पर्याप्त चर्चा कर चुके हैं। अतः यहां इस विषय पर अधिक चर्चा की आवश्यकता नहीं है।

शैक्षिक संगठन:-

शैक्षिक संगठन शैक्षिक प्रबन्धन का द्वितीय चरण है। ‘संगठन’ शब्द को परिभाषित करते हुए इसे हम ‘व्यवस्थित ढांचा’ कहकर सम्बोधित कर सकते हैं। संगठन के द्वारा हम व्यवस्था को विभाजित और व्यवस्थित कर सकते हैं। ‘लूथर गुलिक’ संगठन को परिभाषित करते हुए लिखते हैं -

संगठन सत्ता का औपचारिक ढांचा है, जिसके द्वारा किसी औपचारिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कार्यों को विभाजित तथा निर्धारित किया जाता है और उनका समन्वय किया जाता है।

शैक्षिक नियोजन को कार्यरूप में परिणित कर शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये एक संगठन की आवश्यकता होती है जिसे हम शैक्षिक संगठन कहते हैं। यद्यपि भारत का शैक्षिक संगठन बहुत पुराना है तथापि अपनी परिवर्तनशील प्रकृति के कारण यह आज भी नवीन है।

शैक्षिक संगठन औपचारिक व अनौपचारिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। औपचारिक संगठन व्यवस्थित होता है तथा सत्ता द्वारा गठित एवं मान्यता प्राप्त होता है। इसमें प्रत्येक स्तर पर अधिकार एवं उत्तरदायित्व स्पष्टतः परिभाषित होते हैं। मंत्रालय एवं सचिवालय द्वारा लिये गए निर्णयों के अनुपालन के लिये नीचे के स्तर पर अधिकारी एवं कार्यकर्ता उत्तरदायी होते हैं। अनौपचारिक शैक्षिक संगठन का आधार

व्यक्तिगत एवं सामाजिक सम्बन्ध होते हैं। ये सम्बन्ध किसी भी प्रकार के नियमों से बंधे हुए नहीं होते। इस पर भी परस्पर अन्योन्याश्रित होने के कारण अनौपचारिक शैक्षिक संगठन शिक्षा के क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। अनौपचारिक संगठन अनेक प्रकार से औपचारिक शैक्षिक संगठन के कार्यों को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। इसके लिये प्रायः अनौपचारिक सम्बन्धों में जुड़े हुए व्यक्ति बिना किसी फल की प्रत्याशा में अपना कार्यभार बढ़ाकर औपचारिक शैक्षिक संगठन की कार्यप्रणाली को सरल बना देते हैं।

शैक्षिक प्रशासन:-

अपने शाब्दिक अर्थों में शैक्षिक प्रशासन वह व्यवस्था है जिसमें शिक्षा व्यवस्था का सुचारू संचालन किया जाता है। शैक्षिक प्रशासन को शिक्षा पर शासकीय नियन्त्रण के रूप में भी देखा जा सकता है। शिक्षा प्रशासन का सम्बन्ध शैक्षिक नीति, शैक्षिक नियोजन, शैक्षिक निर्देशन आदि से होता है। शैक्षिक प्रशासन को हम 'वाहय प्रशासन' एवं 'आन्तरिक प्रशासन' दो भागों में बांट सकते हैं। वाहय प्रशासन के अन्तर्गत शैक्षिक नियन्त्रण यथा नियम, नीति, निर्देश आदि एवं आन्तरिक प्रशासन के अन्तर्गत आन्तरिक व्यवस्था से सम्बन्धित निर्णयों को रखा जा सकता है। शिक्षाविद् रामबाबू गुप्त के अनुसार-

“शैक्षिक प्रशासन का तात्पर्य शिक्षा प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने वाली उस व्यवस्था से है जिसके अन्तर्गत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से काम करने वाले व्यक्तियों, विचारों एवं प्रयासों में सामंजस्य या सम्बन्ध स्थापित किया जाता है और भौतिक तत्व एवं शिक्षा सम्बन्धी अन्य साधनों का इस प्रकार उपयोग किया जाता है कि छात्रों में मानवीय गुणों का विकास प्रभावशाली ढंग से हो।”

इनसाइक्लोपीडिया आफ एजुकेशन रिसर्च के अनुसार -

“शैक्षिक प्रशासन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कार्यकर्ताओं के प्रयासों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है तथा उपयुक्त सामग्री का मानवीय गुणों का विकास प्रभावशाली ढंग से करने के लिये प्रयोग में लाया जाता है।”

Educational Administration is the Process of integrating the efforts of personal and of utilizing appropriate material in such a way as to promote effectively the deployment of human qualities. It is not concerned only with the development of children and youth but also with the growth of adults and particularly with the growth of school personnel.

शैक्षिक निर्देशन:-

शैक्षिक निर्देशन भी शैक्षिक प्रबन्धन का एक महत्वपूर्ण घटक है। शैक्षिक प्रबन्धन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान में शैक्षिक निर्देशन सहायक है। शैक्षिक प्रबन्धन के अन्तर्गत सेवाएँ सतत् रूप से चलती रहती हैं। ये सेवाएँ अधिकारी स्तर से न केवल प्राचार्य/प्रधानाचार्य स्तर तक, अपितु शिक्षकों के स्तर

तक सर्वत्र व्याप्त हैं। अपने पाठ्यक्रम में अन्यत्र शैक्षिक निर्देशन के विषय में आप विस्तार से अध्ययन कर चुके हैं। अतः यहाँ इतना संकेत पर्याप्त है।

शैक्षिक नियन्त्रण:-

शैक्षिक प्रबन्धन का यह अन्तिम घटक अत्यधिक महत्वपूर्ण है। केन्द्र सरकार राज्य सरकार स्थानीय निकाय, प्रबन्धतन्त्र व समाज मिलकर शैक्षिक नियन्त्रण का कार्य करते हैं। शैक्षिक नियोजन व 'शैक्षिक नियन्त्रण' 'शैक्षिक प्रबन्धन' के दो सिरे हैं। इनके द्वारा सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था को व्यवस्थित व सन्तुलित किया जाता है। सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था को अनुशासित करने का कार्य 'शैक्षिक नियन्त्रण' के माध्यम से ही किया जाता है। इस कार्य को करने में लिए शिक्षा मंत्रालय, शिक्षा निदेशालय व शिक्षा सचिवालय का सदैव ही सक्रिय एवं जागरूक रहना अनिवार्य है। केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा पारित अनेक अधिनियम भी शैक्षिक नियन्त्रण का कार्य करते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में समय-समय पर किये जाने वाले अनुसन्धान कार्य भी शैक्षिक नियन्त्रण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। शिक्षा संस्थानों, केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर अध्यापकों को दिया जाने वाला प्रशिक्षण भी 'शैक्षिक नियन्त्रण' में सहायक होता है। इसी प्रकार केन्द्र व राज्य सरकार के आनुषांगिक संगठन आर्थिक अनुदान के माध्यम से 'शैक्षिक नियन्त्रण' का कार्य करते हैं। शैक्षिक नियन्त्रण के द्वारा कार्य संचालन में आने वाली कठिनाइयों, अपव्यय तथा असन्तुलन को दूर किया जाता है समय-समय पर केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा गठित विभिन्न आयोग भी 'शैक्षिक नियोजन' एवं 'शैक्षिक नियन्त्रण' के गुरुतर दायित्व को भली-भाँति संपन्न करते हैं।

17.5 शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयाम

विभिन्न विद्वानों ने शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयाम निम्नवत् निर्धारित किये हैं।

अन्तः शैक्षिक विस्तार आयाम:-

इस आयाम के अन्तर्गत हम यह जानने का प्रयास करते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में किसी एक लक्ष्य विशेष को पाने के लिये कितनी मात्रा में व्यवस्था की आवश्यकता है। इस अनुमान के आधार पर हम भविष्य की आवश्यकता का आकलन करते हैं। तत्पश्चात् लक्ष्य विशेष की प्राप्ति हेतु समुचित नियोजन एवं प्रबन्धन करते हैं। यद्यपि नियोजन एवं प्रबन्धन का यह आयाम बहुत सरल एवं स्पष्ट है तथापि इसकी अनेक सीमाएँ भी हैं। जैसे यह आयाम सम्पूर्ण शैक्षिक व्यवस्था पर कार्य न करके किसी एक लक्ष्य का आकलन करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण शैक्षिक व्यवस्था के लिये यह एक लम्बी और उबाऊ प्रक्रिया में बदल जाता है। दूसरे यह आयाम केवल भौतिक एवं मानव संसाधनों के परिकलन व आवश्यकता के आकलन का कार्य करता है। मानव संसाधनों की सामर्थ्य एवं योग्यता में वृद्धि के मूल्यांकन का कोई पैमाना इस आयाम में उपलब्ध नहीं है।

जनांकिकीय प्रक्षेपण आयाम :-

यह उपागम भावी शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन के लिये जनसंख्या का अनुमान लगाने में सहायता का कार्य करता है। उदाहरणार्थ यह आयाम इस बात का अनुमान लगाता है कि भविष्य में एक निश्चित समय के

बाद एक निश्चित क्षेत्र में जनसंख्या की स्थिति क्या होगी? उस जनसंख्या की शैक्षिक आवश्यकताएँ क्या-क्या होंगी? तथा उनकी आवश्यकता पूर्ति के लिये कितने अध्यापकों की आवश्यकता होगी?

स्कूल मैपिंग :-

शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन का यह आयाम जनांकिकीय प्रक्षेपण आयाम का उन्नत रूप है। इस आयाम में पूर्वोक्त आयाम के अतिरिक्त विद्यालयों की भौगोलिक एवं सामाजिक स्थिति का भी आकलन किया जाता है। इस आयाम में यह प्रयास किया जाता है कि 1. विद्यालय ऐसे स्थान पर स्थित हो जहाँ अधिकतम जनसंख्या उनसे लाभान्वित हो सके। 2. विद्यालय ऐसे स्थान पर स्थित हो जहाँ परिवहन के अधिकतम साधन सहज ही उपलब्ध हों। 3. विद्यालय का सामाजिक वातावरण राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुकूल हो।

मानव संसाधन विकास आयाम:-

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह आयाम मानव संसाधन के विकास को अपना मुख्य लक्ष्य बनाता है। किसी भी समाज अथवा राष्ट्र का भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक अथवा चारित्रिक विकास उस समाज अथवा राष्ट्र के मानव संसाधन का समुचित विकास करने पर निर्भर करता है। शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धक का यह आयाम अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। मानव संसाधन विकास उपागम के अन्तर्गत इस बात का आकलन किया जाता है कि राज्य के किस क्षेत्र में किस प्रकार के मानव संसाधन की कितनी मात्रा में आवश्यकता है। उदाहरणार्थ यह आयाम आकलन करता है कि चिकित्सा के क्षेत्र में भविष्य की आवश्यकताएँ क्यो होंगी तथा उसके लिये हमें किस-किस प्रकार के कितने चिकित्सक चाहिये। इसी प्रकार इंजीनियर, प्रबन्धक, व्यवसायी, शिक्षक, प्रशासक आदि की आवश्यकताओं का आकलन किया जाता है। तत्पश्चात् इस आयाम में शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत उपरोक्त मानव संसाधनों का विकास किस प्रकार से किया जाएगा। किस-किस प्रशिक्षण के लिये कितने प्रशिक्षकों की आवश्यकता होगी; कहाँ कितने नए प्रशिक्षण संस्थान खोलने होंगे तथा कितने पुराने प्रशिक्षण संस्थानों का उन्नतिकरण करना होगा आदि बातों का नियोजन किया जाता है इसी प्रकार उत्तम नियोजन में लगने वाला समय संसाधनों की व्यवस्था तथा आर्थिक आवश्यकताओं का आकलन तथा पूर्ति की व्यवस्था भी नियोजन आयाम के अन्तर्गत कर ली जाती है तत्पश्चात् 'मानव संसाधन विकास का प्रबन्धन आयाम' अपने कार्य को आरम्भ करता है तथा नियोजन को लागू करने से लेकर उसके प्रशासन, निर्देशन एवं उस पर नियन्त्रण करने तक की प्रक्रिया प्रबन्धन के आयाम के अन्तर्गत संपन्न की जाती है पुनश्च नियोजन एवं प्रबन्धन का यह आयाम अति महत्वपूर्ण आयाम है।

सामाजिक माँग आयाम:-

शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन का यह उपागम मानव संसाधन विकास उपागम से भिन्न है। जहाँ एक ओर मानव संसाधन विकास उपागम में मानव संसाधन की प्रत्येक क्षेत्र में अपेक्षित माँग के अनुकूल नियोजन एवं प्रबन्धन पर बल दिया जाता है। वहीं दूसरी ओर सामाजिक माँग उपागम में शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन का वास्तविक माँग से कोई सरोकार नहीं होता।

इस उपागम में केवल इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि किसी क्षेत्र विशेष की वर्तमान समय में समाज कितनी माँग कर रहा है। स्वतन्त्रता से पूर्व एवं स्वतन्त्रता के संक्रमण काल में भारतीय समाज शैक्षिक

संपन्नता के प्रति जागरूक नहीं था। किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में शैक्षिक माँग बढ़ी है। इस उपागम के अन्तर्गत क्षेत्र विशेष में शैक्षिक जागरूकता अथवा सामाजिक माँग को आधार बनाते हुए शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन किया जाता है। सामाजिक माँग उपागम का वास्तविक माँग से कोई सम्बन्ध न होकर सामाजिक माँग से सीधा सम्बन्ध होता है जैसे वर्तमान समय में माँग और पूर्ती की चिन्ता किये बिना प्रत्येक अभिभावक अपने पाल्य को इंजीनियर अथवा डॉक्टर बनाना चाहता है। यही कारण है कि इन दोनों ही क्षेत्रों में बेरोजगारी बढ़ी तेजी से फैलती जा रही है। इस उपागम के कारण मानव विकास के अनेक क्षेत्र उपेक्षित भी रह जाते हैं।

प्राप्ति दर अथवा विनियोग आयाम:-

शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन का यह आयाम अपने नाम के अनुकूल शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय को विनिवेश मानता है तथा उससे प्रतिलाभ की अपेक्षा करता है। इस आयाम के अनुसार शैक्षिक तन्त्र देश के अर्थतन्त्र को समृद्ध करने हेतु श्रेष्ठ मानव संसाधन तैयार करता है तथा अर्थतन्त्र इस मानव संसाधन का उपयोग करके राष्ट्र को समृद्ध बनाता है। इस आयाम के अनुसार 'शिक्षा' राष्ट्र का सामाजिक दायित्व न होकर राष्ट्र की समृद्धि का सशक्त साधन है। अतः इसे गौण विषयों में न रखकर सरकार के सबसे प्रमुख कर्तव्यों में रखना चाहिये।

यद्यपि शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन का यह आयाम एक महत्वपूर्ण आयाम है तथापि शिक्षित बेरोजगारी की दशा में यह आयाम असफल हो जाता है। भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थितियों में इस असफलता को स्पष्ट देखा जा सकता है। 10-20 लाख रूपया खर्च करने के बाद इंजीनियरिंग आदि की शिक्षा प्राप्त करके विद्यार्थी 2-3 लाख रूपये प्रति वर्ष की दर से यदि आय प्राप्त करते हैं तो यह धन लागत पर मिलने वाले ब्याज से भी कम है किन्तु वर्तमान समय में राष्ट्र के प्रत्येक कोने में शिक्षित व्यक्तियों की यह दशा देखी जा सकती है। यह आयाम शैक्षिक निवेश में प्राप्ति दर के अनुकूल परिवर्तन का समर्थन करता है जो महत्वपूर्ण होते हुए भी भारत जैसे देश में सम्भव नहीं है।

सामाजिक न्याय आयाम:-

इस आयाम को हम सामाजिक विकास आयाम के नाम से भी सम्बोधित कर सकते हैं। इस आयाम में समग्र समाज के विकास के लिये शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन किया जाता है। यह आयाम इस बात का ध्यान रखता है कि समाज के किसी वर्ग विशेष के साथ अन्याय न हो। भारतवर्ष में महिला तथा समाज के अन्य वर्गों का शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रकार के प्रवेश व नियुक्ति के लिए आरक्षण इसी आयाम के अन्तर्गत प्रदान किया जाता है। इस आयाम के अन्तर्गत शिक्षा और समाज परस्पर अन्योन्याश्रित हो जाते हैं अर्थात् सामाजिक विकास शैक्षिक विकास का कार्य करता है तथा शिक्षा समाज को विकसित करने में योगदान देती है। जैसे सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य सामाजिक न्याय है इसी सामाजिक न्याय को प्राप्त करने के लिये 'शैक्षिक नियोजन' एवं प्रबन्धन करते समय एक निश्चित आयु वर्ग के लिये निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया। मध्याह्न भोजन तथा शिक्षा के क्षेत्र में चलने वाली इस प्रकार की अन्य अनेक महत्वपूर्ण योजनाएँ सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए चलाई जा रही है।

17.6 प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयाम

पीछे के पृष्ठों में हमने शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन के जिन आयामों का वर्णन किया है उनमें से कोई भी आयाम स्वयं में पूर्ण नहीं है। इतना ही नहीं हम निश्चित रूप से शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयामों की संख्या भी निर्धारित नहीं कर सकते। पूर्व वर्णित आयामों के अतिरिक्त अन्य आयाम भी हो सकते हैं। अथवा एक से अधिक आयामों का सम्मिश्रण भी किया जा सकता है।

आगे के पृष्ठों में हम भारत में प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च स्तर पर शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयामों की संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

एक ओर भारतीय शिक्षा व्यवस्था विभिन्न आक्रमणकारियों के लिये प्रयोगशाला बनी रही तो दूसरी ओर यही व्यवस्था उनके स्वार्थों की पूर्ति का साधन। हिन्दू राजाओं से लेकर अंग्रेज सरकार तक किसी ने भी भारतीय शिक्षा व्यवस्था की वास्तव में चिन्ता नहीं की; फलस्वरूप भारत में प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था भी दयनीय स्थिति में बनी रही। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में प्राथमिक शिक्षा की भावी योजना बनाते हुए “सामाजिक न्याय आयाम” के अन्तर्गत 10 वर्षों में 14 वर्ष तक के बालकों के लिये निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव किया तथा इसके लिये विभिन्न मर्दों से धन आवंटन की योजना भी बनायी। उक्त कार्य का प्रबन्धन करने के लिए 1957 में अखिल भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा परिषद् तथा 1961 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् का गठन किया गया। प्राथमिक शिक्षा की योजना एवं प्रबन्धन को समय-समय पर अवलोकित व संशोधित करने की दृष्टि से 1964 में शिक्षा आयोग का गठन तथा 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति को प्रस्तुत किया गया।

संविधान बनने के बाद 36 वर्षों तक निरन्तर डगमगाते कदमों से चलते हुए भारत सरकार अपने पूर्व निर्धारित लक्ष्यों से बहुत दूर बनी रही। अतः योजना एवं प्रबन्धन के समस्त कार्यक्रमों को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के द्वारा परिवर्तित कर दिया गया। उक्त नीति के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा हेतु 1987-88 से “आपेशन ब्लैक बोर्ड” नामक अभियान आरम्भ किया गया जो प्राथमिक विद्यालयों में मानवीय व भौतिक संसाधनों की पूर्ति करने वाला था। 1994 में कच्छ जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम भी चलाया गया। यह कार्यक्रम आरम्भ में केवल 7 राज्यों में चलाया गया था तथा यह धीरे-धीरे भारत के अनेक अन्य राज्यों में भी चलाया जाने लगा। बच्चों के लिए विद्यालयों में पुष्टाहार की योजना लागू करने के बाद भी भारत सरकार आज तक ‘सामाजिक न्याय’ के इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकी।

भारत के राष्ट्रपिता कहे जाने वाले तथा महात्मा की उपाधि से विभूषित शिक्षाविद् मोहनदास करमचन्द गाँधी ने अपने दीर्घकालिक अनुभव एवं अनेक प्रयोगों के पश्चात् स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व ही “वर्धा शिक्षा योजना” के नाम से ख्यात बुनियादी शिक्षा की योजना भारतवर्ष को प्रदान कर दी थी। किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि प्राथमिक शिक्षा के लिये अगणित योजनाएँ बनाकर उनमें बार-बार संशोधन करके तथा अपार धन व्यय करके भी आज तक हम अपने लक्ष्य को नहीं पा सके हैं। वस्तुतः केवल योजना बनाने अथवा धन व्यय कर देने मात्र

से ही कोई लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। अपितु इसके लिये धन का पक्का होना, लक्ष्य की ओर ईमानदारी से कदम बढ़ाना, समर्पण की भावना होना तथा समुचित रीति से धन का व्यय करना अनिवार्य है।

17.7 माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयाम

स्वतंत्र भारत में माध्यमिक शिक्षा हेतु नियोजन का कार्य करने के लिये 1948 में 'तारा चन्द्र समिति' का गठन किया गया। ताराचन्द्र समिति ने उक्त कार्य हेतु एक आयोग गठित करने का सुझाव दिया। इसी बीच 1948 में गठित राधाकृष्णन आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के नियोजन एवं प्रबन्धन हेतु अनेक उपयोगी सुझाव प्रदान किये।

स्वतंत्रता से काफी पहले 1923 में ही भारत में केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् का गठन किया जा चुका था जो स्वतंत्रता के बाद केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड कहलाया। यह बोर्ड सम्पूर्ण भारत में एक जैसी माध्यमिक शिक्षा प्रदान करता है। इसे हम शिक्षा का सामाजिक समता आयाम कह सकते हैं। माध्यमिक शिक्षा के नियोजन एवं प्रबन्धन के लिये 1952 में माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा 1964 में कोठारी आयोग का गठन किया गया। 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के माध्यम से माध्यमिक शिक्षा का पुनः नियोजन किया गया तथा 1986 की शिक्षा नीति में इस योजना को और अधिक प्रभावशाली बनाया गया।

भारतवर्ष की माध्यमिक शिक्षा में 'सामाजिक न्याय आयाम' के साथ-साथ 'सामाजिक माँग आयाम' का भी ध्यान रखा गया तथा अन्य अनेक आयामों के मिश्रण के साथ भारत के किशोरों में लोकतांत्रिक नागरिकता, व्यावसायिक कुशलता एवं नेतृत्व शक्ति का विशेष विकास करते हुए बालक का सर्वांगीण विकास करना शिक्षा का उद्देश्य निर्धारित किया गया।

शैक्षिक प्रबन्धन के लिये 'केन्द्रीय शिक्षा संस्थान' 'केन्द्रीय पाठ्यपुस्तक अनुसंधान ब्यूरो' तथा 'राष्ट्रीय अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्' आदि ने अपना-अपना कार्य आरम्भ कर दिया। भारत की सैन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सैनिक स्कूल खोले गए। इसी प्रकार केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों पर आश्रित बच्चों को उत्तम शिक्षा प्रदान करने के लिये 'केन्द्रीय विद्यालय संगठन' की स्थापना की गई।

प्राथमिक शिक्षा की ही भाँति माध्यमिक शिक्षा में भी अनेक बालक विविध कारणों से अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर पाते। ऐसे विद्यार्थियों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए "राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय" की स्थापना की गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अन्तर्गत "शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन" को अनेक नवीन आयाम प्रदान किये गए। माध्यमिक शिक्षा का आदर्श रूप समाज के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये 1986 में "नवोदय विद्यालय" खोले गए। इन विद्यालयों में ग्रामीण पृष्ठभूमि के प्रतिभाशाली बच्चों को प्रवेश देकर उन्हें शिक्षा प्रदान की जाती है। इन आवासीय विद्यालयों के कुछ बच्चे कम से कम 1 वर्ष दूर के राज्यों में अवश्य बिताते हैं। इन विद्यालयों में शिक्षा का समस्त व्यय सरकार वहन करती है। इसे हम शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन का "प्रतिभा संरक्षक एवं सामाजिक समरसता आयाम" कह सकते हैं।

सामाजिक न्याय आयाम के अन्तर्गत माध्यमिक स्तर पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अल्पसंख्यकों के लिये शिक्षा की विशेष व्यवस्था की गई है। इसी आयाम के अन्तर्गत राष्ट्रीय छात्रवृत्ति योजना भी लागू की गई है।

माध्यमिक शिक्षा की पाठ्यचर्या में भाषा, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, ललित कला, खेलकूद, शारीरिक शिक्षा आदि समस्त विषयों की शिक्षा का प्रावधान किया गया है।

अभी भी भारत में माध्यमिक शिक्षा को लम्बी यात्रा तय करनी है। इसे अपने उद्देश्यों को स्पष्ट करना है। पाठ्यचर्चा को और अधिक उपयुक्त बनाना है, पूरे देश की माध्यमिक शिक्षा एक जैसी की जानी है, शिक्षकों की कमी को दूर करते हुए उन्हें प्रशिक्षण प्रदान करना है तथा परीक्षा एवं मूल्यांकन प्रणाली में पर्याप्त सुधार करने हैं।

17.8 उच्च स्तर पर शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयाम

19 विश्वविद्यालयों और 452 महाविद्यालयों के साथ स्वतन्त्र भारत में कदम रखते ही भारत सरकार ने उच्च स्तरीय शिक्षा के नियोजन एवं प्रबन्धन के लिये सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं यशस्वी शिक्षक डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन 1948 में किया। यह आयोग विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के नाम से जाना जाता है। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने भारत में उच्च शिक्षा के लिये अद्वितीय आयाम अपनाया। उक्त आयोग ने भारत में उच्च शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करते हुए भारतीय युवाओं को शारीरिक व मानसिक दृष्टि से स्वस्थ बनाने, उनके आनुवांशिक गुणों का विकास करने, उनमें दूरदर्शिता, बुद्धिमानी और विवेक का संचार करने ज्ञान का खोजी व उत्तम प्रबन्धक बनाने, तथा चारित्रिक एवं सांस्कृतिक विकास करने को प्राथमिकता प्रदान की।

उच्च शिक्षा के नियोजन व प्रबन्धन की निरन्तर समीक्षा के लिये भारतीय विश्वविद्यालय संघ की स्थापना की गई जहाँ वर्ष में दो बार अपनी नियमित बैठकों के माध्यम से सभी विश्वविद्यालयों के कुलपति प्रवेश, पाठ्यक्रम, परीक्षा प्रणाली अनुसंधान आदि कार्यों की निरन्तर समीक्षा करते हैं। उच्च शिक्षा में शैक्षिक नियोजन हेतु 1953 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का गठन किया गया। उच्च शिक्षा में शैक्षिक अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहन देने एवं सेवाकाल में उच्च शिक्षा के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने की दृष्टि से 1961 में “शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्” की स्थापना की गई।

1964 में गठित शिक्षा आयोग, 1968 तथा 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी उच्च शिक्षा के नियोजन एवं प्रबन्धन पर विस्तार से चर्चा की गई है। इसी प्रकार इंदिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, तथा राजर्षि टन्डन मुक्त विश्वविद्यालय, उत्तरांचल मुक्त विश्वविद्यालय एकेडमिन स्टाफ कालेज, पाठ्यक्रम विकास केन्द्र आदि उच्च शिक्षा के नियोजन एवं प्रबन्धन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारत ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में किसी एक आयाम का अनुसरण करते हुए शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन नहीं किया है अपितु भारतीय उच्च शिक्षा के नियोजन एवं प्रबन्धन में पूर्व वर्णित अनेक आयामों का मिश्रित रूप अपनाया गया है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन को अभी पर्याप्त गति प्रदान करना बाकी है। भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अपार संभावनाएँ हैं। उच्च शिक्षा के दरवाजे निजी क्षेत्रों के लिये खुल जाने के पश्चात् हमें अपेक्षाकृत अधिक सजग एवं सावधान रहने की आवश्यकता है।

17.8 सारांश

व्यक्ति एवं समाज के विकास के लिये शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन अनिवार्य है। विद्यालय अथवा राज्यकी शिक्षा व्यवस्था की कार्य योजना बनाना 'शैक्षिक नियोजन'; एवं उक्त कार्य योजना को क्रियान्वित करने की प्रक्रिया "शैक्षिक प्रबन्धन" कहलाती है। शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन की प्रक्रिया अनेक चरणों में पूरी होती है। शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के अनेक आयाम हैं जिनमें से अन्तः शैक्षिक विस्तार आयाम जनांकिकीय प्रक्षेपण आयाम स्कूल मैपिंग, मानव संसाधन विकास आयाम, सामाजिक न्याय आयाम आदि प्रमुख आयाम हैं।

भारतवर्ष में शिक्षा के प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च स्तर पर शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन के ऊपर वर्णित आयामों में से अनेक आयामों को पूर्ण अथवा आंशिक रूप से मिश्रित करके भारतीय शिक्षा व्यवस्था एवं समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल आयाम प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

यद्यपि प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्वतन्त्र भारत में बहुत कार्य हुआ है तथा उचित शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के कारण भारत ने शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति की है तथापि विकासशील देश होने के कारण अभी भारत में शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के क्षेत्र में कार्य करने की अपार संभावनाएँ उपलब्ध हैं।

17.9 निबंधात्मक कार्य

1. 'शैक्षिक नियोजन' एवं 'शैक्षिक प्रबन्धन' को परिभाषित कीजिये।
2. "शैक्षिक नियोजन" एवं "शैक्षिक प्रबन्धन" के विविध आयामों की चर्चा कीजिये।
3. प्राथमिक/माध्यमिक अथवा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारत किन समस्याओं का सामना कर रहा है।
4. वर्तमान परिवेश में भारत की प्राथमिक/माध्यमिक अथवा उच्च, शिक्षा के लिये शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन का सर्वश्रेष्ठ आयाम निर्धारित कीजिये। अपने निर्णय के समर्थन में उपयुक्त तर्क भी प्रस्तुत कीजिये।

इकाई 18 राज्य में शैक्षिक प्रशासन

- 18.1 प्रस्तावना
- 18.2 उद्देश्य
- 18.3 राज्य के शैक्षिक प्रशासन सम्बन्धी दायित्व
 - 18.3.1 वित्त से सम्बन्धित
 - 18.3.2 नियम निर्माण से सम्बन्धित
 - 18.3.3 निरीक्षण से सम्बन्धित
 - 18.3.4 नियुक्ति से सम्बन्धित
 - 18.3.5 पाठ्यक्रम से सम्बन्धित
- 18.4 राज्य में शैक्षिक प्रशासन का ढाँचा
 - 18.4.1 मंत्रालय
 - 18.4.2 शिक्षा सचिवालय
 - 18.4.3 शिक्षा निदेशालय
- 18.5 स्थानीय शिक्षा प्रशासन
- 18.6 राज्य की बेसिक शिक्षा का प्रशासनिक स्वरूप
 - 18.6.1 बेसिक शिक्षा मन्त्री
 - 18.6.2 बेसिक शिक्षा सचिवालय
 - 18.6.3 बेसिक शिक्षा निदेशालय
- 18.7 बेसिक शिक्षा प्रशासन के कार्य
- 18.8 माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक प्रशासन
- 18.9 माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के कार्य
- 18.10 सारांश

18.1 प्रस्तावना

शिक्षा सभी मनुष्यों का जन्म सिद्ध अधिकार माना जाता है। आज के प्रगतिशील तथा आधुनिक समाज में शिक्षा की परिभाषा भी बदल गई है। प्रतियोगिता के इस युग में वास्तविक जीवन के अनुभवों को ही केवल शिक्षा नहीं माना जाता है। आज के युग में स्कूली शिक्षा का भी महत्व है। आज रोटी, कपड़ा और मकान की

तरह स्कूली शिक्षा भी मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं का हिस्सा बन गई है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए संविधान के निर्माताओं ने भारत के संविधान में शिक्षा को सभी भारतीय नागरिकों की मूलभूत आवश्यकता घोषित करते हुए इसे सभी नागरिकों का मौलिक अधिकार माना है, तथा देश की सरकार को यह कार्य भी सौंपा है कि वह यह सुनिश्चित करे कि सभी नागरिकों को समय तथा जरूरत के अनुसार उचित तथा पूरी शिक्षा सुनिश्चित हो।

अब यह देश की सरकार के कर्तव्यों में से एक है कि वह सभी नागरिकों को उचित स्कूली शिक्षा प्रदान करे तथा यह सुनिश्चित भी करे कि इस क्रम में संसाधनों की कमी न हो तथा कोई भी नागरिक अपने इस अधिकार से वंचित न रह जाये।

इस दिशा में आजादी के बाद से अब तक भारत पर शासन करने वाली प्रत्येक सरकार ने ठोस तथा सार्थक कदम उठाये हैं। आजादी के बाद से ही प्रत्येक सरकार इस कोशिश में लगी रही है कि भारतीय समाज के प्रत्येक नागरिक को उचित शिक्षा प्रदान की जा सके तथा समाज में व्याप्त निरक्षरता को समाप्त किया जा सके।

परन्तु इतने बड़े देश में शिक्षा का आयोजन करना सरल कार्य नहीं है। भारत सरकार ने अनेक संशोधनों, नीतियों, समितियों और सुधारों के माध्यम से शिक्षा के स्तर को ऊपर उठाने तथा उसकी पहुँच को विस्तृत करने का प्रयत्न किया है। परन्तु इन संशोधनों तथा नीतियों का क्रियान्वयन बिना कुशल प्रशासन तथा नियोजन के सम्भव नहीं है। केन्द्र में बैठी सरकार के लिए इतने बड़े देश में शिक्षा का प्रशासन स्वयं करना सम्भव नहीं है, अतः कार्य का विभाजन करते हुए प्रत्येक राज्य में शिक्षा का प्रशासन तथा संचालन राज्य सरकारों के कर्तव्यों में शामिल किया गया है। केन्द्र सरकार समय तथा आवश्यकतानुसार शिक्षा नीतियों में बदलाव तथा सुधार करती है, तथा यह राज्य सरकार की जिम्मेदारी होती है कि वह अपने राज्य में उन नीतियों का क्रियान्वयन सुनिश्चित करे ताकि शिक्षा का संचालन तथा प्रसार सुचारू रूप से चलता रहे।

इस यूनिट में हम एक प्रदेश में शैक्षिक प्रशासन के ढाँचे तथा अलग-अलग स्तर पर उनके उत्तरदायित्वों तथा भूमिका के विषय में अध्ययन करेंगे।

18.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जान सकेंगे कि शैक्षिक प्रशासन का विभाजन किन-किन स्तरों पर किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्

- हम राज्य के शिक्षा सम्बन्धी उत्तरदायित्वों के बारे में जान सकेंगे।
- हम इस बात से अवगत हो सकेंगे कि राज्य में शैक्षिक प्रशासन का ढाँचा कितने स्तरों पर विभाजित है।
- हम शिक्षा मंत्रालय, शिक्षा सचिवालय तथा शिक्षा निदेशालय के कार्यों से अवगत हो सकेंगे।
- हम स्थानीय स्तर पर शैक्षिक प्रशासन के कार्य क्षेत्र से अवगत हो सकेंगे।
- हम राज्य की बेसिक शिक्षा के ढाँचे से अवगत हो सकेंगे।

- हम माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक प्रशासन तथा माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के कार्यों से अवगत हो सकेंगे।

18.3 राज्य के शैक्षिक प्रशासन सम्बन्धी दायित्व

किसी भी राष्ट्र की दिशा, दशा एवं गति का निर्धारण शिक्षा करती है। कोई राज्य किस दिशा में किस गति से आगे बढ़ेगा तथा अपने राष्ट्र एवं विश्व में उसकी क्या स्थिति होगी यह उस राज्य की शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व शिक्षा से सम्बन्धित होता है।

एक राज्य में शैक्षिक प्रशासन के ढाँचे पर चर्चा करने से पूर्व हम उस राज्य के शिक्षा सम्बन्धी उत्तरदायित्वों को समझने का प्रयास करेंगे।

हम भली-भाँति जानते हैं कि भारत में शिक्षा समवर्ती सूची का विषय है यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र में अन्तिम अधिकार केन्द्र का है तथापि सामान्य परिस्थितियों में केन्द्र इस क्षेत्र में बहुत कम दखल करता है।

किसी भी राज्य के शिक्षा से सम्बन्धित दायित्वों को हम मुख्य रूप से चार भागों में बाँट सकते हैं-

वित्त से सम्बन्धित दायित्व।

नियम निर्माण से सम्बन्धित दायित्व।

निरीक्षण से सम्बन्धित दायित्व।

नियुक्ति से सम्बन्धित दायित्व।

पाठ्यक्रम से सम्बन्धित दायित्व।

18.3.1 वित्त से सम्बन्धित दायित्व

राज्य की समस्त व्यवस्थाओं के संचालन में वित्त की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वित्त के अभाव में किसी भी प्रकार की व्यवस्था का संचालन सम्भव नहीं है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में राज्य सरकार के वित्तीय दायित्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

राज्य की शिक्षा व्यवस्था प्रायः तीन स्तरों में विभाजित होती है-

प्राथमिक स्तर

माध्यमिक स्तर

उच्च स्तर

उपरोक्त तीनों स्तरों की शिक्षा व्यवस्था के लिए राज्य अनेक प्रकार से वित्तीय प्रबन्ध करता है। वित्त की व्यवस्था के लिए राज्य सरकार अपने संसाधनों के अतिरिक्त प्रमुख रूप से तीन प्रकार के स्रोतों का उपयोग करती है-

केन्द्रीय अनुदान

स्थानीय निकाय

निजी संस्थायें या व्यक्ति

प्रत्येक राज्य को केन्द्र सरकार के द्वारा पर्याप्त मात्रा में अनुदान मिलते हैं यह अनुदान देने के लिए केन्द्र सरकार की अनेक संस्थायें कार्य करती हैं। वर्तमान में मध्याह्न भोजन की व्यवस्था केन्द्र सरकार के अनुदान से लागू की जा रही है। इसी प्रकार UGC उच्च शिक्षा के क्षेत्र में राज्यों को भारी अनुदान प्रदान करता है।

18.3.2 नियम निर्माण से सम्बन्धित दायित्व:-

राज्य की शिक्षा व्यवस्था को चलाने के लिए नियमों एवं कानूनों की आवश्यकता पड़ती है। समय-समय पर इन नियमों में परिवर्तन भी करना पड़ता है। राज्य सरकार आवश्यकता के अनुसार समय-समय पर नियमों का निर्धारण एवं उनमें संशोधन करती रहती है।

18.3.3 निरीक्षण से सम्बन्धित दायित्व:-

राज्य में शिक्षा की विभिन्न संस्थायें ठीक प्रकार से कार्य कर रही हैं या नहीं यह जानने के लिए राज्य सरकार को निरीक्षण की व्यवस्था करनी होती है। राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों, वि०वि० आदि का निरीक्षण कराया जाता रहता है।

18.3.4 नियुक्ति से सम्बन्धित दायित्व:-

प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक स्थायी नियुक्तियों का दायित्व राज्य सरकार का है। अपने इस दायित्व की पूर्ति के लिए वह विभिन्न समितियों अथवा आयोगों को माध्यम बनाती है।

18.3.5 पाठ्यक्रम से सम्बन्धित दायित्व:-

यद्यपि उच्च स्तर पर पाठ्यक्रम निर्धारण का दायित्व राज्य सरकार ने विश्वविद्यालयों को दे रखा है तथापि प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम निर्धारण का दायित्व राज्य सरकार ने अपने पास ही रखा है। इसके लिए राज्य सरकार विशेषज्ञों की विभिन्न समितियाँ बनाती है।

18.4 राज्य में शैक्षिक प्रशासन का ढांचा

राज्य में शैक्षिक प्रशासन तीन स्तरों में विभाजित होता है।

मंत्रालय स्तर

सचिवालय स्तर

निदेशालय स्तर

18.4.1 मंत्रालय स्तर:-

राज्य शिक्षा मंत्रालय का मुख्य शिक्षा मंत्री होता है। यह एक केबिनेट स्तर का मंत्री होता है। इसकी सहायता के लिये शिक्षा राज्य मंत्री तथा उप मंत्री होते हैं। शिक्षा मंत्री जनता का प्रतिनिधि होता है, तथा राज्य विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी भी होता है। शिक्षा मंत्री की अनुपस्थिति में शिक्षा राज्य मंत्री या उप मंत्री उसके कार्यों की देखभाल करते हैं। शिक्षा मंत्री समग्र राज्य के शिक्षा विभागों तथा संस्थाओं का मुखिया होता है। शिक्षा मंत्री के कार्यों तथा उत्तरदायित्वों को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया जा सकता है -

1. वह समस्त राज्य की शिक्षा व्यवस्था का नेता होता है। राज्य की शिक्षा के लिये नेतृत्व प्रदान करना उसका उत्तरदायित्व होता है।
2. वह विधानसभा में उत्तरदायी होता है। शिक्षा के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्न चाहे वह संचालन या प्रशासन से सम्बन्धित हों या नीति निर्धारण से का उत्तर शिक्षा मंत्री को देना होता है।
3. राज्य में शिक्षा के प्रसार तथा शिक्षा के स्तर को ऊंचा बनाने के लिये विधान मण्डल को नीति निर्धारण तथा अन्य मामलों में सुझाव देने का कार्य भी शिक्षा मंत्री का होता है।
4. समस्त राज्य में शिक्षा का समन्वयन करना भी शिक्षा मंत्री का कार्य होता है। यह शिक्षा मंत्री का उत्तरदायित्व होता है कि वह शिक्षा के लिये उचित संसाधनों का प्रबन्ध करे तथा यह भी सुनिश्चित करे कि सभी संसाधनों का प्रयोग उचित रूप से हो सके।
5. राज्य के शैक्षिक कार्यक्रमों के प्रभावीपन का मूल्यांकन करना भी शिक्षा मंत्री का ही कर्तव्य होता है।
6. इसके अतिरिक्त राज्य के स्थानीय निकायों तथा निजी शिक्षा संस्थाओं को हर प्रकार की सहायता प्रदान करना भी शिक्षा मंत्री का ही कर्तव्य होता है।
7. शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान तथा शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान को बढ़ावा देना तथा सहयोग करना भी शिक्षा मंत्री का ही कर्तव्य होता है।

शिक्षा मंत्री तथा शिक्षा मंत्रालय के कार्यों के क्रियान्वयन में उनकी सहायता के लिये राज्य में दो अन्य अभिकरण भी होते हैं -

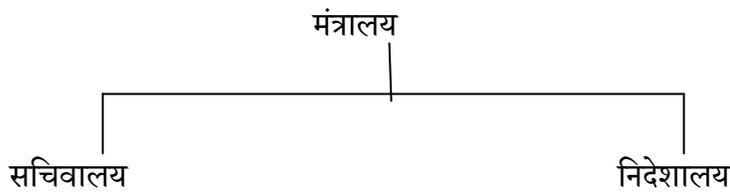
18.4.2 शिक्षा सचिवालय:-

शिक्षा सचिवालय राज्य शिक्षा विभाग की नीति निर्माण के लिये गठित की गई शाखा होती है। यह शिक्षा मंत्री को नीतियों के निर्माण में सहायता प्रदान करती है। इसका मुख्य अधिकारी शिक्षा सचिव होता है। इसके अधीन कुछ उप-सचिव तथा सहायक सचिव होते हैं। शिक्षा सचिव का सीधा सम्पर्क शिक्षा मंत्री से होता है। जैसे कि बताया जा चुका है कि शिक्षा सचिवालय का गठन हर राज्य में शिक्षा से सम्बन्धित नीति निर्माण से सम्बन्धित कार्यों के लिये किया जाता है, अतः केन्द्र की नीतियों तथा आदेशों को ध्यान में रखते हुए राज्य के लिए शिक्षा नीति का निर्माण करना तथा नीति निर्माण करते समय राज्य की आवश्यकता तथा संसाधनों की उपलब्धता का ध्यान रखना यह कार्य शिक्षा सचिवालय का ही होता है। शिक्षा सचिव आई०ए०एस० स्तर का अधिकारी होता है। शिक्षा मंत्री को शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर सलाह देना, सरकारी नियमों के अधीन कार्य कराना, शिक्षा विभाग के अधिकारियों की अनुशासन सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाना, यह सभी कार्य शिक्षा सचिव के कर्तव्यों के अन्तर्गत सम्मिलित किये जाते हैं। राज्य सरकार के सभी आदेश उसी के नाम से निकलते हैं।

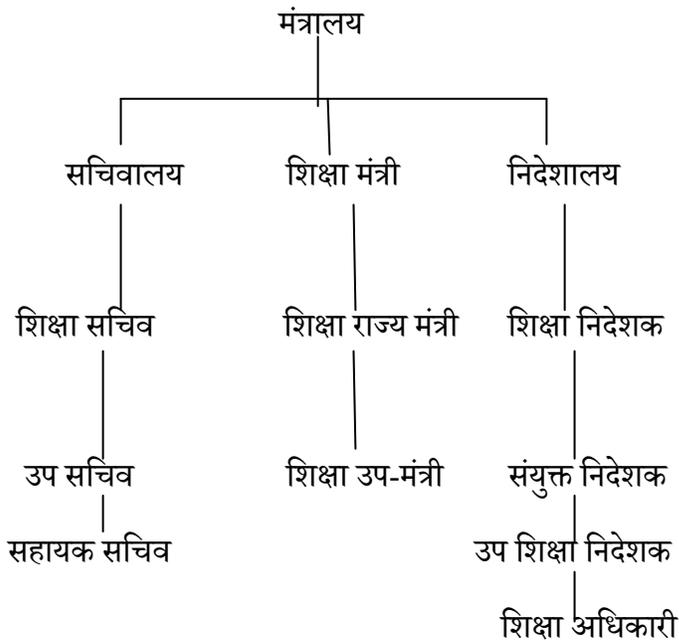
18.4.3 शिक्षा निदेशालय :-

शिक्षा निदेशालय राज्य शिक्षा विभाग की कार्यपालिका संस्था है। जहाँ एक ओर शिक्षा सचिवालय राज्य के लिये नीति निर्माण का कार्य करता है, वहाँ शिक्षा निदेशालय, सचिवालय द्वारा निर्मित नीतियों को लागू करने का कार्य करता है। यह सचिवालय तथा राज्य के विद्यालयों को जोड़ने वाली कड़ी का काम करता है। राज्य निदेशालय का सर्वोच्च अधिकारी शिक्षा निदेशक होता है। शिक्षा निदेशक शिक्षा के क्षेत्र में राज्य की प्रमुख

कार्यपालिका शक्ति होता है। वह राज्य की प्राथमिक, माध्यमिक शिक्षा के विकास के लिये भी उत्तरदायी होता है। राज्य के निजी क्षेत्र में कार्य करने वाले संगठनों, स्थानीय निकायों की शिक्षा समस्याओं तथा उनके समाधान के लिये वही उत्तरदायी होता है। इसके अतिरिक्त राज्य में शिक्षा की प्रगति का मूल्यांकन करना, शैक्षिक आवश्यकताओं की सूचनाएँ राज्य सरकार तक पहुँचाना तथा राज्य में प्रचलित शैक्षिक क्रियाकलापों तथा इन पर जन साधारण की प्रतिक्रिया की जानकारी सरकार को प्रदान करना यह सभी कार्य शिक्षा निदेशक के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित किये जा सकते हैं। इन सभी कार्यों का निर्वहन उचित रूप से करने के लिये संयुक्त निदेशक, उप शिक्षा निदेशक, शिक्षा अधिकारी आदि शिक्षा निदेशालय में नियुक्त किये जाते हैं। इस प्रकार राज्य स्तर पर शैक्षिक प्रशासन का निम्नलिखित रूप से सारांश प्रस्तुत किया जा सकता है –



इन सभी स्तरों पर कार्यरत मंत्रियों तथा अधिकारियों की सूची निम्नवत् है -



अभी तक हमने यह देखा कि किस प्रकार राज्य में उचित शैक्षिक प्रशासन के लिए तीन प्रशासनिक इकाईयाँ बनायी जाती हैं। परन्तु राज्य भी अपने आप में एक विस्तृत क्षेत्र होता है, तथा राज्य के शैक्षिक प्रशासन के लिये राज्य को पुनः छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित किया गया है, तथा प्रत्येक खण्ड में एक प्रशासनिक ढाँचा तैयार किया गया है, जो अपने क्षेत्र में शैक्षिक संचालन के लिये उत्तरदायी होता है।

18.5 स्थानीय शिक्षा प्रशासन:-

यह बात तो सभी को ज्ञात है कि प्रशासनिक स्तर पर राज्य की व्यवस्था मण्डल, जिला तथा ब्लाक में विभाजित की गई है। शिक्षा भी राज्य सरकार की जिम्मेदारी है तथा इसका संचालन और प्रसार भी इन्हीं प्रशासनिक इकाईयों में विभाजित हैं। अब हम शिक्षा के स्थानीय प्रशासन का अध्ययन करेंगे।

विभिन्न राज्यों में स्थानीय निकायों के भिन्न-भिन्न रूप हैं। कई राज्यों में शहरी शिक्षा का दायित्व नगरपालिकाओं के अधीन है, कुछ राज्यों में मात्र बड़ी नगरपालिकाओं का तथा शेष में शहरी शिक्षा सीधे राज्य सरकार के अधीन है, और वह उसका नियन्त्रण जिला शिक्षा अधिकारी के माध्यम से करती है।

ग्रामीण क्षेत्र की शिक्षा के लिये जिला परिषद् स्थानीय निकाय के रूप में कार्य करते हैं। मुख्यतः राज्यों में इनकी तीन स्तरों की व्यवस्था है। यह तीन स्तर हैं - ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड-स्तर पर पंचायत समिति तथा जिला स्तर पर जिला परिषद्।

इस आधार पर शिक्षा के स्थानीय प्रशासनिक ढाँचे को हम निम्न रूप में चित्रित कर सकते हैं -

शिक्षा का स्थानीय प्रशासनिक ढाँचा

जिला परिषद्/नगर पालिका



पंचायत समिति



ग्राम पंचायत

स्थानीय शिक्षा प्रशासन का कार्य क्षेत्र:-

वैसे तो शिक्षा की प्रशासनिक इकाई होने के कारण इनका मुख्य कार्य अपने क्षेत्र या कार्य-क्षेत्र में शिक्षा का उचित प्रशासन करना कहा जा सकता है, परन्तु इनके कार्यों तथा उत्तरदायित्वों को विस्तृत रूप से इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है-

- अपने क्षेत्र के विद्यालयों तथा शिक्षा संस्थानों को मान्यता प्रदान करना।
- मान्यता प्राप्त सरकारी तथा गैर-सरकारी विद्यालयों को आर्थिक सहायता प्रदान करने हेतु अनुदान देना।
- इन विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले शैक्षिक पाठ्यक्रम का निर्माण तथा निर्धारण करना।
- इस पाठ्यक्रम के आधार पर पाठ्य-पुस्तकें स्वीकार करना तथा सरकारी विद्यालयों में इन पाठ्य पुस्तकों की आपूर्ति सुनिश्चित करना।
- प्राथमिक स्तर पर शिक्षकों का चयन, उनका वेतन, कार्य करने की शर्तें तथा नियम, स्थानान्तरण, उनकी संख्या इन सभी बातों की जिम्मेदारी स्थानीय शैक्षिक प्रशासन की होती है। इसके अतिरिक्त विद्यालय के अन्य कर्मचारियों के चयन, नियुक्ति तथा वेतन से सम्बन्धित क्रियाकलाप भी स्थानीय प्रशासन के कार्य क्षेत्र में सम्मिलित होते हैं।
- इसके अतिरिक्त सरकारी विद्यालयों की वार्षिक अवकाश सूची तैयार करना भी स्थानीय प्रशासन का कार्य होता है।

अब तक आपने राज्य में अलग-अलग स्तरों पर शैक्षिक प्रशासन के बारे में अध्ययन किया। आपने देखा कि किस प्रकार राज्य में विभिन्न स्तरों पर तथा विभिन्न प्रशासनिक इकाईयों में अनेक अधिकारी कार्यरत होते हैं।

वैसे तो शिक्षा के प्रसार तथा उचित संचालन के लिये शासन ने राज्य स्तर पर एक मजबूत प्रशासन व्यवस्था का निर्माण किया है।

आजादी के बाद से ही शिक्षा के प्रसार तथा गुणवत्ता को बढ़ाने के लिये भारत में अनेक प्रयत्न किये गये परन्तु फिर भी शिक्षा के प्रसार के लक्ष्य को पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं किया जा सका। इसमें मुख्य रूप से प्राथमिक शिक्षा का प्रसार शामिल है। भारत के सभी राज्यों में कम से कम प्राथमिक शिक्षा का उचित रूप से प्रसार किया जा सके, इसके लिये बेसिक शिक्षा प्रशासन अलग से स्थापित किया।

राज्य स्तर पर प्राथमिक शिक्षा के लिये 'बेसिक शिक्षा राज्य मंत्री' भी नियुक्त किया गया। इसका उत्तरदायित्व राज्य की बेसिक शिक्षा का प्रबन्धन एवं प्रशासन करना है।

18.6 राज्य की बेसिक शिक्षा का प्रशासनिक स्वरूप

18.6.1 बेसिक शिक्षा मंत्री:- बेसिक शिक्षा मंत्री का कार्य राज्य में बेसिक शिक्षा का उचित प्रबन्धन एवं प्रशासन करना है। इसके लिये राज्य शिक्षा प्रशासनिक संरचना के अनुरूप बेसिक शिक्षा सचिवालय तथा बेसिक शिक्षा निदेशालय का गठन किया गया।

18.6.2 बेसिक शिक्षा सचिवालय:- बेसिक शिक्षा सचिवालय का मुख्य अधिकारी बेसिक शिक्षा सचिव होता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा सचिव की सहायता के लिये उप-शिक्षा सचिव तथा सहायक शिक्षा सचिव आदि नियुक्त किये जाते हैं।

18.6.3 बेसिक शिक्षा निदेशालय:- बेसिक शिक्षा निदेशालय का मुख्य अधिकारी बेसिक शिक्षा निदेशक होता है। इसके अतिरिक्त निदेशालय के कार्य को सुचारू रूप से चलाने तथा निदेशक की सहायता के लिये उप-शिक्षा निदेशक तथा सहायक शिक्षा निदेशक बेसिक को भी नियुक्त किया जाता है।

यह तो हम जान चुके हैं कि शैक्षिक प्रशासन की संरचना में निदेशालय एक कार्यपालिका संस्था होती है। इस कारण इस संस्था को प्रत्येक स्तर पर शिक्षा को उचित व्यवस्था का ध्यान रखना होता है। उसी प्रकार बेसिक शिक्षा निदेशालय स्थानीय स्तर पर शिक्षा के प्रशासन तथा प्रबन्धन के लिये भी जिम्मेदार होता है। इसके लिये जिला स्तर पर जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, ब्लाक स्तर पर सहायक बेसिक शिक्षा अधिकारी तथा ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायत सरपंच ही स्थानीय प्रशासन की देखरेख की जिम्मेदारी लेते हैं।

18.7 बेसिक शिक्षा प्रशासन के कार्य

राज्य में बेसिक शिक्षा के निम्नलिखित कार्य हैं:-

- राज्य के बेसिक शिक्षा विद्यालयों को मान्यता प्रदान करना तथा मान्यता की शर्तों एवं नियमावली को बनाना।
- बेसिक शिक्षा विद्यालयों में कक्षा 1 से 8 तक के लिए पाठ्यक्रम तैयार करना।
- पाठ्य-पुस्तकों का चयन अथवा रचना करना और उनका प्रकाशन कराना। राज्य के कक्षा 1 से 8 तक की पुस्तकों की रचना तथा प्रकाशन बेसिक शिक्षा विभाग ही कराता है।
- पाठ्य-सामग्री तथा पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का निर्धारण तथा व्यवस्था बेसिक शिक्षा विभाग करता है।
- बेसिक शिक्षा के लिये शिक्षकों की शैक्षिक योग्यताओं का निर्धारण तथा नियुक्ति का कार्य बेसिक शिक्षा अधिकारी करता है।
- बेसिक शिक्षा के लिये अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा शिक्षकों के लिये अभिविन्यास पाठ्यक्रमों का आयेजन बेसिक शिक्षा विभाग करता है।

- बेसिक शिक्षा के अनुदान प्राप्त विद्यालयों के शिक्षकों के वेतन का भुगतान भी बेसिक शिक्षा अधिकारी करता है।
- बेसिक शिक्षा के प्रशासनिक, शैक्षिक तथा वित्तीय कार्य, सहायक बेसिक शिक्षा अधिकारियों द्वारा किया जाता है।
- बेसिक विद्यालयों के पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण का कार्य, सहायक बेसिक शिक्षा अधिकारियों द्वारा किया जाता है।
- इन विद्यालयों में परीक्षाएँ भी बेसिक शिक्षा अधिकारियों द्वारा आयोजित की जाती हैं।

18.8 माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक प्रशासन

राज्य में माध्यमिक शिक्षा का प्रशासन संचालित करने के लिए मंत्रालय, सचिवालय एवं निदेशालय स्तर की व्यवस्थाओं पर हम पूर्व के पृष्ठों में चर्चा कर चुके हैं। जिस प्रकार प्राथमिक शिक्षा के लिए राज्य को प्रशासनिक व्यवस्थायें करनी होती हैं। लगभग उसी प्रकार की व्यवस्थायें माध्यमिक शिक्षा के लिए की जाती हैं। माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्थाओं को संचालित करने के लिए प्रत्येक राज्य में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की स्थापना की गयी है जो सीधे माध्यमिक शिक्षा मंत्री के लिए उत्तरदायी होता है। किसी-किसी राज्य में प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा की व्यवस्था एक ही मंत्री देखता है।

आगे की पंक्तियों में हम सामान्य रूप से माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के कार्यों की चर्चा करेंगे।

18.9 माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के कार्य

- नये माध्यमिक विद्यालयों को मान्यता प्रदान करना।
- विद्यालयों में नये विषयों को मान्यता प्रदान करना।
- पाठ्यक्रम का निर्धारण करना।
- पाठ्य पुस्तकों का लेखन कार्य कराना तथा उन्हें प्रकाशित करना।
- परीक्षा संचालन करना।
- परीक्षाफल घोषित करना।
- छात्रों को प्रमाण पत्र प्रदान करना।
- शिक्षकों की योग्यता एवं कार्यक्षमता को बढ़ाने का प्रयास करना।

18.10 सारांश

शिक्षा हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। अतः यह राज्य का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है राज्य की शिक्षा व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए राज्य सरकार शिक्षा मंत्री की नियुक्ति करती है। राज्य की आवश्यकता के अनुसार प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च, प्राविधिक, तकनीकी आदि की शिक्षा के लिए अलग-अलग शिक्षा मंत्री भी हो सकते हैं और एक ही मंत्री भी सारी व्यवस्थाओं को देख सकता है। शिक्षा मंत्री की सहायतार्थ सचिवालय एवं निदेशालय की व्यवस्था की जाती है। सचिवालय एवं निदेशालय की सहायता से शिक्षा मन्त्री नियम निर्माण, वित्तीय व्यवस्था, निरीक्षण नियुक्ति एवं पाठ्यक्रम आदि से सम्बन्धित अपने दायित्वों की पूर्ति करता है।

राज्य की शिक्षा व्यवस्था प्रायः तीन भागों में विभाजित रहती है- प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा।

18.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. राज्य में शैक्षिक प्रशासन का विभाजन किन मुख्य स्तरों पर किया गया है?
2. राज्य में शैक्षिक प्रशासन के ढाँचे को कितने भागों में विभाजित किया गया है?
3. स्थानीय शिक्षा प्रशासन का कार्य क्षेत्र बताइये।
4. माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के संगठन के विषय में बताइये।

इकाई 19 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर राज्य सरकार के कार्य

- 19.1 प्रस्तावना
- 19.2 उद्देश्य
- 19.3 प्राथमिक स्तर पर राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्य
- 19.4 माध्यमिक स्तर पर राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्य
- 19.5 उच्च स्तर पर राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्य
- 19.6 सारांश

19.1 प्रस्तावना

यदि हम मानव सभ्यता के विकास पर दृष्टि डालें तो हम पायेंगे कि आरम्भ में मानव तथा अन्य प्राणियों के व्यवहार में कोई विशेष अन्तर नहीं था। किन्तु धीरे-धीरे मानव के बौद्धिक विकास ने उसे आविष्कारक बना दिया तथा वह अन्य प्राणियों की अपेक्षा उन्नत होता चला गया। मानव के बौद्धिक विकास में शिक्षा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

हमें शिक्षा का व्यवस्थित इतिहास वैदिक काल से प्राप्त होता है। वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था स्वतन्त्र थी। ब्राह्मणों (अत्यन्त विद्वान व्यक्तियों) को गुरुकुल चलाने की स्वतन्त्रता थी। गुरुकुल प्रायः प्रकृति के सानिध्य में बनाये जाते थे। विद्यार्थी गुरुकुल में रहकर ही विद्या अध्ययन करते थे। गुरुकुल में विद्यार्थी केवल विद्यार्थी होता था। वहां राजा और रंक में कोई भेद नहीं था। शिक्षा पर राज्य का कोई नियन्त्रण नहीं था और न ही राजा गुरुकुल की व्यवस्था में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करते थे। वैदिक काल में शिक्षक समाज का सर्वाधिक सम्मानित (राजा से भी अधिक) नागरिक होता था।

बौद्ध काल में शिक्षा के क्षेत्र में राज्य की भूमिका आरम्भ हो गई थी। राज्य की ओर से मठों को आर्थिक सहायता व दिशा निर्देश प्रदान किये जाने लगे थे। मुगल काल में राज्य ने शिक्षा पर पूर्ण नियन्त्रण कर लिया था। उसी समय में अध्यापकों को वेतन मिलना भी आरम्भ हुआ। अंग्रेजों के द्वारा भारत में विधिवत् राज्य स्थापित कर लेने के पश्चात शिक्षा राज्य का दायित्व हो गया व सरकार के नियमो-अधिनियम के द्वारा शिक्षा व्यवस्था संचालित होती रही।

स्वतन्त्र भारत में 1976 तक शिक्षा राज्य का विषय रही। 1976 में संविधान संशोधन के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र सरकार को दखल देने का अधिकार मिल गया। शिक्षा को समवर्ती सूची में सम्मिलित कर लिया गया। शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र सरकार का दखल हो जाने से राज्य सरकार की भूमिका पर केवल इतना सा प्रभाव पड़ा कि किसी विषय पर केन्द्र सरकार व राज्य सरकार द्वारा बनाये गये नियमों में मतभेद होने की दशा में केन्द्र सरकार का नियम/निर्णय मान्य होगा।

आगे के पृष्ठों में हम शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर राज्य सरकार के कार्य की चर्चा करेंगे।

19.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात छात्र जान सकेंगे कि अब शिक्षा समवर्ती सूची का विषय है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्

- छात्र प्राथमिक स्तर पर शिक्षा से सम्बन्धित राज्य सरकार के कार्यों को जान सकेंगे।
- छात्र शिक्षा के प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च स्तर पर केन्द्र व राज्य सरकार की सहभागिता के विषय में जान सकेंगे।
- छात्र राज्य में प्राथमिक शिक्षा के प्रशासनिक ढाँचे से अवगत हो सकेंगे।
- छात्र माध्यमिक स्तर पर राज्य सरकार के कार्यों से अवगत हो सकेंगे।
- छात्र माध्यमिक स्तर पर राज्य के प्रशासनिक ढाँचे को समझ सकेंगे।
- छात्र उच्च स्तर पर राज्य सरकार के कार्यों एवं प्रशासनिक ढाँचे से अवगत हो सकेंगे।

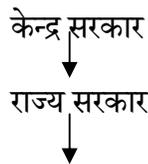
19.3 प्राथमिक स्तर पर राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्य

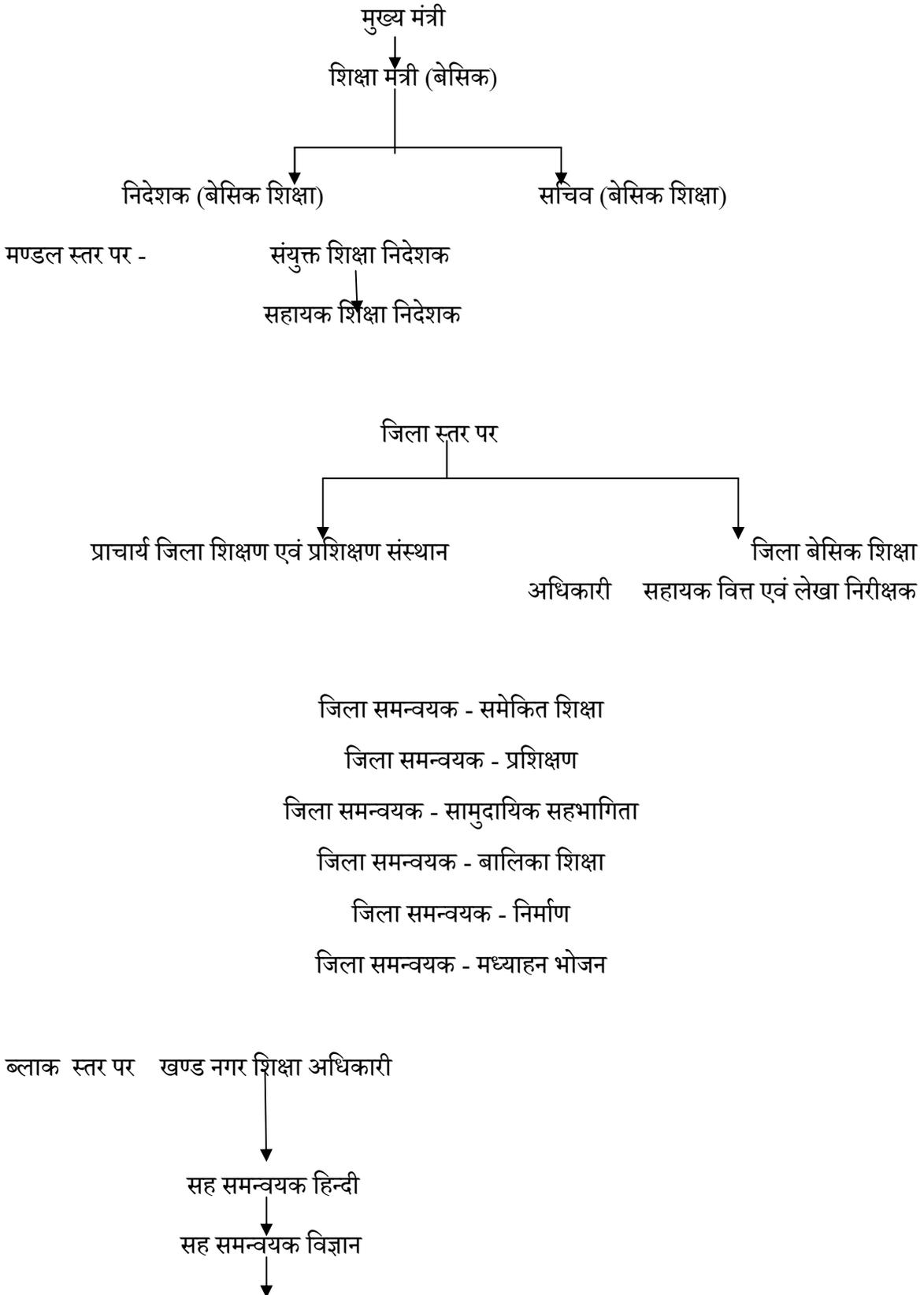
प्राथमिक शिक्षा, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था का आधार है तथा इसे सर्वाधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिये जैसा कि आप जानते ही हैं कि स्वतन्त्र भारत में संविधान लागू होने के साथ संविधान के अनुच्छेद 45 में 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के किये निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया। इस कार्य के लिये 10 वर्ष की समय सीमा निर्धारित की गई। यद्यपि अपनी समय सीमा में केन्द्र व राज्य सरकारें इस लक्ष्य को प्राप्त न कर सकीं तथापि इस दिशा में सरकारों ने पर्याप्त प्रयास किये। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने के लिये 1957 में "अखिल भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा परिषद्" का गठन किया गया। इस परिषद् के संगठन में राज्य सरकारें भी भागीदार होती हैं। इस परिषद् के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा की विभिन्न समस्याओं पर शोध कार्य किया जाता है तथा उन समस्याओं का निदान करने का प्रयास किया जाता है।

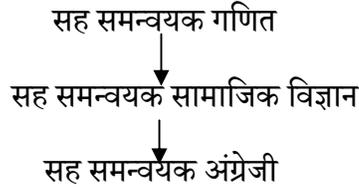
राज्य में प्राथमिक शिक्षा का कार्य मुख्य रूप से बेसिक शिक्षा मंत्री का उत्तरदायित्व है। कुछ राज्यों में मंत्री अथवा राज्य मंत्री के स्तर पर प्राथमिक शिक्षा राज्य मंत्री की नियुक्ति अलग से भी की जाती है। इसी प्रकार शिक्षा सचिवालय एवं शिक्षा निदेशालय में शिक्षा सचिव एवं शिक्षा निदेशक की सहायतार्थ शिक्षा उपसचिव प्राथमिक अथवा शिक्षा उप निदेशक प्राथमिक की नियुक्ति भी अलग से की जा सकती है।

राज्य में प्राथमिक शिक्षा का प्रशासकीय ढाँचा

निम्नांकित रेखाचित्र के माध्यम से हम राज्य में प्राथमिक शिक्षा के प्रशासकीय ढाँचे को भलीभाँति समझ सकते हैं।







नगर पंचायत स्तर पर - संकुल प्रभारी

गांव स्तर पर - प्रधानाध्यापक - अध्यापक

प्रशासकीय ढाँचे के रेखाचित्र से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक शिक्षा हेतु राज्य में एक शिक्षा निदेशक होता है जिसकी सहायतार्थ मण्डल जिला, नगर, ब्लाक और न्याय पंचायत स्तर पर अनेक अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ भारत के प्रायः प्रत्येक राज्य में उपरोक्त व्यवस्था लागू है।

प्राथमिक शिक्षा के लिये राज्य सरकार प्रत्येक विद्यालय में अध्यापकों की व एक प्रधानाध्यापक की नियुक्ति करती है। नियुक्ति का कार्य राज्य सरकार “जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान” के माध्यम से करती है। जिला प्रशिक्षण संस्थान अध्यापकों को नियुक्ति से पूर्व पूर्णकालिक प्रशिक्षण भी प्रदान करता है।

एक न्याय पंचायत क्षेत्र की सीमा में आने वाले सभी प्रधानाध्यापकों के ऊपर एक न्याय पंचायत संसाधन केन्द्र समन्वयक होता है जो प्रायः क्षेत्र के सबसे बड़े जूनियर हाईस्कूल का प्रधानाध्यापक होता है। इसकी नियुक्ति जिला प्रशिक्षण एवं शिक्षा संस्थान द्वारा की जाती है। उक्त समन्वयक अपने क्षेत्र के विद्यालयों में जाकर “आदर्श पाठ” प्रस्तुत करता है तथा “शैक्षिक गुणवत्ता” में सुधार के उपाय करता है।

इसी प्रकार नगर/ब्लाक स्तर पर हिन्दी, अंग्रेजी, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान व गणित विषय के आदर्श पाठ प्रस्तुत करने व शैक्षिक गुणवत्ता में सुधार के उपाय करने के लिये 5 सहायक ब्लाक संसाधन केन्द्र समन्वयक होते हैं। उक्त सभी “खण्ड शिक्षा अधिकारी” के लिए उत्तरदायी होते हैं जो अपने खण्ड में शैक्षिक गुणवत्ता के सुधार के लिये समय-समय पर निरीक्षण करता रहता है। खण्ड शिक्षा अधिकारी जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी के लिये उत्तरदायी होता है। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी अपने जिले में बेसिक शिक्षा से सम्बन्धित समस्त कार्यों का उत्तरदायित्व निर्वाह करता है। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी सहायक/उप शिक्षा निदेशक के प्रति उत्तरदायी होते हैं जो आगे चलकर शिक्षा निदेशक बेसिक के लिये उत्तरदायी होते हैं।

राज्य सरकार अपने उपरोक्त अधिकारियों, स्थानीय निकाय एवं समाज के साथ मिलकर प्राथमिक शिक्षा के लिये शिक्षकों की नियुक्ति करती है, धन की व्यवस्था करती है; निर्माण कार्य का निरीक्षण करती है; अध्यापकों को प्रशिक्षण देती है; शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता सुनिश्चित करती है, केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित मध्याह्न भोजन की व्यवस्था करती है तथा बालिका शिक्षा एवं समेकित शिक्षा पर ध्यान देती है।

प्राथमिक शिक्षा परिषद् के कार्य :-

प्रत्येक राज्य में प्राथमिक शिक्षा के लिये प्राथमिक शिक्षा परिषद् अथवा इससे मिलते जुलते नाम से एक संस्था का गठन किया जाता है जिसके द्वारा राज्य सरकार निम्नांकित कार्य सम्पन्न करती है

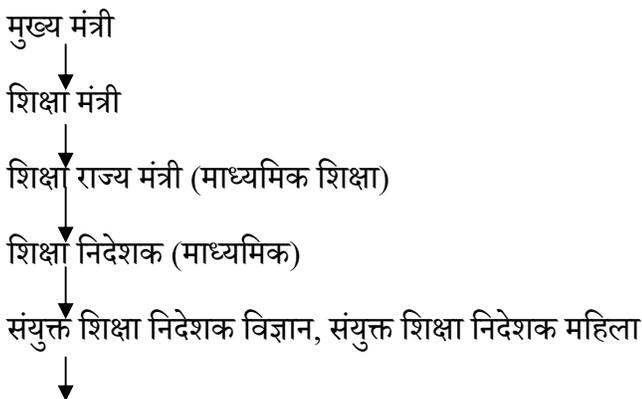
- राज्य में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना।
- प्राथमिक शिक्षकों के लिये शिक्षक प्राशिक्षण की व्यवस्था करना।
- राज्य सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त करना।
- परीक्षा आदि की व्यवस्था करना।
- विद्यालयों का निरीक्षण करना।

19.4 माध्यमिक स्तर पर राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्य

'माध्यमिक शिक्षा' शिक्षा की महत्वपूर्ण कड़ी है। यह 'प्राथमिक शिक्षा' और 'उच्च शिक्षा' को जोड़ने का कार्य करती है। प्राथमिक शिक्षा प्राप्ति की अवस्था में बालक के कोई संस्कार नहीं होते और 'उच्च शिक्षा प्राप्ति की स्थिति में बालक के संस्कार दृढ़ हो चुके होते हैं। किन्तु माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करते समय बालक किशोरावस्था से युवावस्था की ओर बढ़ रहे होते हैं। इस समय में उनमें संस्कारों को दृढ़ करने की आवश्यकता होती है, अतः माध्यमिक शिक्षा प्राप्ति काल बालक के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण काल है।

माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का प्रशासन:-

जैसा कि हमें विदित ही है कि प्रत्येक राज्य में शिक्षा की व्यवस्था देखने के लिये शिक्षा मंत्री का एक पद होता है। कुछ राज्यों में माध्यमिक शिक्षा के लिये अलग मंत्री का पद भी सृजित किया जा सकता है, कुछ राज्यों में माध्यमिक शिक्षा के लिये राज्य मंत्री की नियुक्ति की जाती है और कुछ राज्यों में शिक्षा मंत्री ही शिक्षा की समस्त व्यवस्था को देखता है। अगले पृष्ठ पर हम राज्य में माध्यमिक शिक्षा के प्रशासनिक ढाँचे को समझने का प्रयास करेंगे।



उप शिक्षा निदेशक (माध्यमिक)

↓
मण्डल स्तर पर माध्यमिक शिक्षा परिषद्

↓
उप शिक्षा निदेशक - प्रशिक्षण

↓
उप शिक्षा निदेशक - शिविर

↓
उप शिक्षा निदेशक - संस्कृत/उर्दू

↓
उप शिक्षा निदेशक - सेवा

↓
उप शिक्षा निदेशक - वित्त

↓
सहायक उप शिक्षा निदेशक - सेवा

↓
सहायक उप शिक्षा निदेशक - वित्त

↓
सहायक उप शिक्षा निदेशक - विज्ञान

↓
सहायक उप शिक्षा निदेशक - महिला

जिला विद्यालय निरीक्षक

↓
जिला बालिका विद्यालय निरीक्षिका

↓
सहायक जिला विद्यालय निरीक्षक

↓
सहायक जिला बालिका विद्यालय निरीक्षिका

राज्यों में प्रायः दो प्रकार के माध्यमिक विद्यालय संचालित होते हैं -

1. राजकीय विद्यालय

2. अनुदानित विद्यालय

राजकीय विद्यालयों की समस्त व्यवस्थायें सीधे राज्य सरकार देखती है। जबकि अनुदानित विद्यालयों का प्रबन्धन अपना प्रबन्ध तन्त्र देखता है। राज्य सरकार उन्हें केवल अनुदान व शिक्षकों का वेतन प्रदान करती है।

माध्यमिक स्तर पर राज्य सरकार के कार्य :-**शिक्षकों की नियुक्ति :-**

माध्यमिक शिक्षा के लिए शिक्षक उपलब्ध कराना राज्य सरकार का महत्वपूर्ण कार्य है। इसके लिए राज्य सरकार शिक्षा सेवा आयोग का गठन करके विज्ञापन, लिखित परीक्षा, साक्षात्कार आदि के द्वारा योग्य एवं श्रेष्ठ शिक्षकों का चयन करती है। शिक्षकों को नियुक्ति देने से पूर्व राज्य सरकार उन्हें सेवा शर्तों से अवगत कराती हैं। कार्य प्रारम्भ करने के पश्चात् शिक्षकों को एक निश्चित समय तक परिवीक्षा पर रखा जाता है। परिवीक्षा अवधि में उनके कार्य एवं कार्य प्रणाली से सन्तुष्ट होने पर ही उन्हें नियमित किया जाता है।

नये विद्यालयों को मान्यता प्रदान करना :-

जैसा कि आप जानते ही हैं कि राज्य में दो प्रकार के माध्यमिक विद्यालय संचालित किये होते हैं। सरकारी एवं प्रबंधतंत्रीय। यदि समाज के किसी क्षेत्र में समाज सेवी लोगों द्वारा विद्यालय चलाया जा रहा है और वे राज्य सरकार से मान्यता प्राप्त करना चाहते हैं तो राज्य सरकार निर्धारित मानकों पर खरे उतरने वाले विद्यालयों को मान्यता प्रदान करती है।

मान्यता प्राप्त विद्यालयों का उच्चीकरण:-

यदि हाईस्कूल की मान्यता प्राप्त कोई विद्यालय अपने यहां इण्टर की कक्षाएँ संचालित करना चाहता है तो सरकार निर्धारित मानकों के अनुसार उस विद्यालय को उच्च कक्षाओं की मान्यता प्रदान करती है।

विद्यालयों का निरीक्षण करना :-

जिला विद्यालय निरीक्षक के माध्यम से राज्य सरकार समय-समय पर मान्यता प्राप्त विद्यालयों का निरीक्षण करती रहती है। निरीक्षक के माध्यम से वह विद्यालयों में विसंगतियां आने से रोकती है। निरीक्षण के समय शिक्षण कार्य, भौतिक संसाधन, कार्यालय, वित्त एवं लेखा आदि सभी का निरीक्षण किया जाता है।

पाठ्यक्रम निर्धारित करना :-

राज्य में विभिन्न विषयों का पाठ्यक्रम निर्धारित करने का कार्य राज्य सरकार करती है। इसके लिये वह विशिष्टों की एक समिति बनाती है तथा उस समिति के सदस्य विचार मन्थन करके विभिन्न विषयों का पाठ्यक्रम निर्धारण अथवा उनमें अपेक्षित परिवर्तन करते हैं।

पाठ्य पुस्तकें तैयार करना:-

कुछ राज्यों में पाठ्य पुस्तक तैयार करने का कार्य निजी प्रकाशकों को दे दिया जाता है। वे राज्य सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार पाठ्य पुस्तकें तैयार करते हैं। किन्तु अधिकांश राज्यों में पाठ्य पुस्तक तैयार करने के लिये राज्य सरकार अपनी प्रेस तथा विषय विशेषज्ञों का एक मण्डल बनाती है जो मिलकर पाठ्य पुस्तकों के लेखन और सम्पादन का कार्य करते हैं।

अनुदान देना :-

राज्य में जितने भी गैर सरकारी विद्यालय चल रहे हैं उन विद्यालयों को समय-समय पर भवन निर्माण, भौतिक संसाधन तथा अन्य व्यवस्थाओं के लिए राज्य सरकार अनुदान प्रदान करती है।

राजकीय विद्यालयों का संचालन :-

राज्य में चल रहे समस्त राजकीय इण्टर कालेज व हाई स्कूल के संचालन का पूर्ण उत्तरदायित्व राज्य सरकार का है।

छात्रवृत्ति प्रदान करना :-

सामाजिक न्याय की दृष्टि से राजकीय व गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत प्रतिभाशाली, निर्धन, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व कुछ अन्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान करने का कार्य राज्य सरकार करती है।

परीक्षा :-

राज्य में संचालित सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में हाईस्कूल व इण्टर की परीक्षाएँ संचालित करने का कार्य राज्य सरकार करती है। इस कार्य के लिये राज्य सरकार राज्य में एक बोर्ड के माध्यम से परीक्षाएँ संचालित करती है।

अधिनियम:-

राज्य में शिक्षा व्यवस्था को सुव्यवस्थित एवं सुचारू रूप से संचालित करने के लिये राज्य सरकार विभिन्न प्रकार के अधिनियम बनाने का कार्य भी करती है।

अनुसंधान एवं प्रशिक्षण :-

शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान एवं 'सेवा पूर्व' तथा 'सेवा कालीन' शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य भी राज्य सरकार का है। इसके लिये राज्य में 'राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्' का गठन किया जाता है तथा राज्य सरकार उसके माध्यम से अनुसंधान एवं प्रशिक्षण से सम्बन्धित कार्य संपन्न करती है।

अन्य कार्य :-

राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्यों की सूची कभी समाप्त नहीं होती, क्योंकि राज्य में शिक्षा का सम्पूर्ण दायित्व राज्य सरकार का है तथापि उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त राज्य सरकार राज्य में कृषि, उद्योग, वाणिज्य आदि की शिक्षा व्यवस्था भी करती है। इसके अतिरिक्त विद्यालयों का शैक्षिक विकास शैक्षिक योजना बनाना, शैक्षिक परिवीक्षण करना आदि कार्य भी राज्य सरकार ही विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से सम्पन्न करती है।

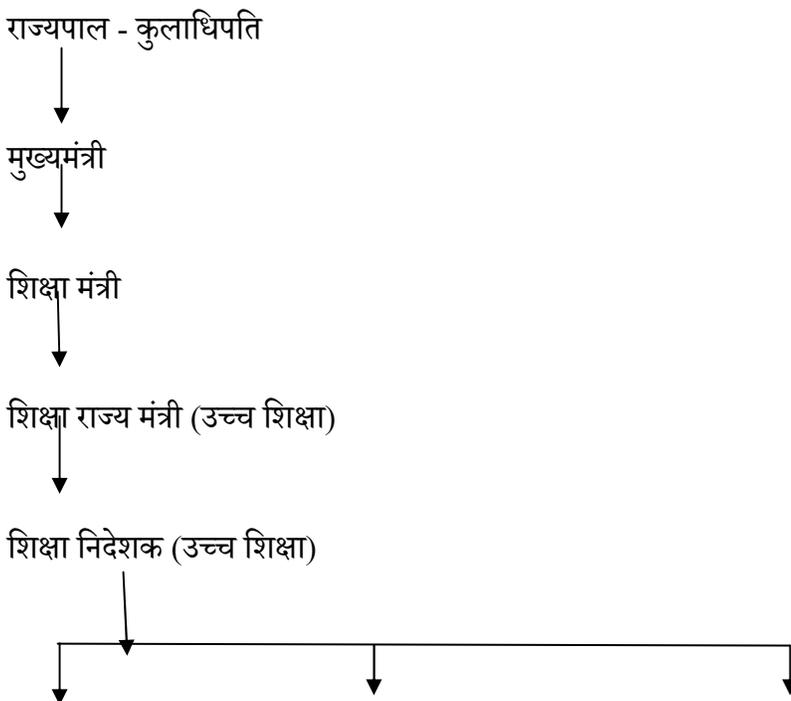
19.5 उच्च स्तर पर राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्य

भारत में वैदिक काल से ही उच्च शिक्षा की उत्तम व्यवस्था रही है। उच्च स्तर पर व्यावहारिक विषयों का उत्तम ज्ञान देना भारतीय शिक्षा की प्राचीनतम विशेषता है। सम्पूर्ण विश्व में उच्च शिक्षा का मुख्य उद्देश्य 'सत्य की खोज' करना है।

माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद पहले अधिकांश छात्र किसी न किसी व्यवसाय अथवा जीविकोपार्जन के अन्य साधनों में व्यस्त हो जाते थे। केवल मुट्टी भर छात्र जिनमें ज्ञान की ललक होती थी उच्च शिक्षा की ओर आते थे। किन्तु, अब स्थिति भिन्न है। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अधिकांश छात्र उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। ज्ञान की ललक न होने पर भी सरकारी अनुदान प्राप्त करने का लालच अनेक नौकरियों में न्यूनतम योग्यता स्नातक, राजनीतिक महत्वाकांक्षा तथा इसी प्रकार के अन्य कारणों से उच्च शिक्षा बढ़ती जा रही है। इतना ही नहीं निजी क्षेत्रों के उच्च शिक्षा में प्रवेश के बाद भी महाविद्यालयों में भीड़ कम नहीं हो रही है। आगे के पृष्ठों में हम राज्य में उच्च शिक्षा के प्रशासन पर चर्चा करेंगे।

राज्य में उच्च शिक्षा का प्रशासन:-

उच्च शिक्षा का कार्य केन्द्र और राज्य सरकारें मिलकर करते हैं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आर्थिक सहायता देने के लिये केन्द्र ने 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' का गठन किया है। तथापि राज्य में उच्च शिक्षा के प्रशासन को हम निम्नांकित रेखाचित्र के माध्यम से समझ सकते हैं-



सहायक	सहायक लेखाधिकारी	सहायक
उपशिक्षा निदेशक (वित्त)		उपशिक्षा निदेशक (शिविर)
क्षेत्रीय उच्च शिक्षा अधिकारी (मण्डल स्तर पर)		

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में राज्य सरकार के :-

अग्रंकित बिन्दुओं के अन्तर्गत राज्य सरकार के उच्च शिक्षा से सम्बन्धित कार्यों की चर्चा की जा सकती है।

- उच्च स्तरीय शिक्षण संस्थानों में प्राध्यापकों, प्राचार्यों तथा अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति हेतु मार्गदर्शक सिद्धान्त तैयार करना।
- उक्त नियुक्तियों हेतु आवश्यकतानुसार परीक्षा, साक्षात्कार आदि आयोजित करना। तथा उक्त कार्य के लिये विशेषज्ञों की नियुक्ति करना।
- राज्य के विभिन्न महाविद्यालयों में प्राध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों की संख्या निर्धारित करना तथा उन पदों पर निश्चित प्रक्रिया के माध्यम से नियुक्ति प्रदान करना।
- उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों को वेतन व अन्य भत्ते प्रदान करना।
- शिक्षक तथा शिक्षणेत्तर कर्मचारियों की सेवा शर्तों का निर्धारण करना।
- उच्च शिक्षा संस्थानों के अभिलेख आदि का निरीक्षण करना।
- महाविद्यालयों को शिक्षणेत्तर गतिविधियों से सम्बन्धित निर्देश प्रदान करना।
- केन्द्र सरकार के निर्देशानुसार राज्य में उच्च शिक्षा नियोजन और समन्वय हेतु 'राज्य उच्च शिक्षा परिषद्' का गठन व संचालन करना।
- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रदत्त अनुदान को प्राप्त करना व नियमानुसार उक्त अनुदान को व्यय करना।
- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा जारी मार्गदर्शक सिद्धान्तों के अनुसार उच्च शिक्षा के कार्यक्रम तैयार करना तथा उन्हें लागू कराना।
- उच्च शिक्षा के विकास के लिये योजना बनाना।
- राज्य में नए महाविद्यालय आरम्भ करने के लिये दिशा निर्देश जारी करना।
- नियमानुसार खोले गए महाविद्यालयों को मान्यता एवं सम्बद्धता प्रदान करना।
- पहले से चल रहे महाविद्यालयों में क्षेत्र की आवश्यकता एवं नियमों का अनुपालन करते हुए नए विषयों को मान्यता प्रदान करना।
- सेवारत प्राध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

- उच्च शिक्षा में अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहित करना व इसके लिये अनुदान प्रदान करना।
- शिक्षाविदों को विभिन्न पुरस्कार प्रदान करना।
- केन्द्र से अनुदान प्राप्त करना व उपयुक्त रीति से प्राप्त अनुदान का वितरण करना।

इसके अतिरिक्त वे सभी कार्य जो राज्य में उच्च शिक्षा के उन्नयन व संवर्धन के लिये आवश्यक हों, राज्य सरकार के कार्य कहे जा सकेंगे।

उक्त सभी कार्य राज्य सरकार उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग, उच्च शिक्षापरिषद्, विश्वविद्यालयों के कुलपति तथा उच्च शिक्षा के लिये नियुक्त विभिन्न पदाधिकारियों के माध्यम से सम्पन्न करती है।

19.6 सारांश

पहले भारत में शिक्षा राज्य का विषय थी। 1976 के संविधान संशोधन के बाद शिक्षा को समवर्ती सूची में डाल दिया गया। राज्यों में सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था को मोटे तौर पर हम तीन भागों में बांट सकते हैं। प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा के प्रत्येक स्तर के लिये राज्य में एक निदेशक होता है जो शिक्षा मंत्री एवं राज्य सरकार के लिये उत्तरदायी होता है। प्रदेश, मण्डल, जिला और स्थानीय स्तर पर विभिन्न पदाधिकारी शिक्षा से सम्बन्धित राज्य सरकार के कार्य को सम्पादित करते हैं।

विभिन्न स्तरों पर राज्य सरकार के कार्यों में मुख्य रूप से शिक्षकों की नियुक्ति, केन्द्र सरकार की शिक्षा से सम्बन्धित योजनाओं को राज्य में लागू करना, केन्द्र सरकार से अनुदान प्राप्त करना, शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करना, अध्यापकों को प्रशिक्षण प्रदान करना, समय-समय पर विद्यालयों महाविद्यालयों का निरीक्षण करना, वित्त से सम्बन्धित निरीक्षण करना, नए शिक्षण संस्थानों को मान्यता प्रदान करना, स्थापित विद्यालयों का उच्चीकरण, पाठ्यक्रम निर्धारण, पाठ्य पुस्तक प्रकाशन आदि सम्मिलित हैं। राज्य में शिक्षा व्यवस्था को उत्तम प्रकार से संचालित करना राज्य सरकार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है, क्योंकि शिक्षा व्यवस्था किसी भी राज्य की अर्थ व्यवस्था एवं सामाजिक ताने-बाने का प्रबल आधार होती है।

19.7 निबंधात्मक प्रश्न

1. 'विभिन्न स्तरों पर राज्य सरकार के शैक्षिक कार्य' एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।
2. प्राथमिक, माध्यमिक अथवा उच्च स्तर पर आपके राज्य में शिक्षा की कौन-कौन सी समस्याएं हैं? समाधान हेतु सुझाव दीजिये।

इकाई 20 बेसिक शिक्षा परिषद्, माध्यमिक शिक्षा परिषद् एवं विश्वविद्यालय के कार्य संरचना

20.1 प्रस्तावना

20.2 उद्देश्य

20.3 बेसिक शिक्षा परिषद्

20.3.1 बेसिक शिक्षा परिषद् का गठन।

20.3.2 बेसिक शिक्षा परिषद् के कार्य।

20.4 माध्यमिक शिक्षा परिषद्

20.4.1 माध्यमिक शिक्षा परिषद् का गठन।

20.4.2 माध्यमिक शिक्षा परिषद् के कार्य।

20.5 विश्वविद्यालय

20.5.1 विश्वविद्यालय के प्रकार।

20.5.2 विश्वविद्यालय का गठन

20.5.3 विश्वविद्यालय के कार्य

20.6 सारांश

20.7 निबन्धात्मक प्रश्न

20.8 सन्दर्भ

20.1 प्रस्तावना

भारत के प्रत्येक राज्य में शिक्षा व्यवस्था प्रायः तीन भागों में विभक्त है। प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च। तीनों प्रकार की शिक्षा व्यवस्था को देखने के लिये राज्य सरकार ने अलग-अलग संस्थाओं का गठन किया है जो शिक्षा व्यवस्था से सम्बद्ध समस्त क्रियाकलापों को देखती है। इस यूनिट में हम शिक्षा परिषद् बोर्ड आफ स्कूल एजुकेशन एवं विश्वविद्यालय के कार्यों की चर्चा करेंगे।

20.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् हम बेसिक शिक्षा परिषद् का गठन किस प्रकार होता है यह जान सकेंगे। प्रस्तुत इकाई के द्वारा हम

- बेसिक शिक्षा परिषद् के कार्यों के विषय में जान सकेंगे।
- माध्यमिक बेसिक परिषद् एवं उसके गठन के विषय में जान सकेंगे।

- हमें माध्यमिक शिक्षा परिषद् के कार्यों का ज्ञान करा सकेगी।
- विश्वविद्यालय एवं उसके प्रकारों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- विश्वविद्यालय का गठन कैसे होता है यह बता सकेगी।
- विश्वविद्यालय के कार्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

20.3 बेसिक शिक्षा परिषद्

भारत के प्रायः प्रत्येक राज्य में प्राथमिक शिक्षा के संचालन के लिये 'बेसिक शिक्षा परिषद्' का गठन किया गया है। प्राथमिक शिक्षा से सम्बद्ध अधिकांश कार्य उक्त परिषद् के माध्यम से ही संपन्न होते हैं।

20.3.1 बेसिक शिक्षा परिषद् का गठन:-

राज्य की बेसिक शिक्षा परिषद् में थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ प्रायः निम्नांकित सदस्य होते हैं -

शिक्षा निदेशक - अध्यक्ष

क्षेत्र पंचायत/जिला पंचायत के अध्यक्षों में से कोई दो सदस्य - राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट।

एक नगर प्रमुख -राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट।

वित्त विभाग का सचिव।

राज्य शिक्षा संस्थान का प्रधानाचार्य।

माध्यमिक शिक्षा परिषद् का सचिव।

प्राथमिक शिक्षा संघ का अध्यक्ष।

राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट दो शिक्षाविद्।

शिक्षा उप निदेशक-सचिव

प्रायः प्रत्येक राज्य में उक्त सदस्य मिलकर बेसिक शिक्षा परिषद् के समस्त कार्यों को संचालित करते हैं।

20.3.2 बेसिक शिक्षा परिषद् के कार्य:-

बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा निम्नांकित कार्य सम्पादित किये जाते हैं।

अध्यापको को प्रशिक्षण प्रदान करना।

प्रशिक्षण के लिये साहित्य रचना अथवा साहित्य का चयन करना।

बेसिक तथा जूनियर हाईस्कूल की परीक्षाओं का संचालन करना।

उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को प्रमाण पत्र प्रदान करना।

प्राथमिक शिक्षा संस्थाओं की स्थापना के लिये मानकों का निर्धारण करना।

राज्य शिक्षा संस्थान का पर्यवेक्षण व नियन्त्रण करना।

प्राथमिक शिक्षा में अनुसन्धान को प्रोत्साहित करना तथा इस हेतु अनुदान का अनुमोदन करना।

राज्य सरकार से अनुदान अथवा आर्थिक सहायता प्राप्त करना।

प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न संस्थाओं को समय-समय पर निर्देश प्रदान करना।

आवश्यकतानुसार विभिन्न कार्यों के सम्पादन के लिये उप समितियों का गठन करना।

ऐसे सभी कार्य जो राज्य में प्राथमिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार अथवा राज्य के कल्याण के लिये अनिवार्य हैं तथा परिषद् के अधिकार क्षेत्र में आते हैं अथवा राज्य सरकार ने अस्थायी रूप से परिषद् के अधिकार क्षेत्र में प्रदान किये हैं; सम्पादित करना।

20.4 माध्यमिक शिक्षा परिषद्

माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक और उच्च शिक्षा को जोड़ने वाली कड़ी है। माध्यमिक शिक्षा छात्र जीवन को दिशा प्रदान करती है। वास्तव में राष्ट्र का भविष्य निर्माण करने का महत्वपूर्ण कार्य माध्यमिक शिक्षा ही सम्पादित करती है। प्रत्येक राज्य में माध्यमिक शिक्षा परिषद् की स्थापना की गई है। भारत के अनेक राज्यों में तो स्वतन्त्रता से पूर्व ही माध्यमिक शिक्षा परिषद् की स्थापना कर दी गई थी। मद्रास में 1911, बंगलौर में 1913, नागपुर तथा उत्तर-प्रदेश में 1922, दिल्ली में 1926 तथा अजमेर में 1925 में ही माध्यमिक शिक्षा परिषद् की स्थापना कर दी गई थी। शेष राज्यों में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् माध्यमिक शिक्षा परिषद् की स्थापना की गई।

20.4.1 माध्यमिक शिक्षा परिषद् का गठन:-

राज्यों में माध्यमिक शिक्षा परिषद् का गठन करते समय प्रायः निम्नांकित सदस्यों को स्थान दिया जाता है -

निदेशक-अध्यक्ष।

राज्य सरकार द्वारा पोषित शिक्षा संस्थाओं के दो प्रधान जिनके नाम राज्य सरकार निर्देशित करे।

राज्य सरकार द्वारा संचालित विद्यालय अथवा विद्यालयों के दो अध्यापक जिनके नाम राज्य सरकार निर्देशित करे।

राज्य प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान का निदेशक।

राज्य शैक्षिक प्रबन्धन एवं प्रशिक्षण संस्थान का निदेशक।

पत्राचार शिक्षा का निदेशक।

व्यावसायिक शिक्षा का निदेशक।

विज्ञान शिक्षा का निदेशक।

मनोविज्ञान ब्यूरो का निदेशक।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित शिक्षा से सम्बन्धित दो व्यक्ति।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित शिक्षा से सम्बन्धित दो महिलायें।

माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद् का सचिव।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित एक जिला विद्यालय निरीक्षक।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित एक क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक।

माध्यमिक शिक्षा की केन्द्रीय परिषद् का क्षेत्रीय अधिकारी।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित एक महाविद्यालयीय शिक्षक।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित इंजीनियरिंग कालेज का शिक्षक।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित कृषि विश्वविद्यालय का शिक्षक।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित मेडिकल कालेज का एक शिक्षक।

माध्यमिक शिक्षा परिषद् के उक्त सदस्य (पदेन सदस्यों को छोड़कर) सामान्यतः तीन वर्ष की अवधि के लिये अपने पद पर रह सकेंगे। राज्य सरकार छः माह के लिये उनकी पदावधि को बढ़ा सकती है जो अधिकतम दो बार अथवा एक वर्ष के लिये हो सकती है।

20.4.2 माध्यमिक शिक्षा परिषद् के कार्य :-

पाठ्यक्रम निर्माण:-

हाईस्कूल व इण्टर की कक्षाओं के लिये माध्यमिक शिक्षा परिषद् विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम का निर्माण करती है। इसके लिये वह विषय के विद्वान शिक्षकों की एक समिति गठित करती है तथा यह समिति सम्बन्धित विषय का पाठ्यक्रम निर्धारित करती है।

पाठ्य पुस्तक लेखन:-

पाठ्यक्रम निर्धारण के उपरान्त 'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य पाठ्य पुस्तक का लेखन करवाना है। इस कार्य के लिये परिषद् विभिन्न विषयों के विद्वानों की एक समिति बनाकर उनको लेखन कार्य का दायित्व सौंपती है।

पाठ्य पुस्तक प्रकाशन:-

पाठ्य पुस्तक लेखन के उपरान्त 'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' उनके प्रकाशन व मुद्रण का कार्य भी स्वयं की देखरेख में ही करती है। इसके लिये परिषद् राजकीय मुद्रणालय का प्रयोग करती है। कार्याधिक्य के कारण माध्यमिक शिक्षा परिषद् राज्य के प्रकाशकों व मुद्रकों को भी यह कार्य सौंप सकती है; किन्तु पुस्तक का आकार, छपाई का प्रकार, कागज एवं पुस्तक के मूल्य पर परिषद् का ही नियन्त्रण होता है।

पाठ्यक्रम/पाठ्य पुस्तक में संशोधन :-

'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' समय-समय पर पाठ्यक्रम एवं पाठ्य पुस्तकों का अवलोकन करती रहती है तथा आवश्यकतानुसार विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम एवं पाठ्य पुस्तकों में संशोधन अथवा परिवर्तन का अधिकार रखती है।

शिक्षण संस्थाओं को मान्यता प्रदान करना:-

'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' हाईस्कूल व इण्टर की कक्षाएँ संचालित करने के लिये शिक्षण संस्थाओं को मान्यता भी प्रदान करती है। मान्यता प्रदान करने से पूर्व परिषद् यह सुनिश्चित कर लेती है कि प्रस्तावित संस्था उसके द्वारा निर्धारित मानकों को पूरा कर रही है अथवा नहीं।

निरीक्षण:-

शिक्षण संस्थाओं को मान्यता प्रदान करने के उद्देश्य से तथा मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं का मानक, लेखा परीक्षा आदि का निरीक्षण करने के उद्देश्य से परिषद् निरीक्षकों की नियुक्ति करती है तथा उनके माध्यम से शिक्षण संस्थाओं का निरीक्षण करती है।

शुल्क वसूलना:-

'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' अपनी शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से उसमें अध्ययनरत् विद्यार्थियों से विभिन्न शुल्क प्राप्त करती है। इसके अतिरिक्त विधि सम्मत अन्य अनेक शुल्क भी प्राप्त करने का कार्य परिषद् करती है।

परीक्षा:-

परीक्षा का आयोजन करना माध्यमिक शिक्षा परिषद् का अति महत्वपूर्ण दायित्व है। परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में नियमित व व्यक्तिगत रूप से अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं के लिये 'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' परीक्षाओं का आयोजन करती है। इसके अन्तर्गत परीक्षा प्रश्न पत्र तैयार करना, उन्हें सुरक्षित परीक्षा केन्द्रों तक पहुँचाना, परीक्षा केन्द्रों पर केन्द्राध्यक्ष एवं कक्ष निरीक्षकों की व्यवस्था करना, परीक्षा के उपरान्त उत्तर पुस्तिकाएँ सुरक्षित स्थान पर पहुँचाना आदि अनेक कार्य आते हैं।

मूल्यांकन:-

परीक्षा कार्य संपन्न हो जाने के पश्चात् माध्यमिक शिक्षा परिषद् का महत्वपूर्ण दायित्व आरम्भ होता है और वह है उत्तर-पुस्तिकाओं का मूल्यांकन। परिषद् विषय के विशेषज्ञ योग्य शिक्षकों द्वारा उत्तर-पुस्तिकाओं का मूल्यांकन कार्य संपन्न कराती है। इसके लिये वह उन्हें पारिश्रमिक भी देती है।

परीक्षा परिणाम:-

परीक्षा तथा मूल्यांकन कार्य विधिवत संपन्न हो जाने के पश्चात् 'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' का महत्वपूर्ण कार्य आरम्भ होता है 'परीक्षा परिणाम' घोषित करना। परिषद् विभिन्न समाचार पत्रों के माध्यम से तथा इन्टरनेट के द्वारा परीक्षा परिणाम पूरी सावधानी एवं तत्परता के साथ घोषित करती है।

प्रमाण पत्र प्रदान करना:-

जिन परीक्षार्थियों ने 'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' द्वारा आयोजित परीक्षाओं में प्रतिभाग किया होता है उनकी उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन तथा परीक्षा परिणाम की घोषणा के उपरान्त परिषद् उन्हें सक्षम प्राधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित प्रमाण पत्र प्रदान करती है जिसमें छात्र-छात्रा की कक्षा विषय, प्राप्तांक, जन्म तिथि आदि का विवरण दिया होता है। परिषद् द्वारा प्राप्त प्रमाण पत्र प्रामाणिक दस्तावेज की तरह प्रयुक्त होता है।

बजट बनाना:-

'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' वर्ष पर्यन्त स्वयं द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों पर होने वाले व्यय का आकलन करके वार्षिक बजट तैयार करती है। तथा आवश्यकतानुसार राज्य सरकार से अनुदान, ऋण आदि प्राप्त करती है।

अन्य कार्य:-

इसके अतिरिक्त 'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' कुछ अन्य कार्यों का सम्पादन भी करती है जैसे समय-समय पर पाठ्यक्रम, पाठ्य-पुस्तकों का पुनरावलोकन, परीक्षा आयोजन के लिये संस्थाओं को मान्यता प्रदान करना, समय-समय पर राज्य सरकार को स्वयं के कार्य क्षेत्र से सम्बन्धित विचार प्रेषित करना, अंशकालिक अध्यापकों का सेवायोजन आदि।

20.5 विश्वविद्यालय

किसी भी राज्य की वास्तविक शक्ति उसकी उच्च शिक्षा होती है। उच्च शिक्षा तक आते-आते छात्र के संस्कार दृढ़ हो चुके होते हैं। प्रायः छात्र अपने लिये ज्ञान की एक निश्चित धारा का चयन करने में सक्षम होता है अपितु उस धारा का चयन माध्यमिक स्तर पर ही कर चुका होता है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् विद्यार्थी यथा सामर्थ्य स्वयं एवं राष्ट्र की उन्नति हेतु कार्य करता है। उच्च शिक्षा विश्वविद्यालयों के माध्यम से दी जाती है। प्रत्येक राज्य में अनेक प्रकार के विश्वविद्यालय होते हैं जिनमें प्रमुख प्रकार निम्नांकित हैं।

20.5.1 विश्वविद्यालय के प्रमुख प्रकार:-

जैसा कि हम ऊपर की पंक्तियों में स्पष्ट कर चुके हैं कि यहाँ पर विश्वविद्यालयों के कतिपय प्रमुख प्रकारों की ही चर्चा की जा रही है इसके अतिरिक्त भी विश्वविद्यालयों के अनेक प्रकार हो सकते हैं।

सम्बद्धक विश्वविद्यालय:-

ऐसे विश्वविद्यालय से अनेक महाविद्यालय सम्बद्ध होते हैं तथा विश्वविद्यालय उनसे सम्बन्धित समस्त प्रशासनिक दायित्वों का निर्वहन करता है।

सम्बद्धक एवं शिक्षण विश्वविद्यालय:-

इन विश्वविद्यालयों से अनेक महाविद्यालय तो सम्बद्ध होते ही हैं किन्तु साथ ही विश्वविद्यालय परिसर में भी कतिपय विशिष्ट स्तर की कक्षाएँ लगती हैं।

आवासीय विश्वविद्यालय:-

ये विश्वविद्यालय एकल होते हैं। इनसे कोई अन्य महाविद्यालय सम्बद्ध नहीं होता। विद्यार्थी को इस प्रकार के विश्वविद्यालय में रहकर अध्ययन करने की सुविधा उपलब्ध होती है।

20.5.2 विश्वविद्यालय का संगठन:-

प्रत्येक राज्य विश्वविद्यालय का संगठन प्रायः एक समान होता है। निम्नांकित पदाधिकारी विश्वविद्यालय के संगठन के अन्तर्गत आते हैं-

कुलाधिपति:-

राज्यपाल राज्य के प्रत्येक विश्वविद्यालय का कुलाधिपति होता है। वह उपस्थित रहने की दशा में दीक्षान्त समारोह की अध्यक्षता करता है तथा विश्वविद्यालय के प्रशासन से सम्बन्धित सर्वोच्च शक्तियाँ उसके अधीन होती हैं।

कुलपति:-

यह विश्वविद्यालय का पूर्णकालिक वैतनिक अधिकारी होता है। इसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। इसकी कार्यावधि 3 वर्ष की होती है तथा यह कुलाधिपति के लिये उत्तरदायी होता है।

प्रति कुलपति:-

यह प्रायः विश्वविद्यालय का वरिष्ठतम आचार्य होता है। कार्य परिषद् अपने विवेक से किसी अन्य आचार्य को भी यह दायित्व सौंप सकती है। प्रति कुलपति कुलपति की अनुपस्थिति में उसके कार्यों का निर्वहन करता है तथा यह कुलपति के प्रति ही उत्तरदायी होता है।

वित्त अधिकारी:-

वित्त अधिकारी भी पूर्णकालिक वैतनिक अधिकारी होता है। इसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। यह विश्वविद्यालय के वित्त से सम्बन्धित समस्त कार्यों के लिये उत्तरदायी होता है।

कुलसचिव:-

यह भी राज्य सरकार द्वारा नियुक्त पूर्णकालिक वैतनिक अधिकारी होता है। यह कार्य परिषद् का पदेन सचिव होता है तथा कुलपति की ओर से कार्यों का संचालन करता है। विश्वविद्यालय के समस्त प्रशासनिक कार्य का अधिकांश भार कुलसचिव पर होता है।

परीक्षा नियंत्रक:-

कुलसचिव तथा वित्त अधिकारी की ही भाँति परीक्षा नियंत्रक की नियुक्ति भी राज्य सरकार द्वारा पूर्णकालिक वैतनिक अधिकारी के रूप में की जाती है। यह विश्वविद्यालय की परीक्षा समिति का पदेन सचिव होता है।

कार्य परिषद्:-

कार्य परिषद् विश्वविद्यालय प्रशासन का केन्द्र होती है इसका गठन कुलपति, प्रति कुलपति शिक्षा संचालक, सीनेट के प्रतिनिधि, संकयाध्यक्ष तथा प्राचार्य आदि को सदस्यता प्रदान कर किया जाता है।

विद्या परिषद्:-

यह विश्वविद्यालय की सर्वोच्च प्रशासकीय संस्था है। कार्य परिषद् की ही भाँति इसमें भी विश्वविद्यालय एवं समाज के गणमान्य लोगों का प्रतिनिधित्व रहता है इसमें राज्य सरकार द्वारा नामित सदस्य भी होते हैं यह विश्वविद्यालय के नीतिगत निर्णय लेने के लिये भी अधिकृत है।

वित्त समिति:-

कुलपति तथा वित्त अधिकारी सहित अनेक सदस्यों वाली यह समिति विश्वविद्यालय के वित्त से सम्बन्धित समस्त विषयों में निर्णय लेने के लिये अधिकृत है।

परीक्षा समिति:-

कुलपति, परीक्षा नियंत्रक तथा अन्य सदस्यों से युक्त यह समिति विश्वविद्यालय की समस्त सामान्य व विशेष परीक्षाओं के संचालन से सम्बन्धित उत्तरदायित्वों का निर्वहन करती है।

20.5.3 विश्वविद्यालय के कार्य:-

विश्वविद्यालय के कार्यों को सामान्यतः हम निम्न प्रकार से अभिव्यक्त कर सकते हैं-

1. सम्बद्ध विभागों एवं महाविद्यालयों के कार्यकलापों पर नियन्त्रण रखना।
2. प्रवेश के नियम बनाना व प्रवेश लेना।
3. शिक्षा सत्र को समुचित रीति से संचालित करना। ,
4. विभिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न कक्षाओं का पाठ्यक्रम निर्धारित करना व उसके लिये पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन/अनुमोदन करना।
5. सम्बद्ध विभागों एवं महाविद्यालयों में परीक्षाओं का आयोजन करना।

6. विषय विशेषज्ञों द्वारा उत्तर-पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करवाना।
7. परीक्षा परिणाम तैयार करना।
8. परीक्षा परिणाम घोषित करना।
9. परीक्षा में सम्मिलित परीक्षार्थियों को सक्षम अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित अंकतालिका प्रदान करना।
10. दीक्षान्त समारोह का आयोजन करना।
11. सफल परीक्षार्थियों को उपाधि प्रदान करना।
12. सम्बद्ध विभागों व महाविद्यालयों से प्रवेश, परीक्षा आदि विभिन्न मदों में शुल्क वसूलना।
13. सम्बद्ध विभागों एवं महाविद्यालयों को अनुदान अथवा आर्थिक सहायता प्रदान करना।
14. सम्बद्ध विभागों एवं महाविद्यालयों की विभिन्न गतिविधियों का निरीक्षण करना।
15. सम्बद्ध महाविद्यालयों के प्राचार्यों की बैठक बुलाना तथा आवश्यकतानुसार उन्हें निर्देशित करना।
16. शिक्षकों, कर्मचारियों तथा प्राधिकारियों को समय-समय पर आवश्यकतानुसार विभिन्न मदों में भुगतान करना।
17. पुराने महाविद्यालयों में नए विषयों को पढ़ाने की अनुमति प्रदान करना।
18. नए महाविद्यालयों को सम्बद्धता प्रदान करना।
19. अनुसन्धान कार्य करना तथा इसके लिये सम्बद्ध विभागों/ महाविद्यालयों को प्रोत्साहित करना व उन्हें आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करना।
20. ऐसे सभी कार्य सम्पादित करना जो शैक्षिक हित में हों तथा विश्वविद्यालय के अधिकार क्षेत्र में आते हैं।

20.6 सारांश

शिक्षा किसी भी राष्ट्र की प्रगति का मूल आधार होती है। मोटे तौर पर शिक्षा को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा। राज्य में शैक्षिक नियोजन के लिये शिक्षा मंत्रालय होता है। प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के अलग-अलग निदेशक होते हैं। राज्य में प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा का कार्य प्राथमिक शिक्षा परिषद् व माध्यमिक शिक्षा परिषद् देखती हैं। ये संस्थाएँ विभिन्न स्तरों के पाठ्यक्रम निर्माण, पुस्तक लेखन, प्रशिक्षण, शुल्क, परीक्षा सम्पादन एवं प्रमाण पत्र देने आदि के समस्त महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित करती हैं। उच्च स्तर पर इन कार्यों के करने के लिये विश्वविद्यालयों का गठन किया जाता है। विश्वविद्यालय निजी अथवा राजकीय, आवासीय, सम्बद्धक, संघात्मक आदि अनेक प्रकार के हो सकते हैं। विश्वविद्यालय का प्रधान राज्य का राज्यपाल होता है वह कुलाधिपति कहलाता है। इसके अतिरिक्त

पूर्णकालिक वैतनिक कुलपति, कुल सचिव, वित्त अधिकारी आदि भी विश्वविद्यालय का कार्य देखते हैं। विश्वविद्यालय कार्य परिषद्, विद्या परिषद् वित्त समिति आदि भी होती हैं। विश्वविद्यालय में अनुसन्धान कार्य भी होता है जिसके लिये अलग प्रकोष्ठ होता है।

20.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. माध्यमिक शिक्षा परिषद् का गठन कैसे होता है। राज्य में माध्यमिक शिक्षा परिषद् के कार्य लिखिये।
2. विश्वविद्यालय के विभिन्न कार्य लिखिये यह भी बताइये कि विश्वविद्यालय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य कौन सा है? और क्यों?
3. विश्वविद्यालय का कोई एक ऐसा प्रकार बताइये जिसका वर्णन इस पुस्तक में न किया गया हो। अन्य प्रकार के विश्वविद्यालय से उसकी तुलना भी कीजिये।

20.8 सन्दर्भ

1. भटनागर आर०पी०; शैक्षिक प्रशासन; लायल बुक डिपो मेरठ।
2. वर्मा जी०एस० शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्ध, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
3. गुप्ता रामबाबू; विद्यालय प्रशासन, संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा; आलोक प्रकाशन लखनऊ।
4. जायसवाल सीताराम; शिक्षा में निर्देशन और परामर्श; अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।
5. कोचर एस०के०; स्कूल आर्गेनाइजेशन, यूनिवर्सिटी पब्लिशर्स जालन्धर।
6. कर्ण सिंह; भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास; गोविन्द प्रकाशन लखीमपुर खीरी।
7. लाल रमन बिहारी; भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ; आर०लाल बुक डिपो मेरठ।
8. पारीक महेश कुमार, शैक्षिक प्रबन्ध एवं विद्यालय संगठन, नीलकण्ठ पुस्तक मन्दिर जयपुर।
9. शर्मा आर०ए०; शिक्षा प्रशासन एवं प्रबन्ध; आर० लाल बुक डिपो मेरठ।
10. शर्मा आर०ए०; भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास आर०लाल बुक डिपो मेरठ।
11. शर्मा आर०ए०; एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड मैनेजमेंट; आर०लाल बुक डिपो मेरठ।
12. श्रीवास्तव एस०एन०, एजुकेशन मैनुअल, हिन्द पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।